ISSN : 2319-6513

साहित्य वीथिका

श्री सर्वोदय एज्युकेशन ट्रस्ट संचालित

Sahitya Veethika

An International Peer Reviewed Referred Quarterly Research Journal of Literature

(त्रैमासिक अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका)

कवि शैलेष पंड्या 'भीनाश' के विशेष संदर्भ में...

वर्ष : 15 अंक : 26, 27, 28 सितम्बर-दिसम्बर 2023, मार्च 2024 संयुक्तांक

संपादक : डॉ. दिलीप मेहरा

वर्ष : 15
अंक - 26,27,28

ISSN : 2319-6513
सितम्बर-दिसम्बर-2023, मार्च-2024
संयुक्तांक

साहित्य वीथिका

(त्रैमासिक अंतर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका)

कवि शैलेष पंड्या 'भीनाश' के विशेष संदर्भ में...

संपादक

डॉ. दिलीप मेहरा

❍

संरक्षक

डॉ. मालती दुबे, डॉ. सतीन देसाई 'परवेज़', डॉ. गुरुदत्त ठक्कर

❍

सम्पादक मण्डल

डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल, डॉ. दीपेन्द्र जडेजा,
डॉ. हसमुख परमार, डॉ. संगीता चौहान

❍

परामर्शक

तेजेन्द्र शर्मा (लंदन), सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' (नार्वे)
डॉ. बापूराव देसाई (महाराष्ट्र)

❍

प्रकाशक

उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

A-685 आवास विकास, हंसपुरम्, कानपुर -208 021 (उ.प्र.)
Email : utkarshpublishersknp@gmail.com
Mob. : 8707662869, 9554837752

❍

कला सज्जा

रुद्र ग्राफिक्स, कानपुर

❍

व्यवस्थापकीय पता

शोभा मेहरा
यश भवन, प्लॉट नम्बर - 1423/1, शालिनी अपार्टमेंट के पीछे,
नाना बाजार, वल्लभ विद्यानगर, जि. आणंद - 388120
ई-मेल : sahityaveethika@gmail.com, सचलभाष - 9426363370

पत्रिका में प्रकाशित कविता, लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक या सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त विवादों के लिए न्यायालय का क्षेत्र आणंद, गुजरात होगा।

An International Peer Reviewed Referred Quarterly Research Journal of Literature

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 500 रुपये
पंचवर्षीय 2000 रुपये
आजीवन 7500 रुपये
संस्था के लिए : वार्षिक 600 रुपये
पंचवर्षीय 3000, आजीवन 10,000 रुपये

पियर रिब्यूड कमिटी

प्रो. सुनील कुलकर्णी

निदेशक, हिंदी संस्थान, आगरा (उ.प्र.), अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उ.म. विश्वविद्यालय जलगांव (महाराष्ट्र)

प्रो. शैलेन्द्र शर्मा

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

प्रो. अरुण होता

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

प्रो. दिनेश कुशवाह

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवाँ (मध्य प्रदेश)

डॉ. संजीव दुबे

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, केंद्रीय विश्वविद्याल, गाँधीनगर, गुजरात

डॉ. नवीन नंदवाना

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

लेखकों से...

'शोधलेख' के साथ-साथ अपना कार्यालयी एवं आवासीय पूरा पता पिनकोड सहित अपने दूरभाष तथा सचलभाष का क्रमांक अवश्य लिखने का कष्ट करें ताकि तुरन्त ही प्राप्ति/ स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना दी जा सके। अपने लेख के साथ रंगीन पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ अवश्य भेजें।

विशेषांक के सम्बन्ध में अग्रिम जानकारी दी जायेगी।

शोधलेख के संशोधन का अधिकार सम्पादक का होगा। शोधलेख के साथ प्रमाणपत्र अवश्य भेजें कि, 'यह मेरा मौलिक एवं सर्वथा अप्रकाशित शोधलेख है। इसके तथ्यों की प्रामाणिकता एवं सन्दर्भ समीचीन है।'

लेखकों एवं पाठकों को अंक कैसा लगा? इस सम्बन्ध में अपने विचार अवश्य भेजें, जिस से हमारी त्रुटियों की जानकारी मिलेगी और भावी योजना बनाने में हमें सहायता मिलेगी।

सदस्यता शुल्क, सहयोग-राशि, संरक्षक-राशि एवं प्रकाशनार्थ सारी सामग्री व्यवस्थापकीय पते पर भेजें।

आपका शोधलेख रिसर्च कमिटी में चयन होने के बाद प्रकाशित होगा। आपके द्वारा भेजे गए आलेख को लौटाया नहीं जायेगा, इसलिए आप अपने पास आलेख की फोटोकॉपी जरूर रखें।

लेखकों से नम्र निवेदन है कि अपना शोधलेख पाँच पृष्ठों से ज्यादा न लिखें। शोधलेख पी.डी.एफ. एवं माइक्रोसॉफ्टवर्ड दोनों प्रकार की फाइलों में करके अवश्य भेजें। आपके आलेख कृतिदेव-10, यूनिकोड में 1500 से 2000 शब्दों में ही टाईप करके भेजें अन्यथा उस पर विचार नहीं किया जायेगा।

सदस्यता शुल्क चेक/डी.डी. से भेज सकते हैं या साहित्य वीथिका खाता संख्या- 291520110000087 (IFSC Code : BKID00002915) (बैंक ऑफ इंडिया), वल्लभ विद्यानगर, आणंद, गुजरात में राशि जमा करके फोन या ई-मेल से कार्यालय में सूचित करें।

डॉ. दिलीप मेहरा (संपादक)
साहित्य वीथिका

संपादकीय

साहित्य वीथिका के प्रत्येक अंक में कुछ न कुछ नया होता है। इसलिए समकालीन परिदृश्य किसी भी रचना या पत्रिका में होता ही है। डॉ. सतीन देसाई 'परवेज़' दीप्तिगुरु द्वारा अनुदित शैलेष पंड्या 'भीनाश' की ग़ज़लें कहीं न कहीं तमाम विसंगतियों को उभारती हैं। डॉ० सतीन देसाई परवेज, त्रिलोक मेहता, डॉ. अंकुर देसाई, डॉ. मीनाक्षी जानी, सतीश भोये, डॉ० राजेन्द्र परमार, डॉ० केशुभाई देसाई, डॉ.सुरेश पटेल, डॉ. गिरीश रोहित, डॉ. मोहन लाल जाट के लेखों से समसामयिक हिन्दी की रचनाशीलता का पता चलता है। गुजराती या हिन्दी या किसी भाषा में समसामयिकता का समावेश जाने–अनजाने आता ही है। साहित्य वीथिका का संपादकत्व कहीं न कहीं प्रतिष्ठित लेखकों या आलोचकों से ही रचनाएँ एवं आलोचनाएँ मंगवाता ही है। यह बात अलग है कि हिन्दी प्रदेश के सम्पादक या सहृदय साहित्य वीथिका का आकलन उत्तर आधुनिक युग में अपनी अपनी दृष्टि से करते हैं। टीका–टिप्पणियों के युग में कहीं न कहीं रचनाशीलता का स्रोत भी निकलता है। प्रनामी साहित्य का भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य का विहंगावलोकन कहीं न कहीं साहित्य वीथिका में होता है। इसलिए सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषिक विरासत के वैविध्य को साहित्य वीथिका के इस अंक में भी देख या पढ़ सकेंगे। सबसे बड़े जनतंत्र का महापर्व चुनाव चल रहा है। इसमें हम सब की भागीदारी से नई संसद ४ जून के बाद बनेगी। विजेता सांसदों को शुभेच्छा एवं पराजित उम्मीदवारों से अपेक्षा कि विपक्ष में रहकर नये सांसदों से अच्छा कार्य करवाकर राष्ट्र का उत्कर्ष हर तरह से करें। हिंदी साहित्य के जगत में प्रखर आलोचक चौथीराम यादव तथा लेखिका मालती जोशी को भी साहित्य वीथिका परिवार भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। देश की रक्षा या चुनावी कार्य के दरम्यान वीरगति प्राप्त जवानों को भी साहित्य वीथिका परिवार श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

–दिलीप मेहरा
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय
वल्लभ विद्यानगर, आणंद–गुजरात

अनुक्रम

डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु' द्वारा अनुवादित शैलेष पंड्या ''भीनाश " की गुजरात हिंदी साहित्य अकादमी 2019 पुरस्कृत 51 ग़ज़लें (शबनमी गुफ्तगू)

1. बरगद के साए से व्यक्तित्व के धनी : शैलेष पंड्या 'भीनाश'
डॉ. भरत जादव 16

2. बाखुलूस जज़्बात की कबीराई
डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु' 19

3. शबनम की पियाली
डॉ. अंकुर देसाई 24

4. लाफानी शबनमी एहसास
त्रिलोक मेहता 29

5. प्रताप सिंह डाभी 'हाकल' के गीत 'वंचित की वेदना का गान' का आस्वाद
डॉ. केशुभाई देसाई 32

6. डॉ. दिलीप मेहरा के काव्य का आत्म दर्शन : 'जीवन मुसीबतों का दरिया'
डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु' 34

7. राष्ट्रीय चेतना की संवाहक : वि. दा. सावरकर की कविताएँ
डॉ. देव्यानी महिड़ा 37

8. 'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह की मूल संवेदना
डॉ. विनोद कुमार चौधरी 40

9. जीवन राग-विराग के कवि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह (मेघमाला के संदर्भ में)
डॉ. राजेन्द्र परमार 43

10. वतन से दूर रहने की पीड़ा 'अमरिका हड्डियों में जम जाता है'
डॉ. सुरेश पी. पटेल 47

11. रूपनारायण सोनकर और उनका नाटक 'समाजद्रोही'
डॉ. गिरीश रोहित 50

12. डॉ. दिलीप मेहरा का 'मकान पुराण' : जिंदगी का जलता दस्तावेज
डॉ. मोहन लाल जाट 53

13. हिन्दी काव्य : ऐतिहासिकता की दृष्टि से
डॉ. मीनाक्षी एन. जानी 59

14. मनोहर श्याम जोशी के कथा साहित्य में भाषागत वैशिष्ट्य
सतीश ए. भोये 62

15. मनुस्मृति में वर्णित संस्कार
निधि चौधरी 65

16. दलित समाज को सुकून के स्वप्न दिखाता कवि 'ओमप्रकाश वाल्मीकि'
डॉ. शहाबुद्दीन 70

17. उत्तर औपनिवेशिक अंधेरे का आख्यान'शहर से दस किलोमीटर'
डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा 81

18. स्वाधीनता आंदोलन और पहला गिरमिटिया
पटेल श्रुति एम. 85

19. 'रेखना मेरी जान' उपन्यास में चित्रित पर्यावरण संवेदना
नलिनी संदीप देशमुख 88

20. मनुस्मृति में वर्णाश्रम धर्म
निधि चौधरी 91

21. शिक्षा और समाज के यथार्थ से रूबरू कराती दिलीप मेहरा की कहानियाँ
कुलदीप कुमार 'आशकिरण' 94

22. कृश्ना रघुवंशी के उपन्यासों में राजनीति संबंधी मिथक का आधुनिक संदर्भ में प्रयोग
डॉ. नरेश ठाकोर 96

23. मनुस्मृति और नारी
निधि चौधरी 98

कहानी

24. नमक हराम भिखारानंद
डॉ. दिलीप मेहरा 100

25. वसीयतनामा
डॉ. संगीता चौहान 101

डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु' द्वारा अनुवादित शैलेष पंड्या "भीनाश" की गुजरात हिंदी साहित्य अकादमी 2019 पुरस्कृत 51 ग़ज़लें (शबनमी गुफ्तगू)

1. ग़ज़ल

मेरी हयात रोज़ तेरे आसपास है।
कर ले तलाश खून में मेरा ही सांस है।

मैं देख के फ़ज़ाएं घड़ीभर को रो भी लूँ,
मेरे तमाम कमरे में सूखा ही घास है।

नुकसान–फ़ायदे का न तू हरगिज़ हिसाब कर,
मेरे अलम में कुछ भी ना तुझ सा जो ख़ास है।

तश्नालबों की आंख से तू गाह देख ले,
दरिया गुमां सराब का है, महवे–यास है।

ख़ामोशी का ही साथ रहे वक़्ते–आख़री,
फिर क्यूँ ना हर नज़र में नमी का हिसास है?

2. ग़ज़ल

कहाँ टूटा था अपना बाहमी रिश्ता, तुझे ये कौन समझाए?
तेरी तासीर का मुझमें था हर लम्हा, तुझे ये कौन समझाए?

समय को दर–असल पहचान पाया है किसी लहजा कहाँ पे तू ?
समझ आँखों की है कुछ कम ही वाबस्ता, तुझे ये कौन समझाए?

क़रीबे–अक्स तू करने लगी बेकार में तक़रीर क्यों उसकी?
हमीं भीतर न रख पाए हैं शीशा, तुझे ये कौन समझाए?

निगाहें डाल जो सूने हैं भंडारे लबालब आज भी तेरे,
तरसती है ज़मीं कबसे यहाँ दाना, तुझे ये कौन समझाए ?

तू तेरी छूटने की कोशिशों में और खींचा जाएगा हमदम,
कशिश का आख़री दामन मिला कैसा, तुझे ये कौन समझाए?

3. ग़ज़ल

दौड़ आके वो निहां हो जाता है।
मुझमें घुल मेरा जहाँ हो जाता है।

याद पीके सैर की थी हर तरफ़,
प्यास बुझने का समां हो जाता है।

कोई बतलाए कहाँ सहदेव है ?
क्यूँ लबे ख़ामोश यां हो जाता है ?

पुश्त छोड़े ही मुख़ातिब तू मेरे,
काट सर क्यों खौफ़े–जां हो जाता है?

क्या लिखूं नामो–पता मैं जज़्ब का,
आँख का दरिया रवां हो जाता है।

4. ग़ज़ल

क्या तलाशूं वाक़िया कोई अगर नहीं।
मान लूँ इतना तो भोला ये नगर नहीं।

क्या ग़रीबों के रतन ठहरा सको ग़लत,
आँसू मेरे अपने हैं, कोई मगर नहीं।

सच मेरी हस्ती का ये तुमसे शुरू हुआ,
आप के बिन सांस का मेरा सफ़र नहीं।

क्या हो मेरा दर हक़ीक़त मैं सफ़र में हूँ,
घर न नक़्शा हो भले , कोई डगर नहीं।

***

5. ग़ज़ल

होंठ पे आ ही गई वो बात , हमने जो छिपाई।
ना समझ पाए हमीं, क्या चीज़ अपनी, क्या पराई?

पूछा बातिल ज़ीस्त से क्या गुज़री है मेरे बग़ैर,
ना जुड़ा मेरा ये दिल, कुव्वत उठाने की न पाई।

नक़्शे–पा पड़ते किनारे पे इसी बाइस हरिक दिन,
झील के यूं फैलने की दूर तक अफ़वाह ही आई।

दाख़िला समझाने को फिर भी मुसलसल वां खड़े वो,
इस ख़ला से आसमां तक मन की प्यासें बुझ न पाईं।

चित्र सारे ही दबा के फ़ौरअन "भीनाश" बैठा ,
यूं अचानक की है रिश्तों की क़ज़ा से ही सगाई!

6. ग़ज़ल

यूं तुम तो शुक्रिया की बात करते हो।
हमें अब तक पराए काहे गिनते हो ?

लबालब आंख कर ली मेरे हंसने पर,
चलो अच्छा है दिल मेरा समझते हो।

रखो ज़ेवर सभी बेफ़िक्र लोकर में,
क्यूँ इश्क़े–नातवां अंदर को रखते हो ?

भरोसा लफ़्ज़ तो देते नहीं यारो,
तग़ाफ़ुल मेरी ख़ामोशी से करते हो।

की हो के मुंजमिद बैठे निगाहों में,
नज़र "भीनाश" को लेकिन क्यूँ आते हो?

7. ग़ज़ल

मेरे ही घर में मुझको ठिकाना नहीं मिला।
मेरे ही अक्स का मुझे नक़्शा नहीं मिला ।

किसने मेरी तलाश का आग़ाज़ था किया?
कब वक़्त को पता वहां मेरा नहीं मिला।

क्या सांस को किसी के बराबर मैं रख सकूँ?
उसका बदल जिगर को ज़रा–सा नहीं मिला।

तसवीर की थी मैंने ज़रा–सी ही बात पे,
आख़री तलक गुमान जो आधा नहीं मिला।

मैं तीरगी को चला न हुई आमदे–सनम,
टुकड़ा ये शाम का तो दुबारा नहीं मिला।

8. ग़ज़ल

यूं हिफ़ाज़त कर न मेरी ख़ुश्क तन हो जाऊँगा मैं।
पर लगे न फिर भी परवाज़े–सुख़न हो जाऊँगा मैं।

दूर तुझसे क्या करे सदमा की शिद्दत कोई मुझको,
दौड़ सांसों की लगा तुझमें दफ़न हो जाऊंगा मैं।

बेरहम होके किए अल्फ़ाज़ के टुकड़े भी मैंने,
गुफ़्तगुएं तर्क कर तर्के–सुख़न हो जाऊँगा मैं।

ज़ीस्ते–लाफ़ानी सुख़न की क्या हिफ़ाज़त मुझसे भी हो,
वक़्त के दांतों से पत्तों की घुटन हो जाऊँगा मैं।

आब–जू सूखी पड़ी लाचार क़ुदरत से भी क्या हो?
याद छिटके रेत पे भीगा बदन हो जाऊँगा मैं।

9. ग़ज़ल

लफ़्ज़ों की गिनती से तुझे हर भार मिल गया।
माना ख़ामौशी में मुझे हर बार मिल गया।

पलथी लगा दुबारा मुझे दौड़ना कहाँ,
बे–वजह ज़िंदा मुझे आसार मिल गया ।

हर लम्हा हूबहू ही जिया जिंदगी तुझे,
मुझको जिलाने ग़म कहाँ लाचार मिल गया?

आंखें लगा न देखता है वो इधर–उधर,
माँ के सीने के दूध में झबकार मिल गया।

हर रोज़ वो उड़ेलके लबालब करे मुझे,
बर्तन भरा लहू से मेरा यार मिल गया ।

10. ग़ज़ल

ये उजाले वक़्ते–पैहम नापने से क्या मिला?
शब को तोहफ़े में यक़ीं भी बांटने से क्या मिला?

मेरी पैहम ख़ामुशी तारीख़ कब मानी तूने,
पोथियां ईश्वर की हरदम छापने से क्या मिला?

ज़िंदगी क्यों ख़ौफ़ खाए कर दे मेरा ख़ात्मा,
इक अकेला अक्स मेरा काटने से क्या मिला?

है हक़ीक़त तू हक़ायक से ही कांपा है यहाँ,
फूंककर यूं आग अपनी तापने से क्या मिला?

कब तलक संभाल पाओगे क़ज़ा के तोड़ को,
दिल में रिश्ता–ए–नफ़स को गाड़ने से क्या मिला?

11. ग़ज़ल

मुसलसल जीने को यूं दौड़ना पड़ता नफ़स कैसे क़बूले?
ये आँखें मूंद के ही नक़्श भी करना नफ़स कैसे क़बूले?

मैंने तेरा कहा माना मगर राहों में उलझन थी बहुत ही,
पता इक लामकां का ढूंढते फिरना नफ़स कैसे क़बूले?

दुबारा शम्स क्यूँ उगता, कहाँ ढलता, क्यूँ ये रात होती?
सबब वो जाग सुबही ढूंढते रहना नफ़स कैसे क़बूले?

उसी ने जिस जगा रोका समय को, जम गए हम वहीं पे,
बेमानी वाक़ियों में डोल के झूलना नफ़स कैसे क़बूले?

मरासिम फूलने–फलने लगे थे हम ही से ए दोस्त आख़िर,
हमारे हाथ ही रिश्ते तोड़ते रहना नफ़स कैसे क़बूले?

12. ग़ज़ल

यूं बारिशों से इश्क़ की बराबरी भी मैं करूँ।
डूबो अगर तो आप में लबालबी भी मैं करूँ।

खामौशी में ही फैलता अभी यक़ीन है मेरा,
जो आँख मूंद सांस की रौशनी भी मैं करूँ।

भीतर को झांकते ही आइना ख़रमौश हो गया,
तूफ़ां की दौड़ के बिना ही बेरफ़्तगी भी मैं करूँ।

गुज़र गया है वक़्त जो कहाँ पलट के आए फिर,
शऊर आज़माओ अगर कोई कड़ी भी मैं करूँ ।

यूं आपसे बड़ी हुई कहां मेरी कदावरी?
मैं तीफ़्ल होके हर समझ की खूँ–सी भी मैं करूँ।

13. ग़ज़ल

हथेली में सरोवर तो बराबर का दिया।
मगर जीने को जीवन कांच के घर का दिया।

करूँ कैसे करूँ, मैं बंद मेरी दीद को?
दिया हर ख़्वाब पल को, कल के बिस्तर का दिया।

अलम, अफ़वाह, सवालों से न पाई है निजात,
कहाँ तुमने हमें वो मौन भीतर का दिया?

अगर चाहो दुबारा डोलूं मैं दरवाज़े पर,
ज़रा–सी झनक दिल को न ग़म स्वर का दिया।

तलब भागी जहाँ "भीनाश" सहरा के नगर,
सबब उसको क्यूँ इक प्यासे समंदर का दिया?

14. ग़ज़ल

जिंदगी को नाप अबके सांस भी कैसे मैं लूँ?
है हवा नाराज़ फिर से सांस भी कैसे मैं लूँ?

ऐसे करने से मुकम्मल जाएगा फोगट जनम,
कुछ दुआएं मांग मेरे सांस भी कैसे मैं लूँ?

मेरे तन्हा होने से जलता हुजूमे–रास्ता,
लफ़्ज़ का पानी छिटक के सांस भी कैसे मैं लूँ?

हस्ती मेरी पंखी हो उड़ने लगी आकाश में,
कुछ भरम ओ भेद रख के सांस भी कैसे मैं लूँ?

ले ख़ामौशी बैठने से तो सफ़र कट जाएगा,
दो क़दम यूं चलते–चलते सांस भी कैसे मैं लूँ?

15. ग़ज़ल

किस पल उधार जिंदगी के सांस भर सका?
और ना किसी के सामने मैं हाथ धर सका।

पहलू थे बातूनी मगर इज़हार यूं किए,
ख़ामोश गुफ़्तगू की कब पहचान कर सका?

दीवारे–तन्हा ऊंची–सी मैंने चुनी मगर,
दो दर की भीड़ रोकने ना ही उतर सका।

सदमात आगे हो तो क्या ख़ुशियों के दम भरूँ?
यूं कब हवा–सा जश्न मेरा घूम फिर सका?

यूं आँख मूंदते हुआ हो वाकिया कोई,
ना वक़्त को बिछा कहीं भी मैं गुज़र सका।

16. ग़ज़ल

न कोई बात कभी आरपार हो पाई।
निगाह खुलते ही सुब्हे–खुमार हो पाई।

मेरी सताएगी मासूमियत सभी शै को,
रसम जीने की मेरी धारदार हो पाई।

जिगर जो जानता था आदमी सरापा ही,
ये ऐसी अफ़वाह भी तो शानदार हो पाई।

हमारा दर हमें पहचानने न पाया भी,
हमारी जानकारी ही क़रार हो पाई ।

क्यूँ शाम होते ही आवारगी की राह चल दें?
लगी दरों पे नज़र सबका प्यार हो पाई।

17. ग़ज़ल

आँख खोलूं पर नज़ारे पे तो सीधा बार है।
मैं मुक़ाबिल क्या रहूँ बेग़ाना जो श्रृंगार है।

पास मैं होते हुए भी दूर रहता हूँ यहाँ,
कौन मानेगा कहानी मेरी ये दमदार है।

सुन ले मैं मिलता तुझे एकाद पल के लिए,।
ऐसे कहने को कहाँ मानी कोई दरकार है?

याद के अंजाम में तक़िया भी नम हो ही गया,
ये न साले आँसू हैं, बरसात की ही धार है।

सांस का होना न होना एक–सा लगता मुझे,
जिंदगी से रूबरू "भीनाश" तो कई बार है।

18. ग़ज़ल

सहमो–अदब कैसी ही थी दोनों जहान की?
उजली चमक भी थी यहाँ ख़ूंभर निशान की।

थे एक दूजे के हाथ में साइल के पात्र भी,
बेजान ही तो फ़िक्र थी देने के मान की।

मेरा कहन तो अनसुना ही आपको रहा,
थी बोलने की तक़ तुम्हें मेरी ज़ुबान की।

बजता मुसलसल शोर था कुछ उसके बावजूद,
हल्की झनक ना सहन में थी कोई आन की।

अल्फ़ाज़ छोड़े चल पड़ी मंज़िल ख़ामोशी की,
थी लम्हे– लम्हे की गवाही रह रवान की।

19. ग़ज़ल

फिर अचानक एक–दम रोना पड़ेगा बेसबब।
जाग हरदम टूटना अपना रहेगा बेसबब।

जो ख़याल टकराते हैं हाँ और ना के बीच में,
बाहमी ख़ामोशी को लूटना चहेगा बेसबब।

ज़ीस्त की आराइशें की मैंने बेलोसी बरत,
छूट के झिलमिल ही ताड़न जो बहेगा बेसबब।

मैं रवां हूँ देख सच्चे ही जवाबों के लिए,
ख़त्म हल्के ही सुकूं तेरा मिटेगा बेसबब।

उंगलियाँ उनकी पकड़ पड़कार चाहे ही किए,
जानकारी का सबब घुलना पड़ेगा बेसबब।

20. ग़ज़ल

तज़्करे की बात ना है पर सदा बोलूं ही मैं।
होंठ पर रख होंठ खुद को यहाँ ढूंढूं ही मैं।

क्यूँ लिपटती हैं हवाएं बंद नज़रें हो मगर?
आँख ने करवट न बदली क्यूँ पैरहन ओढूं ही मैं?

तह में गहरे मानी के हरदम ही जाना था मुझे,
हर यक़ीं ख़ामोश–सी गहराई से जोडूं ही मैं।

हम कहाँ थे ,तुम कहाँ थे ,क्या नफ़स ढूंढ़े कोई?
इंतिहाई ओज पे जा इक सड़क छोडूं ही मैं।

भोग क्या है, भागना क्या, मैं सदा बेदार हूँ,
रख के जज़्बा–ए–गवाही जिंदगी खोलूं ही मैं।

21. ग़ज़ल

सांस के दिनरात सर को फोड़ती देखा करूँ।
दरमियां खूं तैया यूं याद तेरी दौड़ती देखा करूँ।

ये शरम बेशर्म हो के हाथ धो लेती यहाँ,
शाम होते हर रसम को तोड़ती देखा करूँ।

बंद आँखें करने से मिटती कहाँ मन की नज़र?
जागते और सोते ही घर छोड़ती देखा करूँ।

रोप लेती है सभी को बेधड़क कच्ची समझ,
यां से ले के वां तलक हल जोड़ती देखा करूँ।

हर सड़क आई नज़र में दरमियां अपने कहीं,
यूं घड़ी में राबते को छोड़ती देखा करूँ।

22. ग़ज़ल

गर बैठ पाओ तुमसे भीगी बात मैं करूँ।
सूरज पे पर्दा करके कहीं रात मैं करूँ।

आज़ादी एतराफ़ करूँ या महर को,
परबत के आगे लड़ने की ताक़ात मैं करूँ।

समझे मुझे न आके शबो–रोज़ हो के भी,
बेलोस गुफ़्तगू के भले जज़्बात मैं करूँ।

मीठी ज़बान बोल सभी जी रहे यहां,
कड़वे ही सच को बोल मेरी घात मैं करूँ।

"भीनाश" दायरा किए कब जीना है मुझे?
हर नक़्शे–नौ से ज़ीस्त की सौग़ात मैं करूँ।

23. ग़ज़ल

घिस–घिस सवाल को हमीं लाचार हो गए।
डूबे तो साथी दूर के दिलदार हो गए।

व्हेमो– गुमानो–घात भी तनहाई में कहीं,
मीठी नज़र के छाले से खूज़ार हो गए।

दरिया क़रीब आ गए जज़्बात जो यहाँ,
झरने नमक–से जाम हम–दो चार हो गए।

लाये थे खुशगवार–सी वो तो फ़जाएं भी,
भाला ही हो के हम पे गोया वार हो गए।

तुमसे ही आबशार तो फूटे थे इश्क़ के,
''भीनाश'' सदियों बाद जो बेकार हो गए।

24. ग़ज़ल

कुछ आब के बग़ैर हम खिलने लगे यहाँ।
तन्हा ज़मीने–खुश्क पे जीने लगे यहाँ।

तुम चाहे मानो जिंदगी तुमने ही काटी पर,
झेला खुदा ने इसलिए चलने लगा यहाँ।

गर्मी–ए–जज़्ब कमरे में बाइस उसी की है,
कुछ याद के सराब जो जमने लगे यहाँ।

किसने सीखाया खेल वे बातों को छोड़ दो,
तन्हा हमीं जो बाहमी सीखने लगे यहाँ।

हर तौर जश्न की यहाँ "भीनाश" है नमी,
सदमे सनम बग़ैर भी रीझने लगे यहाँ।

****

25. ग़ज़ल

यूं जानबूझ के हमीं ने सरापा सहलाए।
तसल्ली देने निगाहों का सदमा सहलाए।

नफ़स जला के ही अनजान दर्दो–ग़म का यहाँ ,
हमींने बेख़ुदी में ही बगुला सहलाए ।

समय को बांध चले तर्क करके वो जबसे,
असर से बाज़ ही रहने को लम्हा सहलाए ।

तुम्हीं ने जाग के आकाश को तका हरदम,
फ़क़त दीवानगी में हमने क्या–क्या सहलाए?

कहा ये तुमने कि ना गुफ़्तगू करो हमसे,
तुम्हारे हुक़्म वही हमने गोया सहलाए।

26. ग़ज़ल

खोल झूला झूलना है बेकरां।
भूलना भी खुद–ब–खुद जो है यहाँ।

जी रहे हैं लोग सब करके ग़लत,
सांधे से जोड़े हमीं अपने जहाँ।

खींच पाओगे न ऐसे नाब को,
सिमटे तन्हा ही लिबासे– रूहो–जां।

फूंक ग़ैरों की ले ग़ुब्बारा भरा,
फूलने दे जो उसे फूलना यहाँ ।

हम तो वाक़िफ़ हैं कि शबनम उड़ गई,
सहरा–सा बढ़ने लगा है कारवां।

27. ग़ज़ल

कई हुदूद से पीछे ही हो गया हूँ मैं ।
कड़ी ख़ला की अजब की–सी हो गया हूँ मैं।

सभी को गो लगे की हारता गया हूँ मैं,
यूं बैठ –दौड़ सभी भारी हो गया हूँ मैं ।

मेरे हबीब लगातार दौड़ते ही रहे,
उन्हें वो देख बबूल सहमी हो गया हूँ मैं।

तुझे बताऊँ कि क्या राज़ है तग़य्युर का,
यूं कैसे शबनमी रूतारी हो गया हूँ मैं?

भले मिटाओ मुझे पोंछते चलो हरदम,
असर में काग़ज़ी जो हस्ती हो गया हूँ मैं।

रहा मैं सुर्ख़ नमी से ही तरबतर,
कहूँ मैं कैसे कि क्यूँ बदली हो गया हूँ मैं?

28. ग़ज़ल

पादार मुझको फिर से अचानक वो कर गया।
जीवन अधूरा दांव मेरे हाथ धर गया।

तश्नालबी की शिद्दतें तेरी न पा सका,
तेरे असर से ख़्वाब शबें तैर कर गया।

सोचा था कोई शै से मैं रक्खूं लगाव ना,
बेकार गुफ़्तगू में ये सारा जिगर गया।

जिस जगा खड़ा रहूँ मैं निगाहे–उरूज को,
जीवन तुम्हारा ग़ैर के पग पे उतर गया।

"भीनाश" भीगना है मेरा लाज़मी बहुत,
कोरे अवाम का जहाँ तो जेब भर गया।

29. ग़ज़ल

जबीं पे छाप मिटानी न सादगी है यहाँ।
उछाल सिक्के कहाँ ज़ीस्त नापनी है यहाँ?

हरेक हाल में जो है वही बताऊँ मैं,
हरेक बार कहो बातें ना टली हैं यहाँ।

अवाम चाहे भूला दे ये वाक़िये फ़ौरन,
ये रब्तगी न किसी तौर काटनी है यहाँ।

मैं सदमे चाहता हूँ लाख बाहर खिडकी के,
निगाह पर्दे में रख के न मारनी हैं यहाँ।

असल में फिर से सरापा ही नम हुए "भीनाश"
किसी की याद की उसको कहाँ कमी है यहाँ?

30. ग़ज़ल

ख़ामौशी आदतन अच्छी लगेगी।
की जो बातें बहम प्यारी लगेगी।

लगा के पलथियां कुछ तो जिए हम,
दमों की रफ़्त नाकारी लगेगी।

असर मैं आज ऐसा करने पाऊं,
दरों की हस्ती भी खिड़की लगेगी।

असर में आँसू के रोना नहीं तुम,
तुम्हें फिर याद भी खारी लगेगी।

ग़ज़ल भीगी हुई "भीनाश" देखो,
हमारी ज़िंदगी सूखी लगेगी।

31. ग़ज़ल

यूं पैकरे–लिबासा ही जीता जहाँ में मैं ।
कैसे जीऊं तलाश जो करता जहाँ में मैं ।

ये अब्रो––झील, तारा से शबनम की हस्ती को,
हर शै को इश्क़ बांटने फिरता जहाँ में मैं ।

अड़ता नहीं तो खौफ़ क्यूँ आमद का खाओ तुम?
वहमो–गुमां सभी के मिटाता जहाँ में मैं ।

फिर झिलमिलों की वजह की है नमी यहाँ,
सब बीच वो ही पार्थ–सा रहता जहाँ में मैं ।

तन्हा नहीं हूँ सांस भी लेता न भीड़ में,
हर पुरशीशे–सुकून को होता जहाँ में मैं ।

32. ग़ज़ल

हमीं ने ग़लती से ये जज़्बे–दम लगाया है।
किसी के वासते जज़्बाते–ग़म लगाया है।

तुम्हारा ज़िक्र किसी ग़ैर को करूँ मैं क्यूँ?
न टोला आरजू का हर क़दम लगाया है।

वो बावजूद ग़लत कर रखे नज़र ऊंची,
हमीं ने बेवजा बेकारे–ग़म लगाया है ।

कोई पूछे तो सही वो जवाब देता हूँ,
नज़र क्यूँ मूंद हिसासे–इलम लगाया है?

कहा ब–इश्क़ किसी ने उसे भीगो डालो,
क्या सिलसिला को ही ख्वाहिश बदम लगाया है?

33. ग़ज़ल

समय को यूं लगा बैठा।
नज़र मुझमें समा बैठा।

ज़हन था सुबह में ठंडा,
उसे सहकर बजा बैठा।

कहाँ मुड़कर चला यारो,
भवों के पार जा बैठा।

तेरे बेताब थे नाखून,
दिले–नाज़ुक सजा बैठा।

न था "भीनाश" तश्नालब,
महीसागर में जा बैठा।

34. ग़ज़ल

इत्तेफ़ाक़न आँख भर जाए कहीं ऐसा भी हो।
दो क़दम भर लौट तू आए कहीं ऐसा भी हो।

बावजूदे–आरजू–ए–वस्ल वो आए नहीं,
आरजू–ए–वस्ल तड़पाए कहीं ऐसा भी हो।

कब सुनी उसने सवालों की पुकारें साथ में?
वो अना से अपनी डर जाए कहीं ऐसा भी हो।

मैं तो ढलती शाम लौटा वक़्त को ही ढूंढ़ने,
खोजते तू ठोकरें खाए कहीं ऐसा भी हो।

वैसे तो वातावरण में कब नमी "भीनाश" की,
आँसू को वो नक़्श दिखलाए कहीं ऐसा भी हो।

35. ग़ज़ल

यूं ऐसी ख़ास कभी जिंदगानी होती है।
तेरे ही सांस की हर सू रवानी होती है।

खुशी भरा ही वो धागा दुबारा बांधूं मैं,
ख़ामौशी तोड़ते सांसों की बानी होती है।

जो मींचूं आंख तो महदूद जश्न हो जाए,
उरूजे–अर्श ज़मीं बेनिशानी होती है।

रखे तो जल उठे काग़ज़ का एक टुकडा भी,
यही तो ज़ीस्त की हरदम गुमानी होती है।

मैं गहरी घात भी बर्दाश्त कर सकूं "भीनाश"
नज़र की बे–वजा भीगी बयानी होती है ।

36. ग़ज़ल

कभी तो वाक़िया हो के जिगर के पार जाना है।
समय दे साथ आलम के सफ़र के पार जाना है।

कहाँ तक खींचूं तस्वीरें हवा की इन दीवारों पे?
मुझे कुछ खलबली हो उल्फ़त के दर के पार जाना है।

ब–कामिल दौड़ के हासिल करे कब अपनी मंज़िल को?
नफ़स में हार रख जीतो के ज़र के पार जाना है।

तवील कोई कहानी की कहां से इब्तदा करना?
नफ़ा–नुकसान के लावा के डर के पार जाना है।

कहा किसने सदा–ए–मौत कोई हाथ भी आए?
अचल साक्षी हुए खिलते सहर के पार जाना है ।

37. ग़ज़ल

वो बेवजह छलकता हथेली भरे भरे ।
जो इब्तदा सुख़न की करूँ फिर से रो पड़े।

फिर से मुझे ले भागती दीवार है कहाँ?
पूछा था मैंने दर को ज़रा बंद ही किए।

फिरते हैं रंग ब्रुश लिए हाथ में सदा,
आराम करती याद नज़ारे धरे हुए।

कैसे निजात पाऊं मुतास्सिर तुझी से हूँ,
झड़–झड़ के हर घड़ी ही तो जज़्बात फूटते।

भीतर समाने से हुआ हूँ मुतमईन मैं,
पाया है इल्म डूबने का तैर–तैर के।

38. ग़ज़ल

मेरी अधूरी दासताँ वैसे जुदा नहीं।
कैसा गुमान है कि ज़मीं पे ये पा नहीं ?

ये ज़िंदगी सफ़र है मैं उसका इल्मदां,
पकडूं मैं क्या समय का रगे–वासता नहीं।

रिश्ते में गुफ़्तगू का असर फैला चार सू,
तर्ज़े–बयां को दिल का मगर राबता नहीं।

करते ही याद पैकरे–रोशन दिखाऊं मैं,
हर शब सुलगती लौ का अगर ये समा नहीं।

तूने सहर संभाल के खुशियाँ बटोर दी,
चंचल है ज़हने–शाम अटल इस तरहा नहीं ।

39. ग़ज़ल

बोलूं भी क्या कि ख़ास बयानी शुरू हुए ?
खुलते नज़र दमन की रवानी शुरू हुए ।

कुछ थरथरा बरस गए ऐसे ही तुम यहाँ,
झीनी जलन हवा की सुहानी शुरू हुए ।

मौक़ा तेरे जतन का लगा हाथ कब मेरे?
दूरी पे क्या हिफ़ाज़ते –सानी शुरू हुए ?

मैं गाह सीधा बैठता आसन पे हिस के भी,
और गाह अपने ज़हन की बानी शुरू हुए।

तन्हा ही उड़ रहा हूँ मैं पड़कार ढूंढने,
थकते ही आसमां की रवानी शुरू हुए।

40. ग़ज़ल

कब गुफ़्तगू में वाक़िया बनके ही जाना था?
वापस तुझे वहाँ से पलट के ही जाना था।

पिघला नहीं फ़ुजूल के मैं तज़्करे किए,
दरबार में ख़ामौशी के मुड़ के ही जाना था।

पाँवों के बल चले न तुम चलते रहे मगर,
जा पाए ज़ात में कहां जबके ही जाना था।

वो शम्अ को बुझाते हैं अपनी ही फूंक से,
यूं तोड़ रिश्ते तीरगी धर के ही जाना था।

कुछ तेरी और उनकी जो ख़्वाहिश समान थी,
चल मन मेरे उतारे पे अबके ही जाना था।

41. ग़ज़ल

एकाध लम्हा आके कोई वस्ल कर गया।
सांसों में उसकी घुलना अच्छा मुझे लगा।

नाकाम वक़्त हो के अकेला ही रो पड़ा,
मन को समझना यूं कहीं आसान तो न था।

ख़ामोश हो चुकी है कथा बोल–बोल के,
आख़िर को बंद आंख में तुमको ही ढलना था।

पुकार तेरी सुन के दूरी से अयां हुआ,
तुझको पता कहाँ तुझे मैं कैसे पा गया।

ऐसा नहीं अकेला कोई जल रहा कहीं,
करनी हैं झिलमिलाहटें होते ही इंतहा।

42. ग़ज़ल

कड़ियां खुलीं न लफ़्ज़ में कोई निजात की।
सौग़ातें ख़ामोशी है तलफ़्फ़ुज़ की बात की।

फिर भी समझ में आई मुझे बात आपकी,
जिसमें न पेशगी हुई लफ़्ज़े–हयात की।

चलते ही दो क़दम जो मुख़ातिब मैं हो सकूँ,
आसारे रब्तगी नहीं दूरी पे साथ की।

क्यों डूबने का खौफ़ तुम्हें बेकरां हुआ?
पाईं न तैरने से भी खुशियां ये ज़ात की।

ग़लती से तूने शम्स को उंगली दिखाई थी,
कुछ झिलमिलाहटें हुईं भीतर बिसात की।

43. ग़ज़ल

जिगर में उतर नाप कोई कहां पर रखा है?
बदन छोड़ फैलाव भी मुस्तक़िल धर रखा है।

शबें ढलती हैं मेरा नामो–पता ही होने से,
नज़र मूंदे बेदारे–तपिशा ही तो भर रखा है।

ख़ामौशी समझ पाए न इसलिए बोलता हूँ,
न जपता हूँ मैं कुछ सुकूं वाक़िया कर रखा है।

दीवाना हूँ तनहाई का, छोड़ दे सब शिकायत,
ये क्या लोग बोले कहीं उसका ना डर रखा है।

दी दावत है वो ही फ़लक को कि जिसनें यहाँ पर,
पंछी की उड़ानों में आलाप का स्वर रखा है।

44. ग़ज़ल

रात की कोई हिफ़ाज़त कर सके ना।
वासते सूरज के फ़ुर्सत कर सके ना।

हो गया है एक–सा जीना यहाँ पर,
आप में सांसों की वुसअत कर सके ना।

****

मन लिए ही बैठ जा फ़रमान सुनकर,
ये ख़ामौशी की करामत कर सके ना।

दूर क्या चलते बचाए ही ख़ुदी को,
ये मेरी ख्वाहिश की ख़लवत कर सके ना।

हमको पीटा ढोल–सा ही जो किसी ने,
ज़ीस्त हर लम्हा हिफ़ाज़त कर सके ना।

45. ग़ज़ल

रंग–रंगों से चुराके कुछ नज़ारे, रूक आख़िर जाएँगे।
ढूंढ़ के मफ़हूम को दो–तीन सारे ,रूक आख़िर जाएँगे।

भागते ये वाक़िये आसां नहीं महफ़ूज़ रखना दिल में तो,
खोल के मुठ्ठी के दरवाज़े हमारे, रूक आख़िर जाएँगे।

सांस रोके मौन धरके, यूं तो बैठे हैं हमीं मस्ती में पर,
बोलते नक़्शे बना के कुछ तुम्हारे, रूक आख़िर जाएँगे।

डूब तह में फिर उभर के साहिलों पे लगने की हिंमत कहाँ?
साथ क़दमों के डूबो के जल के धारे, रूक आख़िर जाएँगे।

खोज–सा कुछ खोजते ही जिंदगी अंजाम पाई बेअसर,
दासताने–अज़्म के उड़ते गुबारे, रूक आख़िर जाएँगे।

46. ग़ज़ल

होंठ को तश्ना रखो तो मानूं मैं।
जिंदगी जीने लगो तो मानूं मैं।

कांच की दीवार को चुनेंगे हम,
क़ुफ़्ल से मुंह बंद रखो तो मानूं मैं।

रंग अपना क्यूँ छुपाए आप फिर?
मौत को गर रोक लो तो मानूं मैं।

सांस मिटते ही नई शै हो शुरू,
ये कथा क़ायम करो तो मानूं मैं।

किसलिए "भीनाश" ओढ़ो यादे–ग़म?
आंख को ग़म से भरो तो मानूं मैं ।

47. ग़ज़ल

क्यूँ गुब्बारों के बिना अल्फ़ाज़ ख़ाली, मैं अभी समझा कहाँ?
मुस्तक़िल चाहे हुई है बात सारी, मैं अभी समझा कहाँ?

ढूंढ के सिम्तें सही मैंने किया उनको इशारा एकदम,
काट क्यों एकाध चक्कर बैठे राही, मैं अभी समझा कहाँ?

मेरी भीतर मैंने कबसे रोक रक्खा शख़्से–नामानूस को,
मैं हसूं उस पे कि मैं दूं हाथताली, मैं अभी समझा कहाँ?

पहन के आकाश मैंने सारी वुसअत को समेटी रूह में,
क्यूँ ख़ुदा की हो गई है बादबाकी, मैं अभी समझा कहाँ?

इक अकेला दूर भागा है यक़ीं तेरे न होने का जहाँ,
थाम के क्यूँ याद तेरी मैंने रक्खी, मैं अभी समझा कहाँ?

48. ग़ज़ल

ज़िंदगी का हाथ थामे सांस को टेका,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।
रिश्ते को बाहम ही आसारे–यक़ीं–यारा,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

बोलने दे, डोलने दे, छोड़ने दे,
तोड़ने दे, जोड़ने दे, पर मगर,
जब नज़ारे खटके, नाटक को नया चेहरा,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

साथ दस्तावेज़ के सारी लिखावट हो गई
मेरे मुख़ालिफ़ इस तरह,
तज़्करे में कमरे का मेरा भी कुछ हिस्सा,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

यूं सरापा देख मुझको हो गई पहचान
दर को कैसे अंदर जाऊं मैं?
बालो–पर जज़्बात के ले मोर का सांचा,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

क़हक़हे तुमने लगाए क्यूं है बोलो,
डोलने का है सबब क्या, ये कहो?

मांगना लाज़िम मगर मैं बारहा कहता,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

49. ग़ज़ल

आंख मूंदे इन नज़ारों को जलाऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।
मैं पिघाले रंग को यूं क्या जताऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।

ज़िद मैं कब करता यहाँ, पर
खोलूं मैं मफ़हूम सारे बीच में,
बैठ साकित लफ़्ज़ को हर मैं जलाऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।

तू जगाता हो मुझे मुमकिन कहाँ ख़ामोश
बैठा हूँ यहाँ पर कबसे मैं,
मन तुझे भी भागता देखूं, दिखाऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।

बात का भी ले मज़ा, दो बात पूछी,
बात बोली, ज़िन्दगी जीए बिना,
बात को कब टाल के ख़ुद को जिलाऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।

आंख में आकाश को भी लो छुपाऊं
गर समझ पाए मुझे तू कोई पल,
कब कहूँ मैं पाल अज़्मों को दिखाऊं,
क्या है ये आसार तू समझा मुझे।

50. ग़ज़ल

सांस को दीवाना ही गाहे रखो।
जान को हरदम ही झुकाए रखो।

कब तलक चैनो–अहिंसा ढूंढ़ने?
ज़िंदा को मुरदा ही बतलाए रखो।

हाथ कब खुले यहाँ किसको पता?
क्यूँ लबालब अहम छलकाए रखो?

ध्यान क्या हो जो टिकाओ एक पग?
दूसरा पग काहे घुमाए रखो?

कब तलक करते रहेंगे गुफ़्तगू?
यूं कहां पे मानी टिकवाए रखो?

51. ग़ज़ल

मख़सूस राज़ ये लम्हों के पढ़वाने, कहो किससे मिलूं?
तक़ल्लुफ़ की ज़ुबानी को ही अपनाए, कहो किससे मिलूं?

लबालब जज़्ब की जो की हिफ़ाज़त है ख़ामौशी धरके ही,
ख़ामौशी में रवां आंसुओं में होने, कहो किससे मिलूं?

सहारा दे कहां पे आबरू की लाज रक्खी आपने!
सभी पैमान से पैमान समझाए, कहो किससे मिलूं?

जिगर से दूर होता ज़लज़ला है, कब कहाँ यारो इधर?
सरापा ज़ात को झिलमिल ही सुलगाने,कहो किससे मिलूं?

कहो झगडूं कि सर पटकूं कि छोडूं मैं मुक़द्दर वक़्त पे?
हमीं को ज़ीस्त ने लालच दे भरमाए, कहो किससे मिलूं?

सही लम्हा, सही ना बोल पाया, कामे–आसां भी गया,
घड़ी सदमात उसके झेलने पाने, कहो किससे मिलूं?

फ़क़त "भीनाश" तो "भीनाश" है कर लो यक़ीं उसका भी तुम,
हथेली भर के सबकुछ जो है फैलाए, कहो किससे मिलूं?

1

बरगद के साए से व्यक्तित्व के धनी : शैलेष पंड्या 'भीनाश'

❖ डॉ. भरत जादव

किसी चिंतक ने ठीक ही कहा है कि समाज में तीन तरह के लोग होते हैं। एक वह जो जन्मजात महान होते हैं। दूसरे वे जिन पर महानता थोप दी जाती है। और तीसरे वह जो अपने दम पर वह मुकाम हासिल करके खुद–ब–खुद महानता की श्रेणी पा जाते हैं। हालांकि शैलेष पंड्या के लिए यह कहना अभी ठीक नहीं होगा कि उन्होंने महानता की किसी श्रेणी को पा लिया है, पर उनकी कार्यशैली, गति और लगन के मद्देनजर यह उम्मीद जरूर बँधती है कि कभी न कभी वे तीसरे दर्जे में पहुंच ही जाएंगे। हमारी यह धारणा उनके प्रति हमारी भावनाओं के कारण नहीं परंतु उनके कार्यों को देखकर व्यक्त हुई है। जिसे इस लेख को पढ़ने के बाद आप भी महसूस करेंगे।

कवि शैलेष पंड्या का जन्म अरवल्ली जिला, गांव गावट में अपने ननिहाल में 24 जून 1978 को हुआ था। उनकी माता का नाम बसंतीबहन और पिता का नाम पूनमचंद है। उनका पुश्तैनी गांव सारिया है, जो महीसागर जिले के वीरपुर तहसील में स्थित है। चौथी कक्षा तक सारिया प्राईमरी में पढ़ाई की। उसके बाद वहां से स्थानान्तर करके उन्होंने पांचवीं से सातवी कक्षा तक की पढ़ाई पाँसरौड़ा प्राईमरी स्कूल में की। अभी भी किसी एक स्थान पर पूर्ण शिक्षा प्राप्त करना शायद इस बच्चे के भाग्य में नही था। कक्षा आठवीं और नवीं में एल. एन. संघवी हाईस्कूल, मोहनपुर, साबरकांठा और कक्षा १० की पढ़ाई एम.एम.मेहता हाईस्कूल उभराण, अरवल्ली और कक्षा ११और १२वी रणजीतपुरा हाईस्कूल, रणजीतपुरा, महीसागर से पास करके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण उच्च शिक्षा की ओर न जाकर उन्होंने आई टी आई मोड़ासा से इलेक्ट्रीशियन कोर्स किया।

उसके बाद अपनी आर्थिक व्यवस्था का रास्ता खुद तय करते हुए वे आगे बढ़ते रहे। पढ़ाई की आग उनके भीतर थी, जिसकी रोशनी में आगे बढ़ते ही रहे। आगे चलकर उन्होंने गुजरात विश्वविद्यालय से अंग्रेजी भाषा में बी.ए, एम.ए, बी. एड. तक की पढ़ाई की। साथ में डिप्लोमा इन जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन इंदिरा गांधी ओपन यूनिवर्सिटी से किया। उन्होंने वाणी सर्टिफिकेट कोर्स आकाशवाणी से किया है। साथ में पावर ऑफ पॉजिटिव एटीट्यूड और इंग्लिश कम्युनिकेशन स्किल सर्टिफिकेट कोर्स ए.एम. ए.अहमदाबाद से प्राप्त करके अपनी प्रतिभा को और भी निखार देने का प्रयास किया है। आकाशवाणी में बतौर कवि, नाट्य अभिनेता, अनुवादक, असिस्टेंट डायरेक्टर और हिम्मतनगर, अहमदाबाद, और गोधरा पैनल पर जज की हैसियत से भी अपनी भूमिका निभाई है। दूरदर्शन, अहमदाबाद से कई बार आप कवि के रूप में अपनी रचनाएं प्रस्तुत कर चुके हैं। वे इम्प्पा मुंबई रजिस्टर कंपनी श्री गणेश कम्युनिकेशन के जरिए कई एड फिल्मों में भी काम करते रहे हैं। साहित्य के प्रति आपकी निरंतर रुचि होने के कारण २००५ से २००८ तक अहमदाबाद में बुधसभा और शनिसभा में शिरकत करते रहे हैं। साथ ही गुजरात के कई शहरों में आयोजित कवि सम्मेलनों में वे सफल संचालन भी करते रहते हैं। गुजरात विद्यापीठ से हिंदी विनीत की परीक्षा पास की हैं।

अपनी शैक्षणिक योग्यताओं को बढ़ाते रहने के साथ–साथ उन्होंने ब्लूम डेकोर, अरविंद, बंधेज, एस.जी.वेट केयर, रिलायंस, आकाशवाणी जैसे कई स्थानों पर कार्य किया है। पिछले 8 सालों से वे अहमदाबाद जीटीपीएल गुजराती चैनल में प्रोग्राम डायरेक्टर के रूप में बेहतरीन कार्य कर रहे हैं।

जीटीपीएल गुजराती टीवी चैनल में काव्य रस के माध्यम से उन्होंने अनगिनत कवियों की रचनाओं को श्रोताओं तक पहुंचाने का बहुत बड़ा काम किया है। अपनी इस सेवा के कारण वर्ष 2018 में इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड में उनका नाम अंकित किया गया है। जीटीपीएल के अपने कार्य के दौरान कृषि और किसान कार्यक्रम के 50 से भी अधिक नाट्य रूपांतर हुए है। साथ में विषय निष्णातों के साथ 197 से भी अधिक एपिसोड में उन्होंने डायरेक्टर, एंकर, एक्टर, लेखक एवं टाइटल लिरीस्ट के रूप में काम किया है। उनके इस योगदान के कारण 2018 में इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड में उनका नाम दर्ज किया गया है। जो कि रिजिनल टेलीविजन के लिए रिकॉर्ड है। उनका दूसरा कार्यक्रम काव्यरस में भी पांच तरह के अलग– अलग कार्य एक साथ करने के कारण 2018 में इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड में नाम दर्ज किया गया है।

जीटीपीएल में पुस्तक परिचय, संबोधनों सरवालो, एजुकेशन, भक्तिरस, सर्जक के साथ संवाद, स्वरसंगम, रथयात्रा लाइव, गणेश महोत्सव लाइव, हिंडोला लाइव, श्रावण शिव मंदिर लाइव, इस तरह के 1100 से भी अधिक एपिसोड वे कर चुके हैं।

भारत कृषिप्रधान देश होने के कारण उन्होंने साहित्य के साथ–साथ गायमाता आधारित कृषि के कार्यक्रम करके संस्कृति का भी जतन किया है। ''खेती और खेडूत'' टाइटल सॉन्ग आज भी चिरंजीवी है। शैलेष पंड्या ''भीनाश'' का डॉक्टर राकेश का रोल आज भी गांव के किसान भूल नहीं है।

एसजी वेट केयर के अपने कार्यकाल के दौरान पब्लिक रिलेशन ऑफिसर के तहत रोहतक से लेकर एलेप्पी तक की सफर आप कर चुके हैं। उनके द्वारा निर्मित आकाशवाणी हिम्मतनगर से ''बापू की अस्थिका गांव महादेवपुरा'' डॉक्युमेंट्री नेशनल लेवल पर विजेता हुई थी। श्री महाकाल कम्युनिकेशन नाम से रजिस्टर संस्था का संचालन कर रहे हैं। जिसके तहत गुजरात के कई स्थानों में गुजरात साहित्य अकादमी, गुजरात संगीत नाटक अकादमी, वन विभाग के साथ संलग्न होकर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन और संचालन कर रहे हैं। लगातार 24 घंटे तक राजकोट में आयोजित राजकोट महाकाव्य कुंभ का समग्र प्रसारण उन्होंने किया था। जीटीपीएल के लिए उन्होंने रथयात्रा का लाइव एंकरिंग, श्रावण, गणेश महोत्सव, हिंडोला रिकॉर्डिंग और प्रसारित, काव्य हेली गुजरात के ६ जिल्लो में किया है। स्वरहेली भी संगीत का कार्यक्रम हर जिले में वो कर रहे है और भारत के २२ राज्यों में प्रसारित भी जीटीपीएल के माध्यम से कर रहे है। यह जानकर बड़ी खुशी होंगी की जीटीपीएल में अब तक उन्होंने ४०० से अधिक कवि, २०० से अधिक कवयित्री, और १५० उपरांत महानुभावों का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है।

केवल 16 वर्ष की आयु में कैंसर हॉस्पिटल अहमदाबाद में अपने पिताजी की ट्रीटमेंट के लिए गए, और वहाँ पर जिस वातावरण का उन्होंने अनुभव किया वह हमेशा उनके मानसपट पर अंकित रहा, जो आज भी उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है। जिंदगी ने बचपन से ही विपन्नताओं में भी सफलता प्राप्त करने की चुनौतियों में डालकर उनको बहुत कुछ सिखा दिया है। 12वीं कक्षा की पढ़ाई के बाद उन्होंने आईटीआई की। और उसके बाद आर्थिक जिम्मेदारियों को अदा करते हुए पढ़ाई करने की चुनौतियों का सामना करके भी अपनी पढ़ाई भी पूरी की। जिंदगी की इन चुनौतियों के कारण ही उनके स्वभाव अनुसार सन् 2012 में उनका पहला काव्य संग्रह 'निखालस' प्रकाशित हुआ था जिसमें गजल, गीत, मुक्तक, ट्रायोलेट, अछांदस रचनाएं प्रकाशित हुई है। गुजराती के प्रसिद्ध गजलकार, चीनू मोदी, राजेश व्यास मिस्कीन, डॉक्टर सतीन देसाई परवेज आदि ने बहुत ही सराहना की है।

कवि लोग, कविता, धब, गजलविश्व, परब, कुमार, कवि, शब्दसर, शब्दसृष्टि आदि पत्रिकाओं में आपके गीत गजल एवं समीक्षा लेख प्रकाशित होते रहते हैं। साथ ही गुजराती दैनिक पत्रों में विभिन्न प्रतिभाओं की भेंट और वार्तालापों का प्रकाशन भी हुआ है और इंडिया टुडे डीएनए जैसे अंग्रेजी दैनिक में भी उनके इंटरव्यू प्रकाशित हो चुके हैं। गुजराती साहित्य के अलावा उनकी हिंदी गजलें भी प्रकाशित हुई हैं। उनके गुजराती काव्य संग्रह निखालस की समीक्षा के लेख एवं 51 गुजराती गजलों का हिंदी अनुवाद साहित्य वीथिका, जो कि अंतरराष्ट्रीय हिंदी शोध पत्रिका है, उसमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी गुजराती गजलों के डॉ सतीन देसाई 'परवेज' के द्वारा शबनमी गुफ्तगू और शबनमी आफताब नाम से हिंदी में

अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। शबनमी गुफ्तगू ने गुजरात हिंदी साहित्य अकादमी का अनुवाद का प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। गुजरात प्रांत में कुछ ऐसे भी रचनाकार है जिन्होंने गुजराती के अलावा हिंदी भाषा में भी उम्दा रचनाकर्म किया हैं, जिन्होंने न केवल हिंदी भाषा को सम्मानित किया है, बल्कि हिंदी के जरिए गुजरात प्रांत का नाम भी रोशन किया है। उन रचनाकारों की गौरवशाली फेहरिश्त में शैलेष पंड्या ''भीनाश'' का नाम भी सम्मिलित है।

अपनी इन विभिन्न प्रवृत्तियों के कारण समाज की ओर से वे अनेक सम्मानों से सम्मानित किए गए हैं। जिसके तहत खेड़ा जिला सद्भावना अवार्ड, उम्मीद एकता अवार्ड, लांघनज मेहसाणा युवा साहित्यकार अवार्ड, तपोभूमि भरूच अवार्ड, सुर समन्वय फाउंडेशन चैतन्य शिखर सम्मान, गुजरात शब्दायन संस्था की ओर से समाज रत्न अवॉर्ड, 10 वर्ष पत्रकारत्व यात्रा सम्मान महीसागर जिला तंत्र की ओर से, साथ ही अमोल आदर्श प्रकाशन पारितोषिक बेहतरीन संचालन के लिए, रावजी पटेल अवार्ड, गुरु मैया हरेश्वरी अवार्ड आदि से आपका सम्मान किया गया है। साथ में शब्द सेतु संस्था वडोदरा की ओर से संत पुनीत महाराज पारितोषिक भी दिया गया है। मोरारी बापू प्रेरित उत्तरकाशी सर्जक यात्रा में एक सर्जक की हैसियत से आपको निमंत्रण दिया गया था। उमाशंकर जोशी के गांव बामना में भी आपने मोरारी बापू प्रेरित कार्यक्रम में हिस्सा लिया था।

उनकी रचनाओं के कुछ शेर उनकी सर्जकता के परिचय हैं।

गोया कि मेरी सोच के शबनम भी ला के ही करे,
श्रृंगार सब में आपका यह सूर्य आ के ही करे।

* *

हो मुसलसल गर्दिश ए दौरा के घेरे में मगर,
इक नशे में आपके महफूज ही पाव मुझे।

* *

झिलमिलाती जिंदगी लेकर जिया आराम से,
लड़खड़ाती रेख कर मैं घर जिया आराम से।
सांस की कुव्वत कहां घेरे मुझे आभास में
मौन धर के भीड़ में अक्सर जिया आराम से।

प्रकाशित पुस्तकें

(१) निखालस गुजराती काव्य संग्रह २०१२
(२) शबनमी गुफ्तगू २०१६ (हिंदी अनुवाद)
(३) शबनमी आफताब २०२१ (हिंदी अनुवाद)

प्रकाशाधीन पुस्तकें

(१) शाश्वत (अन्य साहित्यकारों के लिए लिखी गई प्रस्तावनाएं, लेख आस्वाद आदि।
(२) जीवी लइये जीवन (प्रेरणात्मक निबंध संग्रह)
(३) अधिक स्वास (काव्य संग्रह)

शैलेष पंड्या भीनाश एक अच्छे इंसान है। उनसे पहली बार मिलने वाले को वे यह महसूस ही नहीं होने देते कि वे पहली बार मिल रहे हैं। साहित्य और अपने कार्यों में भारतीय स्थापित मूल्यों को वे नित्य महत्व प्रदान करते रहे हैं। गुजरात के साहित्य जगत में उनकी लोकप्रियता देखते ही बनी है। वे आज जिस मुकाम पर स्थित है उसे देखते हुए प्रसिद्ध कवि रामदरश मिश्र जी के शब्दो में कह सकते हैं :

किसी को गिराया न खुद को उछाला,
कटा जिंदगी का सफर धीरे धीरे।
जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगाकर,
वहाँ हम भी पहुंचे मगर धीरे धीरे।

१७३ / आदिनाथ सोसायटी,
अमितनगर सर्कल, कारेलीबाग, बड़ौदा।

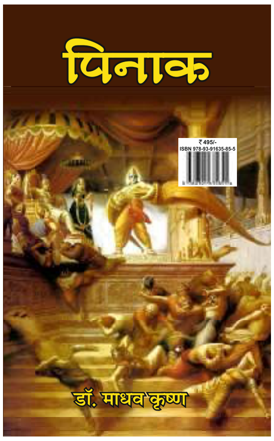

2

बाख़ुलूस जज़्बात की कबीराई

❖ डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु'

गुजराती अदब ने कई युगों से अपने बाकमाल करिश्मों से आलमे–अदब पर अपना : आब जमाया है। यह चाहे गीत, सोनेट, अछांदस, हाइकु हो या गजल की कोई विधा हो। गुजराती अदबनवाज ने दुनियाभर के साहित्यिक पहलुओं पर अपने आंख–कान, मन– हृदय जमाए हुए हर नये अंदाज को, अपनी सर्जनी में निखारकर मां सरस्वती देवी की उपसाना की है। जिसके फलस्वरूप आज के दौर के गुजराती कविगण ने न केवल गुजरात ही में, बल्कि सारे आलमी कोने–कोने में अपनी कामयाबी के परचम फरहाए हैं। इसी सिलसिले में यह आलेख इक ऐसे जोशमंद और होशमंद शायर शैलेष पंड्या 'भीनाश' के बहु आयामी सर्जन के बारे में रोशनी डाल रहा है।

मूल महीसागर जिले के यह मासूम बाखुलूस शायर ने अपनी गजल, गीत, मुक्तक, ट्रायोलेट और अछांदस सर्जनी में अपनी एक ऐसी जिंदगी की अनुभूतियों के मोती पिरोये हैं। जो शायद ही किसीको नसीब हो। देहात की विषमतम परिस्थितियों में गरीबी को ही पहन–ओढ़कर, मक्कमता से जिंदगी की ऊंचाइओं को छूने लगातार आगे कदम बढ़ाते हुए इक नौजवान शैलेश, अपने पिता जी के स्वरपेटी को केंसर के मर्ज में केवल अपनी जवानी में खोते हुए देख, शायद खुद ही अवाचक हो गये होते। लेकिन मां सरस्वती ने उसकी अलग दिशाएँ निर्मित की होगी। सो वह नैराश्य या निराश्रित होने के बजाय पुरजोश अपनी कघ्लम आजमाई से अपनी अनुभूतियों को काव्य सर्जनी की दिव्य ध्वनि में निखार, सकारात्मक पहलुओं को पिरोते हुए अपने गांव कलोल से अहमदाबाद के, आकाश वाणी एवम जीटीपीएल हाउस तक रोजाना अपने कारोबार के सफर में, दीवानावार लगे रहा।

अपनी दीवानगी को अंजाम देते हुए उन्होंने अपना पहला काव्य संग्रह सन 2012 में ''निखालस'' शीर्षक के तहत प्रगट किया। जिसने इस फनकार के असीम चैतन्य को सत्तर गजल और चौत्रीस जितने गीत के हार में पिरोकर मां सरस्वती देवी को शणगारित किया। आइए जियादा उनकी शख्सियत के फेरे न लगाते हुए, सीधे ही उनकी सर्जनी की गहराइयों में गोते लगाए।

आइए उनकी पहली गजल के चंद अशआर से ही हम शायर की मीनाकारियां की पहचान पा लें।

''कदी घटना बनीने पण हृदयनी पार जावुं छे।
समय जो साथ आपे तो समयनी पार जावुं छे।

कह्युं कोणे के पडघा मोतना पण हाथमां आवे?
अचल साक्षी बनी अंते उभयनी पार जावुं छे।''

यह दो–दो शेर ही केवल हमें अलौकिक इशारा करके दो जहाँ के पार की दर्शनी करा रहे हैं। यहाँ ''पार जावुं छे'' रदीफ में शायर ने जिन क़ाफियों की प्रयुक्ति की है। वह क़ाफिया हृदय, समय और उभय, हमें गजल के प्रतीक की ऐसी मिसालें दे रहे हैं। जिसमें हृदय के अनंत भाव विश्व से लेकर समय की शाश्वतता और उससे भी आगे जो ब्रह्माण्ड के तत्वों के पारस्परिक अनुसंधान का उद्देश उभय में है। उनका अविभाज्य जोड़ हमारी चेतना को भी उजागर करता है।

शायर की संवादिता प्रथम चरण में खुद ही को ''पार जावुं छे'' उद्देशित सफर की रफ्तार में गतिमान कराती है। शायर अपने अहं ब्रह्मास्मि होने की परिभाषाओं से ज्ञात होने के बावजूद भी, अस्तित्व की अवलंबन आवश्यकता की वास्तविकता से कहीं भी चुक न करते हुए यह घटना का रूप धरे, समय के साथ की उम्मीद किए, समय के पार, यानि कि एक ऐसे आलम में जहाँ काल का कोई ऐश्वर्य ही न हो। वहां आत्म स्वरूप

पहुंचना चाहते है। यहाँ जब समय की मिसाल अपने विशिष्ट रूप में झिलमिलाती है। तो हमें जहन में मिर्जा गालिब का वह आत्म लक्षी मिसरा ''मैं गया वक़्त नहीं जो लौट के फिर आ न सकूं।'' झिलमिलाता नजर आता है। जहाँ गालिब भी अपने अस्तित्व के समय की सीमाओं के पार की अवस्था की खुद्दारी में खोये हुए नजर आते हैं।

शायर की परा दर्शनी यहाँ पर ही न रूकते हुए, हमें एक ऐसे आत्म स्वरूप की तरफ इशारा कराती है। जो जनम–मरण से परे हो। जिसे ना ही मोत की पलटती सदाओं को अपने हाथ की गिरफ्त में बांधकर दिगविजयी होने का दावा करना है। ना ही खुद अपने अमिट अस्तित्व का साक्षात्कार कराना है। शायर तो इन दो अस्तित्व के दरमियानरिषीतुल्य साक्षी होकर ही, अंत में इन सभी घटना चक्र से परे होना चाहता है। शायर अपनी पहली ही गजल में उन अध्यात्म के पहलुओं को खोल रहे हैं। जो भगवतगीता के अध्यायों में निहित रूप ही पाए गए हैं।

वक़्त की पहचान शैलेष जी जैसे शायर ही सही तौर से कर पाते है। इसी वजह से वह वक़्त को मात देकर अपनी मुठ्ठी में बांधकर अनंत विहार करते नजर आते हैं। वरना आम नजरिये से जीनेवाले शख़्स कीक्या हैसियत कि वो जाहिराना या छीपी हुई वक़्त की हरकतों को, वक़्त के मक़्सदों को निहारकर अपने सही रास्ते तय करे। इसी अर्थ को बिंबित करता हुआ उनकी प्रलंब बहर का एक शेर आपके सामने रखकर मैं भी आइना दिखाने की कोशिश कर रहा हूँ।

''समय ने कोई पण रीते असलमां ओलखी शके छे क्यारे तुं?

जरा टूंकी पडे छे आंखनी समझण, तने ए कोण समजावे?

उपरोक्त शेर ''लगागागा'' छंद के चार प्रवाहित आवर्तन में हमें समय की पेहली के बारे में समझा रहा है। किसी भी तरह समय को पहचानना इसलिए मुश्किल ही नहीं पर नामुमकिन है कि हमारी आंख जो देख कर तय करती है। वो तो केवल उसके भरम का ही सारांश होता है। कवि के नजरिए से ऐसी नासमझ आंखों के लिए सही मतलब तय कर पाना तो इस युग में असंभव है। आंखों का सजीवारोपण कर के उसमें बुद्धि का प्रत्यारोपण करना अपने आप में अछूता फन ही कहलाएगा।

तो दूसरी तरफ समय का सजीवारोपण कुछ और तरीके से करते हुए शायर ने इस जानदार समय को बेरग कहकर गजल में नये रंग भी भरे है। शेर मुलाहिजा फरमाए।

'समझी गयो छुं आपणुं जीवन प्रवास छे।
पकडी बतावुं पण समयनी कोई रग नथी।'

निराकार समय को आकारित कर उस पर वक्रोक्ति में यूँ व्यंग करना भी शायर ख़ूब जानते हैं।

तो इसी आकार सारार्थ की झिलमिलाहटों से हमें अपनी ख़ुद्दारियों से शायर किस तरह से पुरनूर कर रहे हैं। वह उनकी यादों के नूरानी रूप का भी हम दीदार कर लें।

''आकार झलहलतो बतावुं याद कर मने,
हुं रोज रात्रे सलगी जाऊँ एवी शग नथी।''

यह कवि कहाँ किसी की मरजी के या इच्छाओं की ताबादारी करते हैं। जो कोई भी अपने रातों के अंधेरे मिटाने कवि को दिये की लौ की तरह जला ले। कवि की दिव्य रोशनी पाने की शर्त सिर्फ सादा ही है। उसका वफादारी से स्मरण ही कर लो।

शायर ने अपने एक शेर में सूरज की मिसाल के साथ महाभारत के रथ के पहिये को इशारा कर निहित रूप से जोड़ दिया है। यह मद्यम बहर की गजल की गुफ्तगू के अंदाजे–बयाँ का असर मुझपर कुछ ऐसा हुआ कि इसी गजल को मद्दे नजर रख मैंने शैलेष जी की 51–51 ग़ज़लों का हिंदोस्तानी जबान में भावानुवाद करके उन पर दो किताबें ''शबनमी गुफ्तगू'' और ''शबनमी आफताब'' प्रगट की है। सौभाग्य से इन्हीं रचनाओं को साहित्य विथिका के दो अंकों में शामिल किया गया है। और दोनों किताबों को अकादमी से पुरस्कृत भी किया गया है। यह जानकारी देते हुए आइए शेर की हम बात करें।

''बेसी शको तो एक भीनी वात हुं करूँ।
आ सूर्य पर पडदो करीने रात हुं करूँ।''

इसकी तरजुमाई शक्ल देखिएगा–

गर बैठ पाओ तुमसे भीगी बात मैं करूँ।
सूरज से पर्दा करके कहीं रात मैं करूँ।

शायर अपने मनसूब से यह इक आसान लगती हुई शर्त रखकर यूँ कह रहे हैं।

''गर बैठ पाओ'' यह बैठना आम पलथी नहीं है। यह आत्म समाधि है। जो सदीओं के तप के बाद ही हो

पाती है। क्योंकि इस अवस्था में शायर अपनी पराशक्ति के बल से सूरज पर मध्याह्न ही में पर्दा कर भगवान क्रुष्ण का वो किरदार निभा रहे हैं। जिसने रथ का पहिया सूरज के आगे डाल कर, सांझ का मंजर खड़ा किया था। शैलेष जी ने ऐसे मिथ अर्थात पुराकल्पन का प्रयोग बहुत कम ही किया है। यहाँ इसका चौंका देने वाला प्रयोग कर दिखाया है।

शायरी सही मानों में संवाद की ही करामत है। वह चाहे आत्म हो पर हो या किसी तत्व से हो। आधुनिक छायावादी प्रतीक निरूपण को निखारना अपनेआप में कसौटी है। जिसका स्वयंवर शैलेष जी ने अपनी रचनाओं में सहजता से कर, हमें संमोहित किया है। जिसकी और कडियाँ पिरोते हुए जो तत्वदर्शना हमें हो रही है।

उसकी झांकी हम आपको कराकर धन्य होना चाहते हैं। चलो चंद मुख़तलिफ अशआर से हम रूबरू हो ले।

''दोडतुं आवी छुपाई जाय छे।
कोक मारामां समाई जाय छे।''

शायर की यह तेज रवानियां हमें भी हमारे अंदर खींच बहा ले जाती है। ऐसी छोटी बहर की गजलों में कबीरी दोहाई कमाल करवाने वाला यह शायर अपने बचपन ही से पारिवारिक भक्तिसंस्कार को रगों में सींचकर, ख़ुद ही कबीरी बाल अवस्था के बींब स्वरूप में नजर आते रहे हैं। इसीलिए तो उपरोक्त शेर की रवानी किसी और दिशा में निरर्थक नहीं बल्कि अपने अंतरात्मा में ही लीन हो रही है। यह द्वैत और अद्वैत का जो समीकरण उपरोक्त शेर में हमें दिखाई दे रहा है। उसकी अवस्थाएं अपने आप में कितनी उल्लासमय हैं। जहाँ कोई अगम्य अदृश्य तत्व आपके भीतर दौड़ आकर आपको उसीका रूप धरे। यही तो हर इंसान की, हर फनकार की निजी ख़्वाहिश होती है। जिसमें वही बड़भागी रहे हैं। जिन्होंने अपने आपको पारदर्शी रखा है।

शैलेष जी की गजलों का पृथक्करण और व्याकरण जब अपने संतर्पक तरीके से हो रहा है। तब इस पड़ाव पर हमें जिस माहौल का असर उनपर रहा, उसकी थोड़ी–सी झलकियों से आपको वाकफ्फि कर रहा हूँ। उस दौरान अहमदाबाद में डो .चीनु मोदी संचालित शनिसभा में परवरिश पाने वाले इस शायर को उसी वकघ्त के अहम शायरणराजेंद्र शुक्ल, मनहर मोदी,राजेश व्यास मिसकीन जैसे कई शायरों की बेपनाह लेखनशैली का असर रहा है। लेकिन जो.अनुकरण या अनूशीलन नहीं बल्कि अपनी राहें ख़ुद तलाशता हो। अपने किरदार को ख़ुद ही सजाता हो। अपनी गजल की शिल्पकारी अपने ही मौलिक अंदाज में करता हो। वही सर्जक गजलों की परंपराओं के निर्माताओं की हल्की–सी शायराना झलकियां अपने फन की गहराइयों में डूबकर दिखा पाता है। इसी मतलब के एक शेर पर गौर फरमाइएगा।

''भीतर गयो छुं त्यारथी त्रुप्ति थई गई,
डूबी जवानुं आवड्युं नाहक तरी–तरी।''

शायर के अपने आप में डूबने का अंदाज भी क़ाबिले–तारीफ है। हरकोई जानता है किमुक्ति और संतोष तो खुद अपने भीतर को खंगालकर, उसी में खो जाने से मिलता है। लेकिन जहाँ तक इंसान को उसकी इंद्रियां जिंदगी के सागर में यहाँ वहाँ भटकाती रहती हैं। वहाँ तक वो न तो वह संतोष कोई किनारा हासिल कर पाता है। ना ही उसकी गहराई में लगे मोती चुन पाता है। लेकिन यहाँ शैलेष भाई बेतललब का तैर तैर कर, अंत में इस कदर डूबना सीख लेते हैं कि दुबारा फिर कभी इंद्रियों की सपाटी पर आने का नाम ही नहीं लेतें। यह तैरने से डूबना सीखने की विरोधाभासी प्रक्रिया हमें उर्दू के उस्ताद शायर जिगर मुरादाबादी साहब के इक इश्क़–हक़ीक़ी शेर से जोड़ देती है। जो हमें इश्क़ की आग के दरिया में डूबकर किस कघ्दर तैरना। अच्छी तरह सीखा देता है।

''ये इश्क नहीं आसां इतना ही समझ लीजे,
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।''
–जिगर मुरादाबादी

शैलेष भाई कौन से संवाहक से तैरना–डूबना अच्छी तरह जानते हैं। जिस तरह इक शेर में सूरज से पर्दा करने वाले ऐश्वर्य की महारत का स्वामीत्व अपनी अहम ब्रह्मास्मि में उन्होंने रचा है। कुछ उसी तरह से वह अपनी सांसों पर अपनी मुख़तारी का दावा कर हमें अपनी सनातनता के बारे में इक प्रलंब छंद के शेर की संवाद शैली में आगाह कर रहे हैं। शेर की झिलमिलाती हुई तासीर पर गौर फरमाइए।

''वास प्रगटावी सतत हुं झलहलावी दऊं छुं मारी जातने,

ने तमे पूछ्या कर्युं सूरज तुं क्यारे? मीण तुं क्यारे थयो?''

सांस अपनी आवन–जावन की खुद ही अधिकारी है। लेकिन यह भी तो हो कि इक योगी अपनी सांसों को समाधि स्वरूपदेकर, उनपर भी अपना क़ाबु पा सकता है। यही तो जीव का शाश्वती स्वरूप है। जिसको यह शायर ने न केवल परखा है, सरापा सींचा भी है। जो आम इंसान के बस में न होने से वो तंजिया जुबान में ऐसे सवाल करके किसीकी भी छेड़ खानी करता रहता है। इसी नादानियत को शायर ने अपने दूसरे मिसरे में यूँ कहकर खोला है।

''ने तमे पूछ्या कर्युं सूरज तुं क्यारे? मीण तुं क्यारे थयो?''

यहाँ जो सूरज और मोम की दिन–रात की रोशनी की मिसाल है, उसको उपयोग शायर ने भी अपने कटुता में किया है।

शैलेष जी की गजलों में बुना हुआ हर प्रतीक अनासिर हर नये रंगरूप की चौंकानेवाली गतिविधियों की बेनमून मिसाल हैं। उसकी लाजवाब बेहिसाबी का कोई छोर नहीं। अब यहाँ से हम मोड़ लेते हुए उनकी गीतशैली का भी आचमन कर लें।

इनके गीतों में विरक्त भक्ति, श्रद्धा, निजत्व, समर्पण के जो अंतरभाव छलकते नजर आते है। वह किसी गंगा की लहरों से कम नहीं है। अक्सर देखा गया है कि बहु आयामी होने की चेष्टा में सर्जक स्थायित्व गंवाकर भटक जाते हैं। शैलेष भाई के यहाँ इसकी हल्की–सी भी खोट दिखाई नहीं देती है। जिसको परिप्लावित करने उनके दो भक्ति गीत के मुखडे को हभ गुनगुना कर हरि के समीप चलें।

''हरि करो स्वीकार
शाने तमे बेठा हजी करो विचार
हरिवर करो स्वीकार''

''हरिवर तमारा पगले चाली
रोम रोम सोंपीने तमने
फरती ठाली ठाली''

उपरोक्त दो गीतों के मुखडे में हरि और हरिवर के ही रटण उद्‌गार से कवि सीधे ही

हरि के चरण शरण में आ बैठे है। निराकार हरि को अवतारी अवस्था में ही निरूपित कर कवि हरि से एक सच्चे भक्त के नाते यह सवाल अरज के तौर पर करते हैं कि ''ओ हरिवर, मैं आपके शरण में आप ही के निर्देशित पंथ की परिक्रमा करके आया हूँ।

जब मैं अपने तमाम अंग–अंग, अपने तमामतर अस्तित्व को सोंप निर्मुक्त हो चुका हूँ। तो फिर आप अबतक किस सोच में डूबे हुए मेरे अस्तित्व का निराकारी रूप से स्वीकार करने को राजी नहीं है?

यह सवाल नहीं है, यह शायर की वह सूफीवादिता है। जिसके बीज सदियों से शायर की रूह में पनप रहे हैं।

इस जगह पर इसी मतलब के इक मेरे हरिगीत के मुखडे को दोहरा रहा हूँ। जिसका स्वरांकन डॉ. कपिलदेव त्रिवेदी ने किया था। जिसे शैलेष जी ने ही अपने जीटीपीएल टीवी के स्वर संगम कार्यक्रम में गवाया था। जिसकी गूंज सेन ओजे की हवेली में आशा नाणावटी के कंठ ने छेड़ कर हरि को प्रसन्न किया था।

''हरिवर उकले केम उखाणुं?
घटघटमां तुजने पामुं पण,
तोय तने ना जाणुं?''
–सतीन देसाई

अब आइए कवि की कुछ और संवेदना के
उद्‌गार–अलंकार–शणगार पर गौर फरमाए
जिसे उन्होंने अपनी अछांदस रचनाओं में
पिरोकर हमें चौंकाया है। एक छोटी रचना का आरंभ से अंत तक अनंत लुत्फ लीजीए।

ताली...

''एकबीजाथी दूर रहेतां मारा हाथमां/हिमालयनो एक धोध वहे छे/आंख बंध करीने/हुं वात करी शकुं छुं/नखशिख स्पर्श करी शकुं छुं/बे होठने अधवच्चे खुल्ला मूकीने/उन्मादने आंतरी शकुं छुं/हुं माणस छुं/मारे पण अणसारनी ओढणी ओढीने/एकांतमां समाई जवुं छे/संबंधमां वींटलाई जवुं छे/आकारमां ओगली जवुं छे/तारो हाथ ऊंचो करीने ताली पाडवानी कोशिश तो कर/आंख बंध करीने अवाज तो सांभल/क्षितिजनी आ पार अने पेले पार वच्चे/निरंतर ताली वागी रही छे।''

मेरे नजरिए से इसके आगे कवि का कोई भी चित्रण फीका पड़ जाएगा। सो यहाँ पर हम उनके अलौकिक काव्य अवतरण को दोद देते हुए क्षणभर नहीं, निरंतर का वही पार लौकिक गूंजन अपनी तमाम इंद्रियों

को बंध कर आत्म विरक्त होकर करे। सो हम भी कवि के अधिचौतन्य के ही संचरण से उस परम की और पहुंच पाए।

अंत में शैलेष जी जो कई पारितोषिक से संमानित हो चुके हैं। उनकी विराट शख्सियत का कुछ हवाला देकर कलम को विराम देता हूँ। मौजूदा दौर में यह अहमदाबाद जीटीपीएल टीवी के अनेकानेक कार्यक्रम के नियामक है। जैसे कि काव्यरस, सर्जक साथे संवाद, स्वर संगम, भक्ति, और खेडूत और खेती वगैरह उनके मूख्य है। मूल काव्य चौतन्य के इस अधिकारी ने 'काव्यरस' के अनेक संयोजन गुजरात के सभी जिलों में, तथा महाविद्यालय एवम खघनगी संस्थानों में करके कविओं की शख्सियत को को सारे आलम में रोशन की है। ''सर्जक साथे संवाद'' में न केवल साहित्य को ही बल्कि हर फन और समाज सेवी को लक्ष में रखकर बेनमून संवाद कार्यक्रम किए हैं। शैलेष जी अच्छे संचालक एवम प्रवक्ता के नाते गुजरात में काफी लोकप्रिय भी है। मूल तो यह ''निखालस'' तख़ल्लुस से कविता कहने वाला शायर अपने तख़ल्लुस को हर तरह से न्याय दे रहे हैं। क्योंकि ये फन का, इंसानियत का, ईमान का जनमजात सही बंदा है। जिसके ईमान की नीतियां किसी भी मुश्किल हालात में कभीभी नहीं बदली है। राममंदिर निर्माण के परचम जब एस पी यूनिवर्सिटी में उनके चांसेलर श्री निरंजन भाई पटेल लहरा रहे थे। उस दौरान रामभक्ति कविसंमेलन की व्यवस्था शैलेष भाई ने ही जीटीपीएल की और से कर दी थी। जिसका समग्र इंतजाम साहित्य विथिका पत्रिका के संपादक आचार्य डो.दिलीप मेहरा जी ने शानदार तरीके से किया था। इसी गौरव को हम इस आलेख में दोहराकर दिलीप भाई का यह लेख प्रकाशित करने के लिए अंतरतम आभार मानते हैं।

ए/3 अभिलाषा फ्लैट, पालडी,
अहमदाबाद–7
मो. 9428907775

साहित्य वीथिका का अगला अंक
मेडिटेशन आश्रम (बड़ौदा) की प्रमुख
ग़ज़लकार, विभिन्न पुस्तकों की लेखिका
साध्वी गुरुमैया डॉ. हरेश्वरी देवी जी
पर केंद्रित होगा।
अपने आलेख कृतिदेव 10 फॉन्ट में
Email : mehra.dilip52@gmail.com पर भेजें।

3.
शबनम की पियाली

❖ डॉ. अंकुर देसाई

लखनौ, वाराणसी या कानपुर शहर की बात निकलती है ! तो जाड़े की सर्दियों में बनने वाली मिठाई माखन–मलाई या मलाइयों का जिक्र जरूर होता है।

वैसे तो माखन और मलाई, दूध और शक्कर एवं सूखे मेवे जैसी सामग्री से बनने वाली इस मिठाई में एक सामग्री ऐसी है जो दिखती तो नहीं, पर इस मिठाई की जान बन जाती है। यह सामग्री याने ओस या शबनम से आज मेरा वास्ता पड़ा है। जानकारों की मानें तो मलाइय्यों में जो मिठास है। वह शक्कर की तुलना में रात में खुले पतीले में गिरती ओस के कारण ही ज्यादा होती है।

मूल रचना एवं तरजुमे में भी यही अंतर होता है। मूल शक्कर मिठास तो बढ़ा देती है। परंतु तरजुमा ओस की माफिक रचना को एक नया आयाम, नई ऊंचाई और नए पंख दे देता है।

शैलेष पंड्या 'भीनाश' गुजराती के एक होनहार शाइर हैं। वे उमदा गायक, कवि और उद्घोषक भी हैं। जी. टी. पी. एल. गुजराती चेनल में उन्होंने कविता और कृषि दोनों क्षेत्रों में अद्भुत योगदान दिया है। उनकी गुजराती गजलों के तर्जुमात की दो किताबें 'शबनमी गुफ्तुगू' (2019) और 'शबनमी आफताब' (2021) प्रकाशित हुए है। दोनों ही पुस्तकों में 51 और 51 यानि 102 गजलों का गुजराती से हिंदुस्तानी जबान में तरजुमा किया गया है। यह काम डॉ. सतीन देसाई 'परवेज, दीप्ति गुरु' ने तर्जुमाकार की हैसियत से बाकमाल निभाया है।

शैलेषभाई गजलें तो अच्छी कहतें ही हैं। किंतु उनकी रचनाओं के तरजुमे स्वतंत्र रचनाओं के तौर पर स्थापित हुए, सराहे गए और सम्मानित भी हुए हैं। मानो जैसे मूल रचना शक्कर है तो तरजुमा ओस का काम कर गया और जो मिठाई बनी है वह लाजवाब एवं बेमिसाल है। किसी भी रचनाकार के लिए उनकी रचनाओं का तरजुमा होना एक बेहद सम्मानजनक बात होती है। पण्ड्याजी की समग्र कविताओं का हिंदुस्तानी जबान में तरजुमा कर एक बार फिर डॉ. सतीनजी ने अपने बहुभाषीय व्यक्तित्व का परचम साहित्यजगत में फहराया है। मूल रचनाएं जितनी बहतरीन हैं। उससे भी ज्यादा उम्दा उनके तरजुमे हुए हैं। बहर, क़ाफिया, रदीफ और शेरियत, गजलियत के अनूठेपन की वजह से 'शबनमी गुफ्तगू' और 'शबनमी आफताब' यह दोनों किताबें अपने आप में तरजुमकारी के बेशकीमती नमूने बन गई हैं।

अबके जब तरजुमे के बारे में लिखने बैठा हूँ तब अकबर इलाहाबादी का एक शेर अमूमन याद आ गया,

ना–तजरबा–कारी से वाइज की ये है बातें,
इस रंग को क्या जाने पूछो तो कभी पी है।

जिन्होंने कभी एक कृति के तरजुमे को किया या पढ़ा नहीं वे जब तर्जुमात की बातें करते हैं तो डॉ. परवेज कुछ इस अंदाज में देखते होंगे...

बाचिजा–ए–अतफाल है दुनिया मेरे आगे।
होता है शब–रोज तमाशा मेरे आगे।।
–मिर्जा गालिब

और अगर मेरे इस शेर को दर्ज करने पर किसी भी हजरात को कोई भी आपत्ति है तो उन्हें 'शबनमी गुफ्तगू' एवं 'शबनमी आफताब' की सारी गजलों को और उनके तर्जुमात को एक बार गौर से पढ़ लेना लाजमी है। तरजुमे के बाद किसी भी रचना को उसके मूल स्वरूप से हटकर भी एक अलग पहचान मिलती है तो शाइर और अनुवादक/तर्जुमाकार दोनों को इसका मुकम्मल आदर मिलना बेहद जरूरी है।

कभी कभी शाइर की भावनाएं मूल भाषा में ज्यादा वाजिब लगती हैं। जब ऐसी कृति का अनुवाद या तरजुमा किया जाता है तब तरजुमे पर तवज्जो देकर उसी कलाम का दूसरी भाषा में एक नया अंदाज नजर आने लगता है। तरजुमे की इसी कारीगरी को मैं 'शबनम की पियाली' कहना चाहता हूँ। मूल रचना के सारे अर्क को संजोकर दूसरी भाषा में बेहतर रचना के तौर पर स्थापित करने का इल्म शबनम का क़तरा–क़तरा इकट्ठा कर पियाली भरने से कम थोड़ी है!

दोनों किताबों में ऐसे कई कतरे हैं जो दोनों भाषाओं में अपना मुकम्मल मकाम रखतें है। इसी वास्ते भीनाश और परवेज दोनों को दाद देना तो लाजमी है ही। शबनम की भीनाश को परवेज ने आसमानी ऊँचाई दिलाई है। यह कविकर्म दोनों कवियों के उम्र के फर्क एवं रचनाकारी की रीति को दरकिनार करते हुए दो जिस्म एक जान जैसी रचनाएँ हमें मुहैय्या कराता है। मूल रचना एवं उसकी हिंदुस्तानी हमशक्ल गजलियत से परिपूर्ण तो है ही परंतु तारीख को जरूरी है कि यह बात दर्ज कर ली जाए के गुजराती गजलों के तर्जुमात में जो महारत परवेज ने हासिल की है उसे पाने के लिए दोनों भाषाओं में लिखने समझने का इल्म और उरूज की बारीकियों का खयाल बहुत ही जरूरी होता है। बेहद कम लोग इस फन के काबिज होते है, ज्यादातर तर्जुमात की संकरी गलियों में भटककर गुमनाम हो जाते हैं। डॉ. सतीन ने बहुत सारे गुजराती कवियों की रचनाओं को हिंदुस्तानी भेष पहनाकर पेश किया है और इसी प्रकार उन्होंने अपनी तर्जुमाकारी की धार हमेशा से निकाले रखी है। डॉ. परवेज को तर्जुमात के लिए जो अवॉर्ड मिले है । वे इस बात की गवाही देते हैं कि गजलों के गुजराती से हिंदुस्तानी तरजुमे की तवारीख में एक सपहा डॉ. परवेज के नाम से भी जुड़ा है।

मैं तर्जुमाकारी के इल्म का तो माहिर नहीं हूँ। लेकिन मैंने साहित्य को एक भाषा से दूसरी भाषा में सफर करते हुए बखूबी देखा है। टैगोर की 'गीतांजलि' हो या पालो कोल्हो की 'द अलकिमिस्ट', अपनी मूल भाषा से परे उठकर इन कृतियों ने विश्व की बहुत सी भाषाओं में सराहना पाई। उसका श्रेय उसके तर्जुमाकारों का भी बनता है। कविता गद्य के मुक़ाबले ज्यादा मेहनत मांगती है। क्योंकि तरजुमा करने की जिम्मेदारी केवल अर्थ और भाव तक सिमटी न रहकर कविता के तत्त्व तक जा पहुँचती है और अनुवादक का प्राथमिक कर्तव्य बनता है कि कविता के मूल तत्त्व से छेड़खानी करे बगैर लयन्वित और भाववाही अनुवाद पाठक को प्राप्त हो, जिससे दोनों भाषाओं को सम्रुद्ध किया जा सके। परवेज ने भीनाश की गुजराती गजलों के अनुवाद की प्रकिया के दौरान काव्यानुवाद विधा की सारी बारीकियाँ निभाई है, इसी वजह से साहित्यजगत और कविताविश्व उनकें ऋणी रहेंगे ही।

आलोचना और विवेचन करते समय यह ध्यान रखना बेहद जरूरी है कि कृति और कर्ता के मूल विचार का विच्छेदन न हो जाए। अनुवाद में भी यही सिद्धांत कारगत है। अनुवादक को मूल विचार से तादात्म्य रख, उसी विचार का विस्तरण कर, परभाषा में उनकी आभा बनानी है। यह आभामण्डल बड़ा जटिल चक्रव्यूह है– कविता के लिहाज से तो खास। मूल कविता की सारी बारीकियाँ संजोने के बाद कोई काव्य स्वरूप, भाव और अर्थ के नए विश्व का संयोजन लिए भावक के सामने उपस्तिथ होता है। भावक भी ऐसे ही काव्यविश्व की मंछा रखते हैं और इन्हीं कविताओं की तरंगो में गोता लगाने को उत्सुक होते हैं।

मुक्त अनुवाद एवं छन्दोबद्ध अनुवाद– यह भी अपने आप में एक विशिष्ट विडंबना प्रस्तुत करते हैं। मुक्त अनुवाद अर्थ और विचार की दृष्टि से उपयुक्त होने के बावजूद काव्यतत्व की तुलना में कमजोर पड़ता है। छन्दोबद्ध अनुवाद काव्य के तत्त्व के साथ न्याय करता है। और कवि और अनुवादक दोनों के लिए यशश्वी है। अतः छन्दोबद्ध अनुवाद या तर्जुमात एक नया आयाम (one step up) माने जाते हैं।

कमाल की बात तो यह है कि सारी 102 गजलें जो श. आ. और श. गु. में दर्ज हैं। उनमें गजलियात और छन्द की बारीकियाँ देखते ही बनती हैं। एक पन्ने पर गुजराती और एक पन्ने पर हिंदुस्तानी लिपि में पढ़ी जा सकती सारी रचनाएं 102 और 102 यानी कि 204 गजलें बनी हैं। जिन्हें महफिल में गाया जा सकता है या मुशायरों में तरन्नुम में पढ़कर वाहवाही बटोरी जा सकती है।

दोनों संग्रहों की गजलों में केवल भाषा और लफ्जों के फर्क से जो रूहानियत उतर आई है वह उरूज के

सार्वत्रिक (universal) होने का पुख्ता सबूत पेश करती है। दर्शनशास्त्र की तरह ही कविता का फलक काफी विशाल होने के बावजूद काव्यबानी तात्विक दृष्टिकोण से हर एक जबान में एक–सी और दिल के बेहद करीब–सी महसूस होती है। शायद यही कारण है कि कविता किसी भी भाषा में पढ़ी जाए, उसके मानी हमें रूहानी ताकतों से जोड़े रखते हैं। कविता की इस अंदरूनी ताकत को तर्जुमाकार एक भाषा से दूसरी भाषा में ले जाकर बढ़ावा देता है।

श. आ. और श. गु. में हर जगह रूहानियत एवं काव्यबानी की लाक्षणिकता बिखरी पड़ी है। मेरे इस लेख के दूसरे हिस्से में मैं दोनों पुस्तकों में जो शबनम के कतरे पड़े हुए हैं उन्हें जमा कर एक पियाली भर दूंगा। इस कविता की शबनम से ज्यादा कोई और नशा क्या होगा!!

उस मय से नहीं मतलब दिल जिससे हो बेगाना,
मक़सूद है उस मय से, दिल ही में जो खिंचती है।
—अकबर इलाहाबादी

श. आ. के पन्ने 18—19 पर दर्ज इस शेर पर गौर फरमाइए...

''कईक वलग्युं कईक छुट्युं, कईक आव्युं दोड़तुं,
कोण आवी स्नेह क्षणभर फोसलावीने करे।''
—भीनाश

''क्या शै लिपटती, छूट जाती, दौड़ आती लौट के,
वो कौन आके इश्क़ हम से फिर पटा के ही करे।''
—परवेज़

मूल रवानी और तरजुमी रवानी— दोनों में कौन भारी?! कभी कभी तरजुमा अक्स से महसूस होता है, जैसे अक्स में रोशनी की वजह से मूल चीज की रौनक बदल जाती है वैसे ही फोसलावी को पटा कर परवेज ने कमाल बारीक़ नक्काशी कर दी है।

श. गु. के पृ. 4 और 5 पर तने ए कोण समजावे शीर्षक से एक लंबी बहर की गजल है, उनकी ''तुझे यह कौन समझाए?'' जैसी एक बेहतरीन हमशक्ल गजल निखर आई है। फिलाटेलि में se-tenant जैसी एक संरचना है, जिसमें एक डाक टिकट उससे जुड़ी दूसरी डाक टिकट की परिपूर्ति करता है, कुछ ऐसा ही कमाल इस रचना में भी पाया जाता है। एक शेर पढ़िए...

''कथा तुं बोलवा मांडी फरीथी बिंबनी पासे जई नाहक,
नथी राखी शक्या भीतर हजी दर्पण, तने ऐ कोण समजावे?''
—भीनाश

''क़रीबे–अक्स तू करने लगी बेकार में तक़रीर क्यूँ उसकी,
हमी भीतर न रख पाए है शीशा, तुझे ये कौन समझाए?''
—परवेज़

कथा को तक़रीर में तबदील कर कवि ने जो बारीक़ गजलियत निभाई है वह क़ाबिल–ए–तारीफ है।

श. गु. के 12 और 13 वे पृष्ठ पर तमे आंखों भरी छे गजल के 4थे शेर में भीनाश कहतें है

''क्यां शब्दोंनी गेरंटी मळी छे?
अमारा मौनने कां अवगणो छो?''

इस शेर का तरजुमा परवेज ने कुछ इस अंदाज में किया है...

भरोसा लफ्ज तो देते नहीं यारों,
तगाफुल मेरी खामोशी से करते हो।

गारन्टी को भरोसे में तबदील कर परवेज ने अद्‌भुत कविकर्म निभाया है। इसी गजल के तीसरे शेर मे लॉकर शब्द आता है जो तरजुमी गजल में भी लॉकर ही रहता है किंतु बिचारा प्रेम को इश्क़े–नातवां में बदलकर परवेज ने अपने हिन्दुस्तानी भाषा ज्ञान की काबिलियत का कमाल नमूना पेश किया है।

श. गु. के पृ. 16 एवं 17 पर जीवने साचवुं पण क्यां? गजल का 4था शेर गुजराती में पहले पढें...

''हूँ अचल, अंध, अविनाशी जीवने साचवुं पण क्यां?
पान माफक समयना दांते चवाई जवानों छुं।''

इसी शेर का अनुवाद

''जीस्त लाफानी अचल की क्या हिफाजत मुझसे भी हो,
वक़्त के दांतों से पत्तों की घुटन हो जाऊँगा मैं।''

इस शेर में अचल, अंध, अविनाशी की अकारान्त खूबियाँ अ प्रयोग बगैर ही तरजुमी शेर में बाइज्जत उतर आई हैं और घुटन, सुखन, मन, दफन, बदन जैसे काफिये लेकर परवेज ने मूल काफिया गजल को पूर्ण करने का कृतत्व निभाया है। मेरी एक गजल का शेर याद आ गया

''पूर्ण होने का मैं सद्‌भागी कहाँ,
अंश हूं शायद या उसका छेद हूँ।''

शैलेशभाई के अंश को परवेज ने पूर्णता बक्शी है—

वाह... कमाल है।

श. गु. के पृ. 22 और 23 एवं पृ. 98 और 99 पर लंबे रदीफ वाली दो गजलें दर्ज है। पहली गजल के एज तो वान्धो पड्यो छे श्वासने (पृ.22) जैसी लंबी रदीफ को परवेज ने ''नफस कैसे कुबूले?'' (पृ. 23) जैसा छोटा तरजुमा कर बेहतरीन आयाम दिया है, वहीं ''अणसार केवो सहेजमां समजाव तुं।'' (पृ. 98) जैसे रदीफ के लिए ''आसार तु समझा मुझे!'' (पृ.99) जैसे प्रलंब रदीफ को भी परवेज ने प्रयुक्त किया है। दोनों गजलें तो उत्कृष्ट बनी ही हैं ! परंतु रचनारीति में परवेज ने जो छूट ली है उससे भीनाश की गजलों में छिपी बारीकियाँ शानदार तरीके से जाहिर हुई हैं। दोनों कवियों ने मिलकर यह जो संयुक्त (complimentary) अनुक्रम किया है वह सराहनीय एवं सर्वोत्तम है।

श. गु. के पृ. 36 और 37 पर चमक हती गजल का मत्ला देखिए..

''संसारनी केवी अदब केवी फड़क हती.
लोही भरेला कारणों नी पण चमक हती.''

इसी का तरजुमा

सहमो–अदम कैसे ही थी दोनों जहान की।
उजली चमक भी थी यहाँ खूं भर निशान की।

खूं भर लफ्ज के इस्तमाल से शेरियत में जो इजाफा होता है वह बात शेर पढ़ते ही महसूस हो जाती है।

पृ. 52 और 53 पर पोतने एकांतमां गजल में

''खोल झूला झूलना है बेकरां।
भूलना भी खुद–ब–खुद जो है यहाँ।''

जैसा तरजुमा परवेज ने दिया है। यह शेर पढ़कर मुझे मेरा एक अपूर्ण शेर याद आ गया। यह शेर मैंने महज 6 साल की उम्र में कहा था, मुलाइजा फरमाए

अब मुझे कुछ नहीं देखना।
देखना है कि क्या हो रहा।

झूलते–झूलते खुद को भूलने का इल्म तो केवल गजलें ही सीखा सकती है ना!

श. आ. के पृ 30 और 31 पर 'बैठो हतो' गजल के तरजुमे में परवेज ने रदीफ और काफिया दोनों को तब्दील कर एक नई गजल पेश की है। एक शेर गौर फरमाइए–

''बहारनां रंगीन चित्रो कईक जोयां मन भरी,
देख भीतर आँख पण टगटग लई बेठो हतो।''

नक़्शे–ए–रंगीं बाहरी संतृप्त हो मन में भरे,
धर निगाहें एकटक भीतर जीया आराम से।

भीतर, कर, अक्सर जैसे काफिया और आराम से रदीफ वाली यह ग़ज़ल हिंदुस्तानी की एक अनूठी ग़ज़ल लगती है और दोनों गजलों को साथ में न पढ़े तो दोनों गजलें काफी भिन्न जान पड़ती हैं। तर्जुमाकारी की यह उमदा सौगात आज कल थोड़ी कम ही मालूम पड़ती है, नहीं।

एक और नमूना देखिए, श. आ. के पृ. 48 पर भीनाश की पटी, वटी, हटी जैसे काफिए और पण जाय छे ऐसा रदीफ लेकर गजल मुकम्मल हुए हैं। इस लंबी बहर की गजल का तरजुमा परवेज ने काफी छोटी बहर में और बगैर रदीफ के कर दिया है। परवेज द्वारा कभी–कभी ही मिलने वाली ऐसी प्रयोगशील (experimental) तरजुमा गजल भावक के वास्ते सराहनीय उपहार हो जाती है। किसी भी लेखक या साहित्यकार को यह भी जरूरी हो पड़ता है कि वह किसी एक सांचे में न ढलकर अपनी फनकारी को हर तौर पर मुकम्मल पेश करें। ऐसे हुनर को पाठकों का अविरत स्नेह मिलता रहता है और साहित्य जगत भी लाभान्वित होता रहता है।

श. आ. के पृ. 58 और 59 पर 21 वीं गजल गुजराती में पढ़ते वक्त एक बहुत अच्छी गजल महसूस होती है। उसी का हिंदुस्तानी तरजुमा उसे गुजराती जबान के बन्धनों से कहीं दूर ले जाकर अपने आप में मुकम्मल (stand alone) रचना का दरजा दिलाता है। उरुजे आशिक़ी, सलीक़ा, बाएहतराम, बाहम, पाकीजगी जैसे खालिस उर्दू लफ्ज और भीनाश तखल्लुस को परे छोड़ किया हुआ तरजुमा परवेज को इस गजल के मालकियत देने को काफी है। किंतु परवेज ने अपने खुद के कहे अनगिनत हिंदुस्तानी कलामों में इसे न रखते हुए भीनाश को वापस सुपुर्द कर अपने बड़प्पन का एलान किया है। आज के जमाने में जहाँ कवियों के बीच अपनापन और हेलमेल कम ही नजर आता है तब ऐसी घटनाएं और एक दूसरे के प्रति समर्पण भावकों दिल को तसल्ली देने वास्ते काफी है।

श. आ. के कुछ बेहतरीन नमूने देखिए,

एक डगलुं भरी ना शक्या,
कोकना साथथी निकल्या। (पृ. 66)

कब कदम भर चले अकेले वो,
ले चले अपने साथ में रहबर। (पृ. 67)
घटना नथी, दृश्यों नथी, तोये फरक पड्यो।
में आँख मिचीं ने अचानक त्यां फरक पड्यो।
(पृ. 75) भीनाश
इन नजारे वाकि़यों की हो भले मेहरूमियाँ,
आंख मूंद फोअरन होती यहाँ तब्दीलियाँ।
(पृ. 76)
जिव्यो हतो एवुं जुओ केवी पकड़ मळे।
पाछळ हतो पाछळ छतां मारा सगड मळे।
(पृ. 84)

कुछ इस तरह से जिया गिरफ्त–ए–दम–ब–दम मिले।
ना था कहीं मगर मेरे नक्श–ए–कदम मिले। (पृ. 85)

परवेज ने गुजराती जबान में माँ पर कहीं मुक्कमल गजलों का दिवान जलकमलवत् माँ शीर्षक से मौजूद है। माँ विषय परवेज के जहन के काफी करीब है। श. आ. के पृ. 94 और 95 पर माँ रदीफ वाली एक गजल पेश है। मूल गुजराती और उसकी हिंदुस्तानी बहन दोनों माँ मौसी जैसी ही दिखाई पड़ती हैं। एक अनुवादक को मूल रचना से इतना गहरा लगाव रखना पड़ता है कि तरजुमा करते वक़्त केवल भाषा बदल होती है, भावना नहीं। माँ का किसी भी भाषा में तरजुमा माँ ही रहेगा ना! वो स्नेह, दुलार और लगाव जो माँ अपने बच्चे के लिए किया करती है उसका कोई कभी मोल लगा पाएगा? मूल रचना से अनुवादक भी जब माँ जैसा दुलार करता है तब जाकर कही प्रामाणिक (honest) तरजुमा हो पाता है। माँ के प्यार की माफिक ऐसा तरजुमा भी बेशकीमती है।

आलोचक हमेशा से तरजुमाकारी को निम्न (inferior) मानतें आए हैं। उन्हें अनुदित कृतियाँ ज्यादा रुचि नहीं देती। मेरा मत उनके मानने से काफी अलग है। मूल और अनुदित दोनों रचनाओं का साहित्य में अलग अलग और निश्चित स्थान है। ऊँच–नीच की बात करने वाले पक्षपात या रंगभेद के दोषी जरूर कहे जा सकते हैं। आज जब भाषाओं को सीधा खड़ा रहने के वास्ते अंग्रेजी की बैसाखियों का सहारा लेने की नौबत आ गई है, तब अगर कोई अच्छी कृतियों को अनुवाद के रूप में पेश कर साहित्य की सेवा कर रहें है तो उनका इस्तक़बाल बाहें फैलाकर करने में हमारी और आनेवाली पीढ़ियों की बेहतरी शामिल है।

आलोचकों को एक शेर से नवाजना चाहूँगा,
वेरीने खुल्ला दिलथी आवकारिये अमे।
हो वांक एक सो वखत स्वीकारिये अमे।

ऋषिकवि राजेन्द्र शुक्ल कहतें हैं,
निषेध कोइनो नहीं, विदाय कोइने नहीं,
हूं शुद्ध आवकार छुं, हूं सर्वनो समास छुं।

क्या हम भूलों से थोड़े ऊपर उठकर सर्व नो समास नहीं हो सकतें? अगर सैफ या मरीज हिंदुस्तानी में पहुँचते हैं तो उनका मरणोपरांत दरजा बढ़ेगा कि नहीं? श. गु. और श. आ. की तरह सैफ, मरीज और बेफाम भी अगर हमें तरजुमा कर मिलें तो उनकी गजलों की बारीकियाँ हिंदुस्तानी में भी वाहवाही बटोर लेगी। कुछ सपनें बड़े हसीन होंते हैं, कुछ सपनें हकीकत में ज्यादा खूबसूरत लगतें हैं। भीनाश और परवेज को बधाई। परवेज और परिश्रम कर दूसरे कवियों को हिंदुस्तानी में पेश करें ऐसी शुभकामना और आप सब को ढ़ेर सारा प्यार।

B/37, साम्राज्य 1,
अकोटा मुंजमहुडा रॉड,
वडोदरा–390020
मो. 9227135084

4
लाफानी शबनमी एहसास

❖ त्रिलोक मेहता

शैलेष पंड्या ''भीनाश'' की गजलें बेहद नमी से पुरनूर है। गुजरात में जन्मे, पले और आगे को बढ़े, यह शायर अपने जज़्बात को अपनी जबान गुजराती में बयां करते हैं। उनके बयान की सूरत गजल है। जैसे कि हम जानते हैं की गजल के मानी गुफ्तगू है... आशिक अपनी माशूक़ा से जो गुफ्तगू करता उसीकी बयानी गजल कहलाती है। उसी मैयार से शैलेष पंड्या की ग़ज़लें अनुवादित हो कर हिंदुस्तानी में अपना नूर लेकर हमसे आशना होती है। गुजराती और हिंदुस्तानी के बड़े ही आदरणीय शायर व तर्जुमाकार जनाब डॉक्टर सतीन देसाई ''परवेज़'' साहब हम शायरी पसंद लोगों को ''भीनाश'' की इन गुजराती गजलों को हिंदुस्तानी का लिबास पहनाकर वही असल जज़्बात से जोड़ते हैं। परवेज साहब आपको तहे–दिल से आदाब... सलाम अदा हम कर करते हैं। भीनाश जी की गजलों के तर्जुमे के दो मजमुए पेश आए हैं। दोनों के शीर्षक शबनम से रिश्ता रखते हैं ''शबनमी गुफ्तगू'' और ''शबनमी आफताब''। दोनों ही मजमूए अपनी गुजराती, गजलें और तरजुमाशुदा ग़ज़लों में मुकम्मल है।

गुजराती गजलों की निहायत खूबसूरती शबनमी नमी से आफताबी नूर में रोशन हो कर हिंदुस्तानी में सतीन देसाई परवेज साहब की कलम से अपना रंग बिखेरती है। जहां शैलेष पंड्या अपने मुसलसल जलवों में अल्फाज से रोशनी करते हैं। वहां परवेज साहब अपने रूहानी अंदाज की मिजाजी गहराइयों से गुजराती गजलों को एक नया पैरहन बख़्शते हैं। अपने फन, शऊर और तर्जुमे के तजुर्बात से परवेज साहब तर्जुमाशुदा गजलों को सुख और सुख़न दोनों में पिरोते हैं।

गुजराती गजलों की बारीकियों से लेकर तर्जुमात की शबनमी शाइस्तगी देखते ही बनती है। कहिए इर्शाद.

''वरसाद साथे प्रेमने सरखावुं पण खरो।
डूबी शको तो सहेजमां छलकावुं पण खरो।''
''भीनाश''

यूँ बारिशों से इश्क़ की बराबरी भी मैं करूं।
डूबो अगर तो आपमें लबालबी भी मैं करूं।
''परवेज़''

एक ही गजल की इन दोनों सूरत में गजब का अंदाज–ए–बयाँ पा के हमारी आंखें उन पर ठहर जाती है... देखिए...

''हथेलीमां सरोवर मापनुं आव्युं।
मने तें जीववानुं काचनुं आप्युं।''
''भीनाश''

''हथेली में सरोवर तो बराबर का दिया।
मगर जिनेको जीवन कांच के घर का दिया।''
''परवेज़''

यहां जहां मत्ला अपनी जज़्बाती बुलंदी पर है। तो इसी गजल का मक्ता भी क्या खूब है!

''तड़प दौड़ी हती ''भीनाश'' रण वच्चे ।
छतां तें केम कारण प्यासनुं आप्युं।''
''भीनाश''

''तलब भागी जो ''भीनाश'' सहरा के नगर।
सबब उसको क्यों एक प्यासे समंदर का दिया?''
''परवेज़''

यह गुजराती गजलें भले ही हिंदुस्तानी का चोला ओढ़ कर हमारे सामने पेश आती है। लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं लगता कि यह गजल असल नहीं है। दरअसल दोनों ही अपने उरूज पर लहराती है।

''एकदम पाछुं डूसकुं फुटवानुं कारण वगर।
रोज उठी ने आपणे तूटवानुं कारण वगर।''

''भीनाश''

''फिर अचानक एकदम रोना पड़ेगा बेसबब!
जाग हरदम टूटना अपना रहेगा बेसबब!''

''परवेज़''

शायर अपनी गजलें अरुज–छंद बहर के साथ ही कहते हैं। तर्जुमें के वक्त यह कतई आसान नहीं हो सकता कि गेर जुबान में वही बहर या अरुज में उसको अनूवाद में पिरोया जाए ! लेकिन परवेज साहब ने 2000 से ज्यादा गजलों के तर्जुमा के तजुर्बे से ऐसी मुश्किल को जरा भी हमें फर्क़ महसूस नहीं होने दिया। परवेज साहब ने बिल्कुल वो ही अरूज में शेर कहे हैं...

''बेसी शको तो एक भीनी वात हुं करुं।
आ सूर्य पर पडदो करी ने रात हुं करुं।''

''भीनाश''

''गर बैठ पाओ तुमसे भीगी बात मैं करूं!
सूरज पर पर्दा करके कहीं रात मैं करूं!''

''परवेज़''

''फाईलातुन'' के आवर्तन में एक ही शेर की दोनों सूरत आप एक समान सहज देख सकते हैं। भीनाश का यह शेर गुजराती शायरी में जितना बेमिसाल है! उतनी ही हिंदुस्तानी तर्जुमें में बेमिसाल सूरत में ढला है। यह शेर तो यूं कहो ''भीनाश'' का हासिल–ए–फन शेर माना जाता है। तो परवेज़ साहब ने भी इस शेर को नजाकत के साथ पूरी आफताबी से कहा है।

भीनाश की गुफ्तगू जर्फ से छलकती है। शायर कमजर्फी से परे रहे हैं। जिंदगी को जिंदादिली से लेते लड़ते हुए शेर फरमाते हैं...

''पाणी वगर पण जो अमे खिली गया।
सुकी धरा पर एकला जीवी गया।''

''भीनाश''

''कुछ आब के बगैर हम खिलने लगे यहाँ''
तन्हा जमीने–खूश्क पे जीने लगे यहाँ !

''परवेज़''

अपने मिजाज की रूहानियत से खिलते शायर मुकम्मल तौर पर हमारे सामने उभरते हैं। गजल की बारीकियों में बहर, काफिया, रदीफ के फन को भी शुमार करना होगा। यहां भीनाश अपनी बेमिसाल गजलों में चुस्ती से काफिया रद्दीफ का इस्तेमाल कर पाए हैं। न केवल चुस्ती बल्कि तवील रद्दिफ भीनाश की पहचान बनी रहती है। बावजूद रद्दीफ की तवीलगी भीनाश हर शेर में निभाते हैं। न सिर्फ शायर परवेज साहब ने भी इस चुनौती को शिकस्त देकर लंबी रद्दिफ की गजलों के रद्दीफ को जिंदा बना रखा है। मिसाल के तौर पर ऐसे कुछ शेयर पेशे खिदमत हैं।

''आंख बे खुल्ली हशे तो भूल कई रीते थशे?
एम ओचिंती नजर पण दूर कई रीते थशे?

''भीनाश''

चश्मे वा हो भूलकर बेनूर कैसे हो सके?
पर अचानक दो नजर भी दूर कैसे हो सके?

''परवेज''

''वात समझाई गई क्या,ध्यानमां राख्या पछी पण?
एक आखी जिंदगीने बानमां राख्या पछी पण।''

''भीनाश''

''अर्थ कब समझा है कोई ध्यान में रखने के बाद।
जिंदगी को भी सरापा बाद में रखने के बाद।''

''परवेज''

''नोंध, संवादों फरीथी जोड़वानी वात ना कर।
दोष पोतानो समय पर छोड़वानी वात ना कर।''

''भीनाश''

गुफ्तगू ताक़ीद फिर से जोड़ने की वात ना कर।
एब अपने इसपे छोड़ने की वात ना कर।

''परवेज''

सिर्फ आपकी नज्र करने के लिए ही यह कुछ मिसालें थीं। ऐसे कई सारे शेर, गजलें तवील रदीफ की इन दोनों मजमुए में पा सकते हैं।

शायरी की रूहानी नब्ज इश्क़ मिजाजी से ऊपर उठकर इश्क़ हक़ीक़ी भी इन गजलों से छलकती है। आईए देखते हैं....

''आजे फरी भीनाश पाछो एकलो डूबी जशे।
छोड़ी बधू भीतर ना सागरमां ढल्यो सारुं थयुं।

''भीनाश''

''आज फिर ''भीनाश'' वापस डूबेगा तन्हा,
छोड़ सब भीतर के दरिया ही में डूबा सो हुआ बेहतर।''

अगर रूहानियत की वाबस्तगी को सोचा जाए तो बिलकुल मखलुस शख्सियत के मालिक ''भीनाश'' पूरे रूहानी मिजाज के शेर, गजल में फरमाते हैं।

''के जिंदगी क्यारेक एवी खास होय छे।
चारे तरफ तारो पछी सहवास होय छे।''

''भीनाश''

"यूं ऐसी खास कभी जिंदगानी होती है
तेरे ही सांस की हरसू रवानी होती है।"

"परवेज़"

ऐसे बेशुमार अशआर इश्क़ मिजाजी और इश्क़ हक़ीक़ी की मिसाल में आपको मिल जाएंगे।

तवील और मुख़्तसर दोनों तरह की बहर भीनाश को आसां है। दोनों ही में शेर अपना फन एक सा दिखलाते हैं। आइए गौर कीजिएगा।

"जीववा माटे सतत छे दोडवानुं,
ए ज तो वांधो पड़यो छे श्वासने!
बंध आंखे चित्र आखुं दोरवानुं
ए ज तो वांधो पड़यो छे श्वासने।"

"भीनाश"

मुसलसल जीने को यूं दौड़ना पड़ता
नफस कैसे कबूले।
ये आंखें मूंद के ही नक्श भी करना
नफस कैसे कबूले।

"परवेज"

"समय ने पाथरी बेठो।
नयन मारां भरी बेठो।

"भीनाश"

"समय को यूं लगा बैठा।
नजर मुझमें समा बैठा।"

"परवेज"

"जिन्दगी नो हाथ पकड़ी श्वास ने आधार,
तूं आपी शके तो आपजे।
आपणा संबंधने विश्वासनो अणसार,
तूं आपी शके तो आपजे।"

"भीनाश"

जिंदगी का हाथ थामे सांस को टेका,
अगर तू दे सके तो दे ही दे।
रिश्ते को बाहम ही असारे—यकीं यारां
अगर तू दे सके तो दे ही दे।

"परवेज"

जितनी लंबी या छोटी बहर में गुजराती गजल है उतनी ही बेहतरीन तर्जुमाशुदा हिंदुस्तानी गजलें पाई हैं हमने। जनाब परवेज साहब ने बखूबी बहर तो निभाई ही है। काफिया—रदीफ भी उतने ही बखूबी निभाये हैं।

"रोज पाड़े कोण आवो साद जोवा दे मने।
आभ ऊंचेथी करे फरियाद जोवा दे मने।"

"भीनाश"

"कौन देता है सदा ना साद पाने दे मुझे।
आसमाँ से क्यूं करें फरियाद पाने दे मुझे।"

"परवेज"

हूबहू काफिया, रदीफ ही नहीं बल्कि गजल की रवानी भी तवज्जो के काबिल है। जिसकी मिसाल हर एक गजल से आप पा सकते हैं।

भीनाश ने अपनी गजलों में जो शाहकार किया है। उसी शाहकार को परवेज साहब ने अपने तर्जुमें में न केवल उनके जैसा बल्कि उससे भी बेहतर बनाया है। दूसरे अल्फाज में अगर कहा जाए तो भीनाश ने creation किया है। तो परवेज साहब ने translation से बढ़कर transcreation किया है यानी की अनुवाद नहीं अनुसर्जन किया है, सौ सौ सलाम...। जगह जगह पर न सिर्फ metaphysics बल्कि metamorphesis देखने को मिलता है।

"आखरे होवापनानो प्रश्न पण क्या छेक छे।
आंख खोलुं के पछी हु बंध राखुं एक छे।"

"भीनाश"

"हस्ती का प्रश्न भी तो हर एक—सा कहाँ है।
बेमानी ही नजरिया नजरों के दरमियाँ है।"

"परवेज"

कितना भी कहें, न तो शबनमी गुफ्तगू बयाँ हो सकती है। ना तो शबनमी आफताब के बारे में मुकम्मल कहा जा सकता है; ना ही शैलेष पंड्या भीनाश या ना ही परवेज साहब कोई अल्फाज में समा सकते हैं। उनकी उड़ानें असीम ऊंची है। और उनके तगज्जुल की गहराई भी...। यह तो महज एक छोटी—सी मिसाल है।

बी./43,
परिवार सोसायटी
विभाग—2
बाघोड़िया रोड—बड़ौदा
मो. 9429147191

****

5

प्रताप सिंह डाभी 'हाकल' के गीत 'वंचित की वेदना का गान' का आस्वाद

❖ डॉ. केशुभाई देसाई

वंचित की वेदना का गान

'धान की फसल में जो आया सुखारा तो जीवन भी सुख गया साथ
सोचा था हाथ पीले कर लेंगे नन्हीं के, सपना वो टूट गया हाय!

पानाचंद बनिया भी आया होगा घर पे, लेने को बाकी हिसाब
लेनदेन अपना तो पूरा हो चुका है, कौन वहां देगा जवाब?
कीड़े की दवाई मेरे आ गई थी काम में, पहुंचाया मुझको आकाश
सोचा था हाथ पीले कर लेंगे नन्हीं के, सपना वो टूट गया हाय!

आधे ही बीघे का खेत मेरा होता था, सोचा बढ़ा ले दो कुंड
गोचर दबोच पूरा बैठा प्रधान लेके आया दरोगा का झुंड
नीचे की कोर्ट में केस अब लड़ने से छुटकारा मिल गया आज
सोचा था हाथ पीले कर लेंगे नन्हीं के, सपना वो टूट गया हाय!

घरवाली के साथ मैं तो बैठा हूं ऊपर और नन्हीं को भाई ने फसाई
नन्हीं का चाचा और भाई मेरा शामजी तो वैसे है काला कसाई
रुपयों के बदले में बेचा है नन्हीं को, मौत मेरी बिकती थी काश
सोचा था हाथ पीले कर लेंगे नन्हीं के, सपना वो टूट गया हाय!'

गुजराती के प्रतिष्ठित गीत कवि 'हाकल' की यह रोंगटे खड़े कर देने वाली कविता दूरदराज गुमनामी में जीवन बसर कर रहे गरीब किसान की पीड़ा संजोकर आती है। जीव मात्र किसी भी कीमत पर जिंदा रहने की भरसक कोशिश करता रहता है। जब पांवों तले से धरती खिसक जाती है, कोई चारा ही नहीं रह जाता, चहुंदिश घोर अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है तब आदमी हताश होकर खुद अपनी जान पर उतारू हो जाता है। देश में गत कई वर्षों से किसान लगातार आत्महत्या कर रहा है।यह राष्ट्र के लिए बड़ी शर्मनाक बात है पर न तो राजनेताओं के पेट का पानी हिलता है न पूरे देश के धन वैभव पर फणीधर सांप की तरह कुण्डली मारकर बैठे हुए कतिपय धनकुबेरों के चेहरे पर शिकन पड़ती है। एक कवि ही ऐसा संवेदनशील प्राणी है जो किसी दुखियारे भूमिपुत्र को, कीड़ों की दवा गटगटाकर, कुएं या नहर में छलांग लगाकर या फांसी लगाकर मौत की नींद सोते हुए देखकर विह्वल हो जाता है।

किसान तो अपनी लाडली के हाथ पीले करने के सपने संजो रहा था। उसके लिए धान की फसल पर जी जान से ध्यान दे रहा था। बदकिस्मती कि सुखारा आ गया, फसल खत्म हो गई और उसके साथ ही बिटिया के विवाह का सपना भी। फसल के लिए कर्ज भी तो लिया होगा। अब बैंक या साहूकार को भी कैसे मुंह दिखा पाएगा ! हताशा में गर्क बाप बिटिया को दुष्ट परिजनों के सहारे छोड़कर कीड़े मारने की दवा पीकर खुदकुशी कर लेता है। शरीर तो छूट गया, दिवंगता पत्नी के पास परलोक पहुंच चुकी उसकी आत्मा उसे बेतहाशा कचोट रही है। वह मन ही मन झुंझला रहा है। अपने आत्मघात के निर्णय पर भी उसे पछतावा–सा हो रहा है। अब शरीर तो छूट चुका, लेकिन सूक्ष्म देह और मन अब भी इस लोक में निराधार बनी बच्ची के खयालों में उसी के इर्द–गिर्द चक्कर काट रहे हैं। देखिए किस सहजता से उस निरीह ग्रामीण किसान के दर्द को हमारा गीत कवि वाच देता है –

धान की फसल में जो आया सुखारा
तो जीवन भी सूख गया साथ
सोचा था हाथ पीले कर लेंगे नन्हीं के
सपना वो टूट गया हाय !

सपना टूट गया फिर भी समस्याएँ तो मुंह फाड़े खड़ी ही रहीं ! बनिया थोड़े ही उगाही करना छोड़ेगा?

वह भी तो घर की चौखट पर आकर हिसाब चुकता करने को तुला होगा। अब न तो वहां स्वयं मिलने वाला है, न कोई जिम्मेदार परिजन। पत्नी तो पहले ही स्वधाम पहुँच चुकी है और खुद भी कीड़े मारने की दवा पेट में उड़ेल कर वहां से भाग आया है। चिंता है तो उस नन्हीं की, जो अब बिना किसी अपराध के दुष्ट चाचा–चाची के हवाले हो चुकी थी।

प्रगति करने की लालसा में अपने हिस्से की आधा बीघा जमीन चुपचाप आसपास दो कट्ठा बढ़ा देने का प्रयास किया था वह भी विफल रहा था। ग्राम प्रधान तो पूरा गोचर, चरागाह दबोच कर बैठ गया है, लेकिन गरीब खेत मजदूर को इस छोटे से गुनाह में बख्शने को कतई तैयार नहीं। पूरा गोचर दबाकर बैठा हुआ प्रधान दरोगा का झुंड लेकर आ धमकता है। पुलिस गरीब किसान के विरुद्ध अदालत में शिकायत दर्ज करवाती है। अब इन सभी व्यथाओं से मुक्त होने का एक ही तो रास्ता बचा था– आत्महत्या !

दुन्यवी समस्याओं से निजाद क्या मिली, किसान पिता की रुह तो अपनी लाडली की दुर्दशा देखकर कांप ही रही है। मरने के बाद भी सुकून मयस्सर नहीं हुआ। यह भी कैसी विडंबना! नन्हीं को तो चांदी के चंद टुकड़ों के मोल काला कसाई बेच चुका होगा। वह भाई तो कहने भर को था। पूरा स्वार्थी ही था। वरना मुसीबत आने पर कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा नहीं हो जाता ! आत्महत्या करने वाले भाई के परिवार की मदद तो दूर, उसने तो उसके हिस्से की वह आधा बीघा जमीन भी हड़प ली और बिटिया का भी सौदा कर डाला!

बड़ी ही सीधी सरल अभिधायुक्त अभिव्यक्ति होने पर भी यह गीत उस पीड़ित– शोषित – वंचित समुदाय की शाश्वत व्यथा की कथा बनकर पाठक के रोम रोम में अनुकंपा एवं सहृदयता के रक्तरंजित प्रस्वेद बिंदु जगा देता है। यह जनचेतना की दिल को छूने वाली कविता है। सरलता इसका गुण है, अपितु अलंकार है। निर्दंभ किसान अपनी बात इससे बेहतर भाषा में रख ही नहीं सकता था।

कविता की अंतिम पंक्ति में जो चोट अभिव्यक्त हुई है, वह इसे और भी बड़े पायदान पर पहुंचा देती है।

'रुपयों के बदले में बेचा है नन्हीं को
मौत मेरी बिकती थी काश!'

गुजरात और गुजराती भाषा के लिए हिन्दी कोई पराई अथवा दुराराध्य भाषा कभी नहीं रही। हमारे कई बड़े कवि हिन्दी में भी समान अधिकार से लिखते रहे हैं। मीराबाई हमारे लिए आज पर्यंत गुजराती भाषा की सबसे बड़ी कवयित्री हैं। दयाराम ने हिन्दी में सतसई लिखी है और सुन्दरम् की कुछ रचनाएं तो आज तक हिन्दी में लिखी होने पर भी गुजराती कविता साहित्य में ऊंचे पायदान पर प्रतिष्ठित हैं। सुंदरम् की इस कविता को पढ़कर कौन कहेगा कि वे सिर्फ गुजराती कवि ही थे !

'मेरे पिया, मैं कछु नहीं जानूं
मैं तो चुप चुप चाह रही!'

ठीक उसी तरह हमारे वर्तमान समय के प्रतिनिधि गीत कवि प्रताप सिंह डाभी 'हाकल' मौज में आकर हिन्दी में लिखते रहे हैं। हाकल जी की लेखनी से ऐसे ही रचनाएं प्रस्फुटित होती रहे ऐसी कामना करता हूं।

13 ऐश्वर्य–1
प्लॉट : 132
सेक्टर–19
गांधीनगर–382021

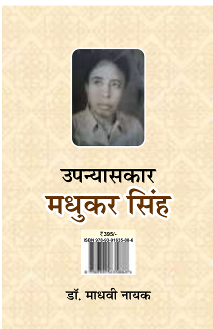

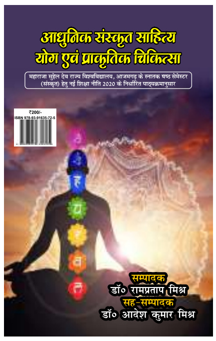

****

6

डॉ. दिलीप मेहरा के काव्य का आत्म दर्शन : 'जीवन मुसीबतों का दरिया'

❖ डॉ. सतीन देसाई परवेज 'दीप्ति गुरु'

बहुत खाया, बहुत पिया, बहुत पाया,
बुझी न प्यास, जीवन मुसीबतों का दरिया।
सुबह को निकला, शाम तक न लौटा।
पाया पोस्टमार्टम, जीवन मुसीबतों का दरिया।

न जानूं ममता, न जानूं इंसानियत,
भीतर घुसा वायरस, जीवन मुसीबतों का दरिया।

और कितने वर्ष चाहिए, इंसान बनने में?
छोड़ी न पशुता, जीवन मुसीबतों का दरिया।

देखी नियति, देखा खुदा का न्याय
बाप के कंधों पर बेटे का जनाजा।
जीवन मुसीबतों का दरिया। –दिलीप मेहरा

जिंदगी को न कोई समझा है। न समझने पाया है। हर इंसान की वाणी वही बोलती, बड़बड़ाती और आखिर अकसर चीखती नजर आती है, जो उसने भूगता है। अपने तरीके से अनुभूत किया है, सोचा है। परखा है, या फिर यूँ कहिये कि जो उसकी तरफदारी में या उसके कल्याण में नहीं हुआ है। उसे वो अपनाने को तैयार नहीं रहता है। आखिरकार या तो खामोशी में उसका इजहार करता है। या फिर उसे शिकायत और धिक्कार की परिभाषाओं में पिरोकर दुनिया के सामने पेश आता है। यही आज के जीवन का आम लहजा हो गया है। लगभग कोई भी जीवन के पर्दे के पीछे लगे रहस्य को खोजने का प्रयत्न नहीं करता है। उनके लिए तो जिंदगी किसी एक शायर के शेर ने कहा है वैसे ही सुबह शाम गुजरती है।

''सुबह होती है शाम होती है।
जिंदगी यूँ ही तमाम होती है।''

उपरोक्त अछंदास कविता में दिलीप मेहरा जी ने न केवल अपनी बल्कि मौजूदा दौर की जिंदगी की हमें बखूबी पहचान कराई है। भले ही अस्तित्व के रमूज को न कोई समझा हो, या समझ पाया हो। हर कोई को अपनी तरह उसकी बयानी का अधिकार है। सो वही बात अपने चार लघु खंड में मेहरा साहब ने दर्शाने की कोशिश की है। वे यह भी जानते हैं कि इन आम बातों से

दुनिया को केवल माहिर किया जाता है। परिवर्तन का इसमें अवकाश कुछ कम ही नजर आता है। फिर भी बहादुर शाह जफर के दरबारी शायर उस्ताद जौक के इस शेर से वह खघूब वाकघिफियत भी रखते हैं।

'इक मुअम्मा है न समझने का न समझाने का।
जिंदगी काहे को है ख्वाब है दीवाने का।'

अर्थात् जिंदगी एक ऐसी पहेली है। जो न समझी जाती है। ना ही समझाई जाती है।

उसकी तामीर तो कोई दीवाने का सपना है। जिसे हम ख़दा या सर्जनहार के नाम से जानते हैं।

ख़ैर, इतने बुनियादी तत्व दर्शन के बाद हम उपरोक्त कविता की कड़ियों से प्रगटते अनमोल काव्य तत्व को संयोजित करने जा रहे हैं।

''बहुत खाया, बहुत पिया, बहुत पाया,
बुझी न प्यास, जीवन मुसीबतों का दरिया।
सुबह को निकला शाम तक न लौटा,
पाया पोस्ट मोर्टम, जीवन मुसीबतों का दरिया।''

प्रथम पंक्ति दो काव्य अलंकरण को सिद्ध कर रही है। तीन बार बहुत विशेषण के प्रयोग से वे बताना चाहते

हैं कि इंसान को तमामतर चीजें उसके संतोष से भी अधिक मात्राओं में प्राप्त होती रही हैं। जिसका समर्थन वे क्रियापदी प्रासानुप्रास ''खाया, पिया, और पाया, से कर रहे हैं। इसका अंजाम तो हरहंमेश लबालब संतोष के डकार का ही होना चाहिए। दुर्भाग्यवश न जाने क्यूँ यह इंसान की मानसिकता बनी हुई है कि उसे किसी भी चीज की अंतिम प्राप्ति के बाद भी किसी किसम का आनंद उल्लास नहीं होता है। यही नकारात्मक सोच ही उसके जीवन को मुसीबतों का विशाल दरिया कर,उसको बाधाओं में डाल देती है। वर्ना इंसान की संताष समाधि की एक पल उसे ब्रह्मांड के उस पार पहुंचाने की शक्ति धारण करती है। मगर अफसोस वह सिकंदर की तरह सुबह में यह दो आलम मुठ्ठी में समाने को निकला है। भागता है। दौड़ता है। आखिरकार शाम घर न लौट पाता है। बीच राह ढल जाता है। अपने होने का तमाशा करता है।

और आख़िर खुद अपना ही पोस्टमॉर्टम कर के वो दुनिया को उपदेश देता है, जो मैंने अपने इस निम्न शेर में पिरोया है।

'अपने गिनती न सिकंदर में रख।
जो तमाशा है उसे घर में रख।'

मेहरा जी हिंदी के आचार्य तो हैं ही। कई छात्रों को शोध प्रबंध विषयक मार्गदर्शन करते हैं। जब वह विशुद्ध हिंदी के काव्य में अंग्रेजी शब्द, वह भी जो मेडिकल साइंस से निस्बत रखता है वह पोस्टमॉर्टम का प्रयोग यहाँ करते हैं तब लगता है वह पीएच.डी डॉ. नहीं स्वयं मेरे जैसे मेडिसिन के ही पदवी धारक है।

उपरोक्त काव्य अपने आप में आज के दौर के भटके हुए कहलाते सिद्ध इंसान के बदहाली की ओर गहन इशारा है। अगर उसके झबकार को कोई क्षणिक भी समझ अपनी जिंदगी की दिशाओं को मोड़ पाए तो यकीन मानिये उसमें बहुत ही परिवर्तन की शक्यताएं प्रवर्तमान हो सकती हैं। ख़ैर चलो आगे चलकर हम कुछ और हल्के इशारों की झिलमिलाहट को आंखों में भर लें।

''न जानूं ममता, न जानूं इंसानियत,
भीतर घुस गया वायरस, जीवन मुसीबतों का दरिया।''

''जीवन मुसीबतों का दरिया'' की मौजें अलग–अलग तौर से इंसान के दिलो–दिमाग के किनारों पर टकराकर पलट आती हैं। यही उसके मन की रवानियां हैं। जिसकी गर्दिश के चकराव में वह अपनी इंसानियत को अंतिम हद तक चूर कर पाया है। भगवान ने तो उसका अस्तित्व बीच समुंदर खड़े खडक की तरह इन मौजों के थपेड़े को झेलकर, दुनिया को भगवत गीता वाली वह स्थित प्रज्ञा का निर्देश कराकर, सही इंसान की व्याख्याएं देने को ही पैदा किया है। लेकिन वह कुदरत के सारे उसूल को खोकर अपनापन गंवाकर बेहोशी की तह में गरकाव हो चुका है। उस पर बुरेपन का कोई करोना जैसा व्यापक वायरस लगा है। जिसकी जद से ना ही वह बाहर आ रहा है। ना ही आना चाहता है। जैसे कि यह वायरस ही उसके जीने का प्राणवायु हो गया न हो। कुछ इस तरह से वो अपनी रंगों में भड़कते इंसानियत के शोलों को बुझाकर कब का मेरे इस निम्न शेर की तरह खघक कर चुका है। शेर पेशेखिदमत है–

''रगरग में जम गये हैं इंसानियत के शोले।
बर्फीले आदमी को अब तो पिघलना होगा।''

इस स्थान पर हम मिर्जा गालिब के इक बेमिसाल मिसरे को दोहराकर मेहरा जी की बात को समर्थन दे।

''आदमी को मयस्सर नहीं इंसा होना।''

फिर इकबार मेहरा जी ने वायरस जो कि मेडिकल का शब्द है। उसे अपने तरीके से इस्तेमाल करके हमें उनकी यह जानकारी से वाकिफ किया है। वह क्यों न हो? उनका सारा परिवार उनके समेत कुछ साल पहले करोना से पीड़ित रहा है।

देखिए तीसरा दो पंक्तियों का खंड हमें कौन से मकाम पर पहुंचा रहा है–

''और कितने वर्ष चाहिए इंसान बनने में?
छोड़ी न पशुता, जीवन मुसीबतों का दरिया।''

अब यहाँ आकर कवि का अंतरमन अपनी गहराई से चीख़ उठा है। यह प्रश्नार्थ कि–

'और कितने वर्ष चाहिए इंसान बनने में?'

सहज अनुभूतिओं का ही उद्घोष होने के बावजूद कोई तेज भाले या तीर की तरह हमारी भावनाओं की छाती पर वार कर रहा है। ख़ैर उसका असर तो होना ही है। लेकिन आज के दौर के मानवो का वहशीपन उसतक दानवी हो चुका है कि वे दानव की तरह वह मोटी चमड़ी के लागणी शून्य हो गये हैं कि उन रावणों पर सिर्फ वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के रामबाण के सिवा किसी का कोई बस नहीं रहा है। चाहे कितने भी

संत–आचार्य अपनी बोधात्मक जीवनशैली से इन्हें प्रभावित करने की कोशिशें करें। वह शायद आज के कलयुग में मिथ्या और नाकाम ही साबित हो रही हैं। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि–

इन वहशी इंसानी जानवरों के शोर को खामौश न किया जाए? फिलहाल यहाँ मैं अपने तजरबात का एक गीतनुमा शेर रख रहा हूँ। गौर फरमाइए–

''आवाजों के जंगल में खामोश सदा ना ढूंढ़ो तुम।
जिसमें जितने पेड़ लगे हैं, उतने पंछी बोलेंगे।''

सही मायने में आज का आधुनिक जगत संत परिवास नहीं लेकिन उनका परिहास करता हुआ बेहुदा ख़्वाहिशों के घने असहनीय आवाज का ही जंगल है। जिसने इंसानी प्रीत के असली नाद और स्वर–सुर–राग से कबसे अपना नाता तोड़ रखा है। खैर इक दिन तो फिर वही इंसानियत के सपनों का सूरज जागेगा, अपनी संवेदनशील किरनों के स्पर्श से जगत को सहलाएगा। नये मानव युग का निर्माण करेगा। यह आशाएं अभी तक बरकरार हैं।

चौथा और अंतिम खंड जीवन की चरम विकट वास्तविकता का वह निचोड़ है।

जिसको पढ़ते, सुनते या स्वयं ही भुगतने

पर हमारे समग्र अस्तित्व में प्रलय फैल जाता है। आइए इन कड़ियों का बड़े ही ध्यान से अभ्यास करें।

''देखी नियति, देखा ख़ुदा का न्याय,
बाप के कंधों पर, बेटे का जनाजा।
जीवन मुसीबतों का दरिया।''

कहा गया है कि इंसान का भाग्य उसके जनम से पहले ही विधाता उसकी जबीं पर लिखकर उसे धरती पर भेजता है। वैसे तो उम्र के हिसाब से ही मौत अपना हिसाब लगाती है। यही जीवन का उसूल होना चाहिए। यही इंसान के मुकद्दर का ही अंजाम होना चाहिए। लेकिन जैसे कहा गया है कि जिंदगी की पेहली को, उसकी बदलती हुई करवटों को, उसके अलग–अलग पहलुओं को, कोई भी किसी भी वक्त तय कर नहीं पाता है। क्योंकि वक्त और जिंदगी का जोड़ ही तो ताक़तवर है।

और हम पर अपनी हुकूमत करके अपने जलवे दिखाती हैं। लेकिन जिस तरह पहले भी उसकी चर्चा हुई है कि मानवी के लिए इस क़दर की अनहोनियां असह्य हैं जहाँ बूढ़े बाप जीते हों और उनके होते हुए उनकी जवान औलादें मौत के घेरे में आकर अपना प्राण त्याग दें। यह नहीं होना चाहिए। फिर भी अक्सर यह असहनीय नजारें अपना बेहूदा रूप धरे, हमारे सामने जब आ जाते हैं तब आक्रोशित मां–बाप यह नियति और ख़ुदा के इस न्याय के तराजू से चीख़–चीख़ कर अपने गम को जाहिर करते हैं। कई माता–पिता ईश्वर का विश्वास खोकर नास्तिक हो भी जाते हैं।

इस तरह हमारी जिंदगी मुसीबतों के दरिया के दो किनारों पर या तो श्रद्धा की नौका तैराती है या फिर दुःख के मारे लोग अपनी आस्तिकता खोकर इंसानी रीत रसम त्याग भी देते हैं। अपनी जिंदगी को कोसते हुए दुनिया से नफरत की आग में खुद को जलाए हुए जीते हैं। उन्हें लगता है ये नाकाम दुनिया अगर अब उन्हें मिल भी जाए तो क्या है।

ख़ैर, इसी का नाम जीवन है। लेकिन ये जीवन है।

उसके बारे में कवि योगेश के गीत दो फिल्मी पंक्तियाँ पेश कर, इस आलेख का अंतिम सुखद शणगार करता हूँ–

''धन से न दुनिया से घर से न द्वार से।
सांसों की डोर बंधी है प्रीतम के प्यार से।
दुनिया छूटे, पर ना टूटे, ये ऐसा बंधन है।
ये जीवन है इस जीवन का यही है रंगरूप।
थोड़े गम है, थोड़ी खुशियां, यही है छांव धूप।''

ए/3 अभिलाषा फ्लैट, पालडी, अहमदाबाद
मो. 9428907775

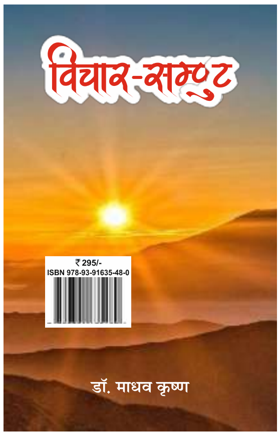

7.

राष्ट्रीय चेतना की संवाहक : वि. दा. सावरकर की कविताएँ

❖ डॉ. देव्यानी महिड़ा

'राष्ट्रीय चेतना' के मूल भाव को प्रकाश में लाना हो तो हमें राष्ट्र और चेतना – इन दोनों शब्दों के मूल अर्थ को समझना होगा। इसीलिए सबसे पहले 'राष्ट्र' का मतलब क्या है उसे देखते हैं। सामान्यतया 'राष्ट्र' शब्द की सीमा के अंतर्गत देश, राज्य, जाति इत्यादि आते हैं, जिनका सामूहिक रूप 'राष्ट्र' कहलाता है।

'राष्ट्र' के स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो इसमें श्स्वश का मूल भाव निहित होता है। अर्थात् राष्ट्र में ही व्यक्ति, परिवार और समाज – तीनों का समन्वय होता है। इसे और विस्तृत रूप में समझना हो तो डॉ. सुभाष महाले के इस कथन पर गौर करना जरूरी है – 'स्व का विस्तृत, विशाल 'अहं' से हम तक का भाव जिसमें परिवार, समाज और उसके आवश्यक उपादानों का समावेश हो, उसे राष्ट्र के रूप में पाया जा सकता है। राष्ट्र सिर्फ निर्जीव पहाड़ों–पत्थरों से घिरा हुआ भू–भाग नहीं होता। उसमें श्स्वश की विस्तृत मानसिकता का संगठित स्वरूप भी समाविष्ट रहता है। यह मानसिकता किसी भू–भाग में समूह स्वरूप में बसे जन–जन की मनोभूमि की होती है जिसका केन्द्र बिन्दु 'राष्ट' होता है।'[1]

'चेतना' शब्द के मूल में 'जागृति' का भाव है। व्यक्ति जब सो रहा होता है तब उसे सुप्तावस्था कहते हैं, वहीं जब वह जागता है तो चेतना की अवस्था में आता है। चेतनता यानि जागने की स्थिति।

उपर्युक्त विश्लेषण को आधार बनाकर कहा जा सकता है कि राष्ट्र का जागना चानि राष्ट्रीय चेतना। राष्ट्र के प्रति जागृति का भाव राष्ट्रीय चेतना का मूल केन्द्र बिंदु है। 'राष्ट्र' में 'इय' प्रत्यय लगाने से राष्ट्रीय शब्द बनता है जो एक विशेषण है। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना का अर्थ हुआ – राष्ट्र के प्रति ज्ञान, विवेक और जागृति का उदय हर नागरिक के मन में होना। डॉ. देवराज पथिक राष्ट्रीय चेतना के लक्षण को प्रकाश में लाते हुए लिखते हैं – 'जो उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करती है, जिनमें हर मोर्चे पर आगे और आगे ही बढ़ने का भाव बलवत्तर बना रहता है, पीछे मुड़ना या ठहराव राष्ट्रीय चेतना की नियति कभी रही ही नहीं है।'२

भारत को आजादी मिलने के पहले अधिकांश भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की अनुगूंज स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है। क्योंकि उस समय सभी भारतवासियों का केवल एक ही लक्ष्य था– भारत को आजादी दिलवाना। भारतीय साहित्यकार भी अपनी कलम के माध्यम से जन–जन के दिलों में राष्ट्रीय चेतनारूपी प्राणों का संचार कर रहे थे। इस विषय में डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– 'हिन्दी ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्यकार इस भावना को मुखरित करते हुए उस भाषा–विशेष को जाननेवाले समुदाय के प्रेरणास्रोत बने हुए थे। इनमें से बहुत से राष्ट्रीय कवि न केवल कविता के माध्यम से वरन् अपने कार्यों से भी अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश कर रहे थे। ऐसे कवियों में मराठा लोकनायक विनायक दामोदर सावरकर का नाम अग्रगण्य है। सावरकर अपनी राष्ट्रीय कविताओं से जहाँ जनता का आह्वान राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए कर रहे थे, वहीं स्वयं इतने प्रखर योद्धा थे कि उन्हें श्वीर सावरकर के रूप में जाना गया।'[3]

वि. दा. सावरकर का जन्म २८ मई, १८८३ में महाराष्ट्र के नासिक जिले के श्भगूरश नामक गाँव में हुआ था। वे जाति से ब्राह्मण थे। पढ़ाई के प्रत्येक सोपान को पार करते हुए उन्होंने पब्लिक सर्विस कमीशन परीक्षा भी उत्तीर्ण की। बचपन से ही धार्मिक संस्कृत ग्रंथों से उनका पाला पड़ गया था। परिणामस्वरूप उनमें संस्कृत भाषा का ज्ञान बढ़ता ही गया। साथ ही पंजाबी और बंगला भाषा सीखकर सिक्खों के साहित्य तथा बंगला साहित्य का अध्ययन किया।

'वीर सावरकर को स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद दो प्रकार की जेलयात्रा से गुजरना पड़ा। उनकी पहली

गिराफ्तारी इंग्लैण्ड में १३ मार्च १९१० के दिन हुई। उन्हें दो –दो कालापानी की सजा हुई जिसकी अवधि कुल मिलाकर ५० वर्ष की थी। जिसके तहत सन् १९११ से सन् १९२१ तक वे अंदमान की काल कोठरी में बंद रहे। उसके बाद की उनकी जेलयात्रा का वर्णन इस प्रकार है– 'सन् १९२१ में उन्हें अंदमान से कलकता लाकर अलीपुर जेल में बंद रखा। वहाँ से १९२२ में रत्नागिरी की जेल में सक्षम कारावास भुगतना पड़ा और अन्त में पुनरू येरवडा जेल में सड़ना पड़ा जहाँ से वे दिनांक ६ जनवरी १९२४ को मुक्त तो किए गए परन्तु उन्हें रत्नागिरी जिले की सीमाओं के अंदर ही स्थानबद्ध कर दिया गया।'[४]

सावरकर जी को कई उपनाम विवशतापूर्वक रखने पड़े थे, जिनमें प्रमुख हैं – 'एक भारतीय राष्ट्रवादी', 'विजनवासी', 'महाराष्ट्र भाट'। वैसे तो उनका जन्मानुसार वास्तविक नाम 'विनायक' था। 'एक भारतीय राष्ट्रवादी' उपनाम से उन्होंने 'अठराशे सत्तावनचे स्वातंर्त्य समर' नामक मराठी ग्रंथः 'विजनवासी' उपनाम से उन्होंने 'रानफुले' और 'कमला' काव्य तथा 'महाराष्ट्र भाट' उपनाम से श्गोमांतकश नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना की थी। उपयुक्त रचनाएँ क्रमशरू सन् १९०८, सन् १९२२ और सन् १९२४ में प्रकाशित हुई थीं।

सावरकर जी जीवनभर अनिद्रा, विषमज्वर, सायेटिका, श्वसनदाह, बवासीर, स्मृतिभ्रम, मज्जातन्तुओं की कमजोरी, ह्दयरोग आदि का सामना करते करते २६ फरवरी १९६६ को सुबह ११ बजे मृत्यु को प्राप्त हुए। उनकी लोकप्रियता उनके मरणोपरांत उन शब्दों के द्वारा सामने आती है। '२६ फरवरी के दोपहर से ही सावरकर के अन्त्यदर्शन पाने के लिए लोगों ने बड़ी–बड़ी कतारें लगाई थीं। एक के बाद एक लगभग दो लाख लोगों ने उनके अन्त्यदर्शन किए। दूसरे दिन २७ फरवरी १९६६ को दोपहर साढ़े तीन बजे उनकी महायात्रा प्रारंभ हुई जिसमें एक लाख से भी अधिक लोग सहस्त्रों स्त्रियों के साथ शामिल थे।'[५]

सावरकर जी के उपर्युक्त व्यक्तिगत पहलुओं को देखकर उनकी व्यक्तित्व की विशेषताओं का अंदाजा उनके पाठक लगा ही लेता है। जिस प्रकार का उनका व्यक्तित्व है उसी प्रकार का उनका कृतित्व भी सामने आता है। उनका कृतित्व उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब माना जा सकता है। जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व का बेहद महत्वपूर्ण पहलू देशभक्ति है उसी प्रकार उनके कृतित्व का महत्वपूर्ण पहलू उनका कविजीवन है। वैसे तो सावरकर जी ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में लेखनकार्य किया है लेकिन जो व्यक्ति उनके काव्य को समझ सकता है वही उनके व्यक्तित्व के भी दर्शन सही अर्थों मे कर सकता है ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है। इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. सुभाष महाले ने लिखा है – कवि के रूप में उनका कृतित्व कुछ अलग ही महत्व रखता है। उनकी काव्यकृतियों में देवभक्ति से लेकर देशभक्ति तक, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन आदि सभी विषयों का समावेश हुआ है। उनके कृतित्व में अनुभूति के भाव हैं। ख्वाबों के ख्यालात भी है। हालात की कठोरता है और नएपन की ललक भी है।'[६]

सावरकर जी के काव्यों को हम तीन कोटियों में विभाजित कर सकते हैं – (१) प्रबंध काव्य (२) स्फुट काव्य (३) नाट्य गीता। यहाँ पर सावरकर जी के उन काव्यों पर चिंतन प्रस्तुत किया गया है जिनमें राष्ट्रीय चेतना समाहित है।

'कमला' नामक प्रबंधकाव्य सावरकर जी के श्पानीपतश विषय पर महाकाव्य लिखने की इच्छा का परिणाम है। यह काव्य उन्होंने अंदमान जेल में बिताये गये समय के दौरान जेल की चूने से लिपी–पुती लम्बी–ऊँची दीवारों पर रामबाँस के काँटों से डेढ़–दो वर्षों की अवधि में लिखा। इतना ही नहीं, यह पूरा काव्य सावरकर द्वारा कंठस्थ कर लिया गया था। क्योंकि उन्हें यह भय था कि कहीं उनका कमरा बदल न दिया जाये, या दीवारें फिर से पोत दी जाएँ। इस काव्य की मूल संवेदना को शब्दबद्ध करते हुए लिखा गया है कि – 'कमला काव्य में सावरकर जी के राष्ट्रीय विचार ही व्यक्त हुए हैं। इसके सारे पात्र बलिदान की भावना से राष्ट्रीय कार्य में कूद पड़ते हैं। कवि ने श्रृंगार रस के सहारे युवक–युवतियों को अपने वैवाहिक कर्तव्य के साथ राष्ट्रीय कर्तव्य की भी याद दिलाई है।'[७]

कवि के रूप में सावरकर जी ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में लड़ते समय सभी देशवासियों के मन में देशभक्ति जगाने का अथक प्रयास किया था। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास को उन्होंने अपने काव्यपंक्तियों में शब्दबद्ध किया है, जो इस प्रकार है –

'वह मरदाना मेवाड़ याद आता था
चित्तौड़ दुर्ग की कथा याद आई थी
जौहर व्रत केसरिया बाने की बातें
चेतक की चंचल टाप याद आई थी

वह वन–वन अलख जगाते जो घूमा था
उस वीरव्रती की व्यथा याद आई थी
राणा प्रताप को स्वर्णपात्र कब प्रिय थे
उनको पत्तों की पत्तल भी भाई थी।'[८]

सन् १६४३ में श्री वासुदेव गोविन्द मायदेव न श्सावरकरांची कविताश (सावरकर की कविता) शीर्षक से सावरकर जी की फुटकल कविताओं का संकलन प्रकाशित किया। इसमें सावरकर जी की कुल मिलाकर ६६ कविताएँ संकलित हैं। इस पुस्तक में प्रमुख राष्ट्रीय पुरुषों की स्तुति, उत्कृष्ट काव्यगुणों से भरे भावगीत, राष्ट्रीय प्रचार करनेवाले गीत, संगठन–समता–स्वदेशीपन–अस्पृश्यता निवारण जैसे विषयों की भावाभिव्यक्ति करनेवाले गीत आदि पाये जाते हैं।

देशभक्त कवि सावरकर के लिए देश और ईश्वर के बीच कोई फर्क नजर नहीं आता था। वे सही अर्थों में राष्ट्रदेवता के उपासक के रूप में हमारे सामने आते हैं। इसीलिए जब देश को स्वतंत्रता मिलती है तब वे उसे साक्षात् भगवती के रूप में मानते हुए वंदना करते हुए लिखते हैं –

'जयोस्तुते श्रीमहन्मंगले। शिवास्पदे शुभदे
स्वतंत्रते भगवति। त्वामहं यशोयुतां वन्दे।'[९]

स्वदेशी वस्तुओं को त्यागकर भारत की जनता जब विदेशी वस्तुओं के मोह में पड़ गई थी तब उन्हें जागृत करने के लिए सावरकर जी ने अपनी कोशिशों को शब्दों में बयां किया है। कवि देश के लोगों की विदेशी वस्तुओं के प्रति बढ़ रहे मोह की मानसिकता का विरोध करते हुए उनमें चेतना जगाने हेतु लिखते हैं दृ

'काश्मीराच्या शाली त्यजुनी अलपाकाला कां झुलतां,
मलमल त्युजनि वलवल चिती हलहल के पट का वरिता?

× × × × × × × × × × × × × × × × × ×

नागपुरचे रेशिम भासे तागपटासे परि परक्या?
रठ्ठ बनाती मठ्ट लोक हो, माऊँ लागती तुम्हां कसा?'[१०]

सावरकर जी की हृदय की अभिलाषा थी कि भारत में स्वदेशी वस्तुओं का महत्व बढ़े। वे ऐसा स्वराज्य चाहते थे जहाँ पूर्ण रूप से स्वदेशीपन हो। इसी में वे देश का अभिमान मानते थे। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता पाने का एकमात्र उपाय यही था कि भारत के लोगों को एक होकर स्वाभिमान के साथ स्वदेशी उद्योगों तथा अपने ही देश मे तैयार हुए वस्त्रों का इस्तेमाल करना चाहिए। वे ऐसा देश चाहते थे जिसमें 'स्वत्व' का आभास हो और देश की संपत्ति पर केवल देशवासियों का अधिकार हो।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वीर सावरकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में एकरूपता है। उन्होंने जो सोचा वैसा ही किया और वैसा ही लिखा। उनके चिंतन – मनन और लेखन में कोई भी अंतर दृष्टिगत नहीं होता है। सावरकर जी को स्वतंत्रता की तीव्र लालसा थी और भारत को स्वतंत्रता दिलाने हेतु उन्होंने अपना पूरा जीवन न्यौछावर कर दिया।

सावरकर जी के काव्यों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना उनकी व्यक्तिगत राष्ट्रीय चेतना की ही संवाहक है। उनकी राष्ट्रीय चेतना अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को भी तोड़ देती है। उनकी राष्ट्रीय चेतना का प्रत्येक पहलू वर्तमान भारत के लिए भी आवश्यक और प्रेरक है। कहा जा सकता है कि सावरकर जी की राष्ट्रीय चेतना सम्पूर्णता से सराबोर हैय जिसमें विश्वबंधुत्व एवं समन्वयता की भावना दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ सूची

१. माखनलाल चतुर्वेदी और वि. दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, डॉ. सुभाष महाले, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. १६६७, पृ.२६
२. नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, डॉ. देवराज पथिक, पृ. २८
३. माखनलाल चतुर्वेदी और वि.दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, डॉ. सुभाष महाले, फ्लैप से
४. वही, पृ.६२
५. वही, पृ.६४,६५
६. वही, पृ.६१,६२
७. वही, पृ.६५
८. सावरकर विचार दर्शन, सं – भानुप्रताप शुक्ल, पृ.२०
९. सावरकरांची कविता, सं – वा. गो. मायदेव, पृ.०१
१०. वही, पृ.०६

विभागाध्यक्षा
एम.पी.आटर्स एण्ड एम.एच.कॉमर्स कॉलेज फॉर विमेन,
रायपुर दरवाजा, अहमदाबाद, गुजरात
ईमेल : gohildp199@gmail-com

8

'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह की मूल संवेदना

❖ डॉ. विनोद कुमार चौधरी

हिंदी साहित्य अपनी गौरवशाली गरिमा को आज के समय में भी प्रस्तावित कर पा रहा है तो उसकी वजह है— मानव जीवन की मार्मिकता, मानवता, संवेदनशीलता का यथार्थ वर्णन। इन सभी का प्रादुर्भाव हिंदी साहित्य में अनेकों वर्ष पूर्व हो गया था। लेकिन इसमें स्वर्ण में ज्योति प्रज्वलित करने का कार्य भक्तिकालीन कार्यों के साहित्य में विशेष रूप से हुआ है। मनुष्य अपने जीवन की सारी यंत्र विषमता, द्वंद्व, अराजकता, असमानता और अनेकता से मुक्ति पाने के लिए एवं वास्तविक पहचान को प्राप्त करने के लिए भक्ति, अध्यात्म जैसे मार्गों को अपनाता है। भक्तिकाल के समय में उपलब्ध स्थिति की तरह आज आधुनिककाल में भी मानव जीवन की यह व्यवस्था बनी रही है। तब अनेकों समस्या उत्पन्न हुई, जो जीवन को वंशात्मक पथ की ओर अग्रसर करती रहीं। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने जीवन के मर्म से अनभिज्ञ हो गया। सत्य, असत्य, द्वंद्वात्मक प्रतिक्रिया ने मनुष्य के अस्तित्व की पहचान को विचलित कर दिया। जब–जब ऐसी यंत्रणा मानव युग को अस्पष्टता के घेरे में लाकर खड़ा करती है तब तक एक युग शक्ति, युग महिमा का जन्म होता है; जो इन सभी विनाशकारी एवं विकारी विषमताओं को दूर कर मानव समाज को सत्यता, निष्ठा, नैतिकता, प्रमाणिकता की ओर ले जाने का कार्य करती हैं।

गुरु मैया डॉ. हरेश्वरी देवी एक ऐसी ही युग संवाहिका का प्रतीक है, जिन्होंने मात्र 17 वर्ष की अल्पायु में गृह त्यागकर धर्म, भक्ति, अध्यात्म, योग साधना, संगीत कला, समाज जैसे विभिन्न ज्ञानोजन विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। इसके अलावा स्नातक, अनुस्नातक तक की उपलब्धि से गुजरते हुए पीएच.डी की महानतम प्रसिद्धि को भी प्राप्त किया। यह अतुल्य और श्रेष्ठतम योग्यता की अभिव्यक्ति ही है कि गुरु मैया डॉ. हरेश्वरी देवी विद्यावाचस्पति की पदवी के साथ–साथ अन्य सभी ज्ञानोर्जित प्रवृत्तियों में भी अगवा रही, जिसमें मानव कल्याण का हित हो सके। गुजरात की भूमि पर रहकर भी हिंदी भाषा के साहित्य में अपनी लेखनी को प्रशस्त किया है। हिंदी, गुजराती, अंग्रेजी की विशेषज्ञ गुरु मैया डॉ. हरेश्वरी देवी के 220 से भी अधिक हिंदी, गुजराती के ग्रंथ उपलब्ध होते हैं।

गुरुमैया डॉ. हरेश्वरी देवी का ऐसा ही काव्य संग्रह 'प्रत्यभिज्ञा' है। मानवता के धर्म को अहमियतता प्रदान करनेवाली मैया 'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करती हैं। प्रकृति, पर्यावरण, धर्म, ज्ञान, अध्यात्म, मूढ़ता, आशक्ति का भी वर्णन है। 'प्रत्यभिज्ञा' का अर्थ होता है— पहचान। इस काव्य संग्रह की सभी कविताएँ किसी न किसी तत्व की पहचान मनुष्य को कराती हैं। जो उसके मूल संवेदना में भी देखी जा सकती है। क्योंकि मनुष्य आज अनेक दुविधाओं में फँसा हुआ है; जिसके परिणामस्वरूप मानव न तो सत्य की प्राप्ति कर पाता है न हीं स्वयं के अस्तित्व की। इसलिए जब इस मायाभरे जगत में आत्मबोध की और स्वानुभूति की पहचान ही मनुष्य के जीवन को सार्थकता प्रदान करने की पूर्णता प्रस्थापित कर पाती है। इसी कारण पहचान का मर्म जीवन की पूर्णता में देखना चाहिए यही संदेश गुरुमैया डॉ. हरेश्वरी देवी अभिव्यक्त करती हैं। गुरु मैया ने देखा कि मानव मानव की प्रगति उन्नति का ही विरोधी बना हुआ है। केवल अपने स्वार्थहितों की अभिलाषाओं ने मनुष्य को अंधा बना दिया है। दूसरा यहाँ तक कि अपने अनुज की सिद्धि को भी वह नहीं पचा पाता है। आज के मानव की यह स्वार्थपरायण अनभिज्ञता को मैया इस रूप में आलेखित करती हैं —

"सितारों को देखकर होता है कि हजारों मिल के फासले से भी वह चमक रहे हैं।
और इंसान अपने पास खड़े हुए
किसी दूसरे की चमक देखकर
क्यों फीका पड़ जाता है ?"[1]

एक दृष्टि के आधार पर यह गहरे चिंतन, मनन

की बात है। जहाँ पर मनुष्य दूसरे मनुष्य की प्रगति के प्रति हिंसात्मक भाव रखता है, जो कि यह प्रगति पाशविक प्राणियों में पाई जाती है। गुरु मैया ऐसी असमंजसता के सामने प्रश्न खड़ा करती हैं।

धर्म सभी सामाजिक, असामाजिक, धृत, रोगी, भोगी, योगी के जीवन को सिद्धि और मुक्ति प्रदान करनेवाला आधार होता है। इसीलिए भी सभी जनमानस धर्म के वहन, आचरण को, पालन को अपने जीवन की महत्वपूर्ण आधार शिला मानते हैं। धर्म की अवहेलना मानो जीवन के सत्कर्मों का विनाश, धर्म ही सत्य के मार्ग को मानव का मार्ग बनाता है। आज 21 वीं शताब्दी में धर्म की उपलब्ध संपूर्ण मान्यताएँ दूषित हो गयी हैं। धर्म के वास्तविक पहचान से लोग हजारों, मिलों, सहस्रों, कोस दूर हो गए हैं। आज जो धर्म का पालन हो रहा है वह सच्चे धर्म की अनभिज्ञता में अंधभक्ति का वहन बन गया है। गुरु मैया डॉ. हरेश्वरी देवी इसलिए यह आह्वान करती है कि धर्म के पालन से पूर्व धर्म क्या है ? धर्म कैसा है ? धर्म के कहाँ है ? इन प्रश्नों को सुनिश्चित कर लेना अति आवश्यक है। क्योंकि सच्चे धर्म को आत्मसात् करके ही धर्म के वास्तविक मर्म को जाना जा सकता है। 'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह की 'धर्मपालन' नामक कविता में गुरु मैया इस बोध को प्रकट करती हैं। जहाँ पर मैया दर्शाती हैं कि धर्म किसी अनजान, अधर्मी मार्ग की या ठेकेदारों की, राजनीतिज्ञों की भूमि नहीं है। किंतु धर्म सत्य के त्याग की; राग, द्वेष के नाश की; दूसरों के सहायता की, परोपकारिता की, समानता की, क्षमता की और सहधर्मिता की तत्वशिला है। धर्म क्या है के संदर्भ में गुरु मैया हरेश्वरीदेवी समझाती हैं कि–

"धर्म है जो भ्रष्टाचार मुक्त जीवन में
धर्म है तन मन धन से व्याभिचार मुक्ति
धर्म है झूठ चोरी उचापत और रिश्वत से
मुक्ति धर्म है कंठी–माला, ऊँच–नीच और गरीब तवंगर का
भेदभाव भूलकर सबके प्रति समभाव और समव्यवहार
धर्म है संयमित और परोपकारी जीवन
धर्म है हर रूह में उसका दर्शन।।"[2]

मानव और धर्म की सहितार्थ पहचान को उपलब्ध कराने के पश्चात् गुरु मैया हरेश्वरी देवी 'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह में इस सृष्टि की कुछ विशेषताओं का पर्दाफाश करती हैं। इस धरा पर एक मनगढ़ंत मान्यता कहें या रूढ़ि कहें जो सर्वाधिक रूप से प्रचलित है वह यह कि– 'जिसका जैसा संग होता है, उसका वैसा ही रंग होता है'। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य या अन्य पदार्थ जिसके साहचर्य में रहते हैं– उनका संपूर्ण प्रभाव उसे पर नजर आता है। लेकिन गुरु मैया हरेश्वरी देवी इस बात को पुष्ट तरीके से नहीं मानती हैं। यदि ऐसा होता तो यह पृथ्वी और यहाँ की जीवन धारा स्वर्णमयी बन जाती।

निःसंदेह जीवन की यात्रा में अनेक प्रभाव प्रकृति को, परिवेश को प्रभावित करते रहते हैं। लेकिन सभी उन स्थितियों का अन्य सद्‌गुणों का आचरण नहीं करना चाहते हैं। इसलिए ही 'जैसा संग वैसा रंग' की युक्ति अपनी सटीक पहचान नहीं रखती हैं। काँटे कभी भी पुष्प की कोमलता को नहीं अपनाते, बिजली हमेंशा बादल को जलाती हैं, वन में राक्षस कभी भी ऋषियों की साधना को नहीं उतरने और न ही साँप चंदन की गुणधर्मिता में विश्व को त्यागने का साहस रखा करते हैं। हालांकि इन सभी का साहचर्य साथ–साथ ही होता है फिर भी उनका उद्देश्य और स्वभाव भिन्न होता है। गुरु मैया इसके आधार पर मानव समाज के सदस्यों में व्याप्त जीवन व्यापन के गुणधर्म का और स्वभाव का परिचय कराती हैं। यही उनका उद्देश्य भी है–

"काँटें फूल के संग रहते हैं परंतु चुभना कहा छोड़ते हैं ?
बादल बिजली का साथ अटूट रहने पर भी
बिजली जलने जलाने का गुण नहीं छोड़ती
हिना का रंग हजारों दुल्हनों के हाथ रंगते हैं परंतु अपने ही पत्तों को लाल पीला क्यों नहीं करती
अरण्य में ऋषि और राक्षस दोनों बसते हैं
परंतु कहाँ छोड़ते हैं अपना अपना स्वभाव ?"[3]

गुरुमैया हरेश्वरी देवी सभी दृष्टांतों के द्वारा यह समझाता हैं कि जीवन एक रहस्य है। उसकी वास्तविक पहचान को केवल संगतियों या रूढ़ियों के चरितार्थ से नहीं जाना जा सकता है। गुरुमैया धर्म, अध्यात्म एवं जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाले मार्ग का सूचन करने के साथ–साथ समाज की शोषणात्मक स्थितियों के खिलाफ

आवाज उठाने का साहस भी देती हैं। जब समाज समस्यामुक्त हो जाएगा, तभी समाज में मानवी का जीवन सफल हो सकेगा। इस बात को मर्मज्ञ के मैया जानती हैं। इसीलिए अधिकारों की प्रतिष्ठा के लिए स्त्रियों के शोषण को सीमित करने के लिए और मनुष्य के मानव धर्म को बचाने के लिए आह्वान करती हैं; जिससे वह अपने युग धर्म के उद्देश्यों को समझ सके। स्त्रियों के शौर्य को प्रकट करती उनकी कविता 'मुझे अबला मत समझो' स्त्री सशक्तिकरण की यथार्थ अभिव्यंजना है। वहीं दूसरी और 'आखिर कब तक' जैसे कार्यों में जीवन को अपवाद बनानेवाले तत्व और जीवन को महज क्रीड़ांगण समझकर जुल्म बरतने वाले सभी पैमानों के खिलाफ लड़ने की अभिव्यक्ति हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु मैया डॉ. हरेश्वरी देवी के कार्यों का विषय विस्तार कितना विस्तृत है। और उससे भी कई ज्यादा विस्तृत उनकी मानवतावादी दृष्टि है। स्त्रियों को अबला माननेवाली आधुनिक सोच का खंडन कर वह स्त्रियों के अदम्य शौर्य का गुणगान करती हैं –

"कान खोलकर सुन लो कि कौन हूं मैं
मुझे अबला मत समझो भले मौन हूं मैं
उर्मिला का त्याग, झांसी की कहानी, पृथ्वीराज की विद्या
प्रताप की भवानी, अहिल्या और चाँदबीबी जैसी कई तवारीख फिर भी सुलगते सहारा में बारिश
वेद के हर पढ़ने की शान हूं मैं
मुझे अबला मत समझो भोले मौन हूं मैं।"[4]

यह सर्वथा सत्य है कि सृष्टि पर सभी जीवों का जो जीवन टिका हुआ है, उसका आधार बिंदु तत्व प्रकृति है, पर्यावरण है। किंतु जिस तरह से मानव विकास की लालसा में और भूख की पराकाष्ठा में प्रकृति का हाथ रहता है उससे निश्चित तौर पर वह अपने जीवन को विनाश की ओर ले जाता है। वैज्ञानिक भी इस दुविधा से भयग्रस्त हैं। उसी तरह गुरु मैया हरेश्वरी देवी प्रकृति को पूजनीय माननेवाले मानवीय संतान को यह बोध उपलब्ध कराती हैं। प्रकृति ही जीवन के चेतना प्रदान करनेवाली शक्ति है। इसी कारण मनुष्य का प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव अत्यंत ही चिंताजनक है; जिसे रोकना अत्यंत ही जरूरी है। 'माँ प्रकृति' काव्य में गुरु मैया की वैज्ञानिक एवं पर्यावरणवादी सोच संवेदनात्मक रूप से चरितार्थ हुई है। जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण की संरक्षण का भाव हो प्रकट होता है। इन आधारों पर स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि गुरु मैया हरेश्वरी देवी की तात्विक चिंतनात्मक दृष्टि किसी एक दायरे तक सीमित नहीं रही है–

"प्रकृति की इस श्रेष्ठ संतान का अज्ञान देखकर
मुझे विस्मय हो रहा है मुझे विश्व में हो रहा है
उस बात से कि आदि अनादि से
अन्नदा, पुष्पदा, फलदा, वारिदा
ज्योतिदा और जीवनदा
माँ प्रकृति के लिए
मनुष्य कृतघ्नी क्यों हो गया है ?
मुझे विस्मय उस बात पर हो रहा है
कि क्या मनुष्य
इतना नासमझ है कि
जो प्रकृति जीवन का पर्याय है, उसे ही नष्ट कर रहा है।।"[5]

'प्रत्यभिज्ञा' काव्य संग्रह की इन सभी कविताओं का विवेचन करने के पश्चात् यह बात अवश्य उभरती है कि आज के युग में मनुष्य को अपने परिवेश की, अपनी यथा स्थितियों की, अपनी समस्याओं के समाधान की, धर्म, अध्यात्म और जीवन की सार्थकता प्रदान करनेवाले मार्गों की ओर, स्वयं के अधिकारों की ओर, जनकल्याण एवं मानव विकास की गतिविधियों की पहचान होनी चाहिए। तभी इस धरा पर सत्य का आविर्भाव युगयुगांतर तक टिका रहेगा। गुरुमैया हरेश्वरी देवी द्वारा रचित काव्य संग्रह 'प्रत्यभिज्ञा' के विवरण के उपरांत यह संवेदना उभरकर सामने आती है, जो गुरुमैया हरेश्वरी की साहित्यिक और मानवतावादी सोच को अभिव्यक्त करती हैं।

संदर्भ

१. प्रत्यभिज्ञा (अछांदस काव्य संग्रह), गुरुमैया डॉ. हरेश्वरी देवी, पृ. ३६
२. वही, पृ. ४६
३. वही, पृ. ४८,४६
४. वही, पृ. १८
५. वही, पृ. ६

हिंदी विभाग
भीखाभाई आर्ट्स कॉलेज, आनंद
गुजरात

9
जीवन राग-विराग के कवि आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह (मेघमाला के संदर्भ में)

❖ डॉ. राजेन्द्र परमार

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि हैं। गुजरात के साथ उनका अटूट नाता रहा है। महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा में हिंदी विभाग के संस्थापक आचार्य रहे हैं। गुजरात में रहते हुए गुजरात में लिखे जाने वाले हिंदी साहित्य को गरिमा प्रदान करने में आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की बहुत बड़ी भूमिका रही है। गुजरात के मध्यम कालीन कवि अखा की हिंदी रचनाओं का संपादन 'अक्षयरस' शीर्षक से हिंदी जगत के सामने रखने का श्रेय आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह को जाता है। वे छायावाद के ऐसे कवि हैं जिनकी अभिव्यक्ति और अनुभूति में कोई अंतर नहीं दिखाई देता है। आधुनिक युग की जो आंदोलनजीवी कविता है उससे वे कभी प्रभावित नहीं हुए। छायावादी कविता की प्राकृतिक सौंदर्यता और संपन्नता उनकी कविता में है। आचार्य कुँवर साहब की कविता में अनुभूति और अभिव्यक्ति का वह सामंजस्य विद्यमान है, जो अपने आप में अनुपम है और उसमें वह जीवनी शक्ति है, जो उनके गीतों की अजरता–अमरता का प्रमाण है।

हिंदी कविता में छायावादी कवि प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा के योगदान से भलिभाँति हम परिचित हैं। जब–जब छायावाद का जिक्र होता है तब–तब सबसे पहले ये चारों कवि ही हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु छायावाद का एक पाँचवा कवि भी है और वह पाँचवा कवि और कोई नहीं किन्तु आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह हैं। प्रो.शिवमोहन सिंह ने अपने ग्रंथ 'छायावाद : नया काव्य–विमर्श' में छायावाद के विकास चरण को चार कालखण्ड में विभाजित किया है। 1. प्रवर्तनकाल : सन् 1916 से 1924 ई. तक, 2. प्रकर्षकाल : सन् 1925 से सन् 1933 ई. तक, 3. उत्कर्षकाल : सन् 1934 से सन् 1942 ई. तक और 4. उन्नयनकाल : सन् 1943 से सन् 1997 ई. तक। आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह का गीतों का संग्रह 'मेघमाला' शीर्षक से सन् 1942 ई. में प्रकाश में आता है। हमें स्मरण में रखना चाहिए कि इसी वर्ष महादेवी वर्मा का 'दीपशिखा' काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह छायावाद के उत्कर्षकाल से लेकर उसके उन्नयनकाल अर्थात् सन् 1942 से लेकर सन् 1997 तक निरंतर काव्य–साधना में लीन रहे थे। इसीलिए आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह को छायावाद का उन्नायक कवि माना गया है। छायावाद में आचार्य कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह का प्रवेश छायावाद के प्रवर्तनकाल से ही हो गया था। वे सन् 1931 में महाप्राण कवि निराला के संपर्क में आये थे। आचार्य कुँवर साहब पर छायावादी कवियों मे से सबसे अधिक प्रभाव निराला का पड़ा है। उनके द्वारा रचित गीतों पर निराला का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 'मेघमाला' में संग्रहित गीतों में 'गागर में सागर' वाली बात को चरितार्थ किया है। 'मेघमाला' के गीतों पर टिप्पणी करते हुए निराला ने इन्हें 'अनुपम गीत' की संज्ञा दी है। इन्हीं गीतों को अज्ञेय एक 'क्रांतिकारी साहित्यिक घटना' कहते हैं।

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह शब्द और कर्म के साधक कवि थे। वे परमार्थ के समर योद्धा थे। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी काव्य–साधना द्वारा न केवल छायावाद का स्वरूप निर्धारित किया था, बल्कि इस युग

की सभी काव्य–प्रवृत्तियों को निर्धारित कर नूतन भाव, नूतन भाषा, नूतन शैली, नूतन छंद, नूतन अलंकार तथा नूतन काव्य रूप से हिन्दी कविता का श्रृंगार किया था। आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह इसी नूतन भावधारा को सन् 1997 तक अपनी कविताओं के माध्यम से प्रवाहित करते रहे हैं। उनके गीत संग्रह और कविता संग्रह इस बात का प्रमाण हैं।

साहित्य मनीषी आचार्य कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह का 'मेघमाला' गीत–संग्रह सन् 1942 में प्रकाशित हुआ था। इस गीत– संग्रह में कुल 108 गीत संकलित हैं। इस गीत–संग्रह के अधिकांश गीत सन् 1938 तक निराला के साथ 'सुधा' तथा 'माधुरी' जैसी पत्रिकाओं में छप चुके थे। इस गीत–संग्रह में विषय का वैविध्य सहज ही देखा जा सकता है। उन्होंने विभिन्न विषयों पर गीतों की रचना की है। कवि ने प्रेम, सौंदर्य, करुणा, जीवन, मृत्यु, आशा, निराशा, प्रकृति, वेदना, सत्य, आस्था जैसे विषयों पर लेखनी चलाई है। उन्होंने 'मेघमाला' के गीतों का अनुपम उपहार हिंदी जगत को दिया है।

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने अपने गीतों में जीवन के राग विराग का सजीव चित्रण किया है। कवि का सौंदर्य प्रेम उनके प्रत्येक गीत में प्रकट होता दिखाई देता है। वे लिखते हैं–

वह सरोज–मुख, वे अलि–अलकें,
स्वर्ण–स्वप्न विकसित प्रिय पलकें,
वे सौंदर्य– सुरा की छलकें,
सब तुम पर बलिहार री ![1]

व्यक्ति के जीवन में प्रेम का बहुत बड़ा स्थान होता है, चाहे वो कोई भी व्यक्ति क्यों न हो। प्रेम वह अमृत है जिसका पान करने मात्र से जीवन का सारा तिमिर मिट जाता है। प्रिय के दर्शन मात्र से हृदयरूपी मरु भूमि में भी सुधा रस बहने लगता है। कवि लिखते हैं–

दृगों में रूप–अरूप खिला
मरु–उर–द्रवित, सुधा–रस–सिंचत,
बही स्नेह – सलिला ![2]

आषाढ़ में उमड़ने वाली प्रथम श्याम घन माला के कारण कवि का हृदय ज्वाला की तरह जल रहा है। यह जलता हुआ हृदय कैसे शीतल हो पाएगा ? कवि इस प्रश्न का प्रत्युत्तर देते हुए कहता है कि–

यह अभिमान–मान, यह कुंठन,
छोड़ो आज लाज–अवगुंठन,
पीने दो, पीने दो इस क्षण
विसमृतिमयी अधर की हाला ![3]

कवि कहते हैं कि प्रेम करने की यही उचित बेला है। यौवन अल्प है इसलिए इसकी अवहेलना करना ठीक नहीं है। हे प्रिये हठ त्याग दो, निराश मत करो। ये सरस बेला बीती जा रही है। आगे कवि लिखते हैं–

यही समय है, यही समय है,
सार्थक कर लो यौवन,
चिर अतृप्ति, फिर चिर अतृप्ति की,
शाश्ति सहेगा जीवन ![4]

यौवन की क्षणभंगुरता से कवि परिचित है। यौवन सदा के लिए तो रहेगा नहीं । उसका क्षय निश्चित है। यौवन को काल ग्रस ले उससे पहले सपनों की कोमल पँखुड़ियों को सजा लेना चाहिए। कवि इस संदर्भ में लिखते हैं–

बाँध लो नयन, मन यौवन में,
मधुमय वसंत की ये घड़ियाँ,
झड़ जाएँ न बेसुध, जीवन के
सपनों की कोमल पँखुडियाँ ![5]

यौवन समाप्त हो जाए उससे पहले कवि कुसुमित उपवन में प्रिय के साथ अमरण मिलन गान गाने की बात करते हैं।

जहाँ प्रेम है वहाँ विरह होगा ही होगा। विरह है तभी प्रेम की महत्ता समझ में आती है। जहाँ प्रेम और सिर्फ प्रेम का ही अथाह समुद्र लहरा रहा हो वहाँ विरह की कल्पना मात्र प्रिय को व्यथित कर देती है। ऐसा कौन निठुर व्यक्ति है जिसने विरह का ताप न सहा हो। पद्‌मावत की नायिका की तरह विरही को लता–कुंज, तरु–पुंज, अलि–गुंजन व्यथित करते हैं। कवि कहते हैं कि विरह की वेदना सँभाले भी नहीं सँभाली जाती है, विरह का संताप मन को और अधिक विकल बना देता है–

कहो, किस विरह की कठिन चोट पाली,
दु:सह वेदना जो न जाती सम्हाली

उमड़ता विकल मन, घिरे घन सघन ये ?[6]

कवि के गीतों में करुणा का स्वर कूट–कूट कर भरा हुआ है। वे वेदना को ही जीवन का सार मानते हैं। पर यह वेदना निराशावादी न होकर आशावादी है। कवि कहते हैं–

बैठा हूँ वेदना छिपाए !
उर में अनल, दृगों में जल है,
आशा की छलना अविरल है,
जीवन प्रतिपल विषम गरल है,
पीकर जिसे गरल जल जाए ![7]

विरह के क्षणों में कवि अपने आपको अकेला पाता है। विरह का ताप सहन करने के लिए वह विवश है। कवि को आभास हो रहा है कि बहुत जल्द प्रियतम से भेंट होने वाली है। निम्न पंक्तियों में विरहानुभूति का सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है–

इस निशा में मैं अकेला !
झर रही है शरद की राका निरंतर अमृत–निर्झर,
तिर रहा है कुमुद का उल्लास पुलकित पवन–पथ पर,
गूँजते हैं निखिल प्राणों में किसी के मिलन के स्वर,
विवश मैं, कैसे सहूँ यह विरह–दुःसह प्रणय–हेला?[8]

जिस पथ से प्रिय आनेवाला है उस पथ पर विरही चातक पक्षी की भाँति अनिमेष पलके बिछाए हुए हैं। पिक की पुकार विरही को और अधिक बेचैन करती है। वह प्रिय आगमन की सुमधुर नुपूर ध्वनि सुनने के लिए आतुर है–

मैं अकेला आज अपलक वेदना अपनी सँजोए,
चातक की आह, पिक के गान में अस्तित्व खोए,
सुनूँ कब नुपूर–मधुर पद–चाप प्रिय तव आगमन की?[9]

जिसे जीवन मूल्यों में आस्था हो वह निराशावादी कैसे हो सकता है? कवि 'हरो मेरी अमा' कहकर अपने जीवन के अंधकार को दूर करने की माँग करता है। मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है। एक न एक दिन वह आकर ही रहेगी। कवि को मृत्यु का बिल्कुल भय नहीं है। वे भलिभांति जानते हैं कि जीवन का प्रत्येक चरण मृत्यु की ओर आगे बढ़ता है। जब वह आती है तो उसमें युग के युग, काल के काल और कल्प के कल्प समाहित हो जाते हैं।

अस्त रे, जीवन !
धीर पद आता मरण,
असहाय तू न शरण !
क्षीण, मलिन प्रकाश निष्फल,
यहाँ लोहित तिमिर केवल
डूबते युग, कल्प, काल,
अबाध यह प्लावन ![10]

जीवन में अनंत का आभास, सीमा में असीम की छाया–कवि की आदर्शवादिता और आशावादिता के मूल आधार स्तंभ हैं। सृष्टि निर्माता से कवि असफल को सफल और असत्य को ध्वस्त करके सत्य को स्थापित करने की कामना करता है। मृत्यु के भय से अधिक महत्वपूर्ण है जीवन का जयगान।

असफल को सफल करो,
हरो, श्रम–ताप रहो !
तम से हो प्रकाश का परिचय
असत ध्वस्त, हो सत्य का उदय,
मृत्यु जाय, जय जीवन की जय।[11]

जीवन का लक्ष्य जीव का शिव में रूपांतरित हो जाना है। भौतिक सुख सुविधाओं ने हमें जीवन के मुख्य गंतव्य मार्ग से भटका दिया है। कवि ईश्वर को ही जीवन का कर्णाधार मानते हैं। दुनिया के सारे रिश्ते–नाते स्वार्थ से परिपूर्ण हैं। ऐसे में एक मात्र जगत का पालनहार ही निःस्वार्थ भाव से हम पर निरंतर प्रेम की वर्षा करता रहता है। कवि लिखते हैं–

तेरा नाम, तेरा ध्यान,
मेरी गीति, मेरा ज्ञान
तुमको खोजता सर्वत्र,
पहुँचा मैं न तुम हो यत्र....
सोचो देव, अपना कौन,
मेरा जगत भ्रम–तम–पूर्ण
आओ, अमर स्वर्ण–बिहान ![12]

कवि मानव जीवन को अविनश्वर का नश्वर विहार कहकर आहत ही नहीं करता, चिरंतन ब्रह्म और मानव की एकता का भी सुन्दर रूप अंकित करता है। कवि की

कामना है–

> **अकल तान, मृदु गान एक स्वर,**
> **बहें उभय कंठों के निर्झर,**
> **रहें प्रणय–अभिनय में लय नित,**
> **जीवन, जन्म, मरण।**[13]

'मेघमाला' में संग्रहित गीतों पर टिप्पणी करते हुए भूमिका में बालकृष्ण राव ने उचित ही लिखा है कि– "कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी की कविता Escapist (वास्तविकता से दूर ले जाने वाली) कही भी जा सकती है और नहीं भी। उनकी कविता आज के वातावरण से घबराकर चिंतना अथवा स्वप्न के शांतिमय वातावरण का काल्पनिक निर्माण नहीं। वह एक आदर्शवादी कविता है, उसमें कल्पना असत्य की नहीं, एक ऐसे सच्चे आदर्श की आराधना सी करती है, जिस पर कवि की एक मात्र आस्था है।"[14]

आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह की भाषा संस्कृत गर्भित है, उसमें तत्सम शब्दों का प्राचुर्य है। छायावादी शैली में लिखे गए इन गीतों में लय, तुक, प्रास का अनूठा समन्वय हुआ है। छायावादी काव्यभाषा का सफल प्रयोग इन गीतों में हुआ है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है की आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के गीत बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। इन गीतों में कवि के मनोभाव आस्थावान कवि–ह्दय का प्रतीक है। डॉ.गजेन्द्र सिंह भदौरिया ने आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के गीतों पर टिप्पणी करते हुए उचित ही लिखा है कि– "महाकवि कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह के गीतों का प्रमुख स्वर सौन्दर्यनिष्ठ और अनत चेतना प्रधान है। संवेदना की गम्भीरता तथा मसृणता नादात्मक और चित्रात्मक सौन्दर्य से संवलित होकर रसप्लावित कर देने में सर्वथा स्पृहणीय है। जीवन और प्रकृति के प्रति कुँवर जी का आकर्षण अपरिमेय है।"[15]

संदर्भ

1. मेघमाला, आचार्य कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, पृ. 5
2. वही, पृ. 8
3. वही पृ. 38
4. वही पृ. 45
5. वही, पृ. 46
6. वही, पृ. 14
7. वही पृ. 23
8. वही, पृ. 95
9. वही, पृ. 96
10. वही, पृ. 34
11. वही, पृ. 89
12. वही, पृ. 81
13. वही, पृ. 88
14. वही, पृ. 2
15. गीत शतक, संकलन डॉ.गजेन्द्र सिंह भदौरिया, भूमिका–पृ. 9

सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग,
गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद

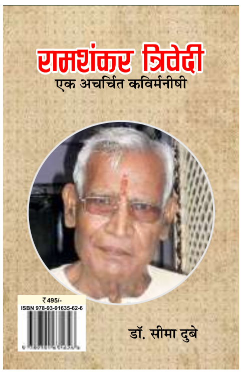

10

वतन से दूर रहने की पीड़ा 'अमरिका हड्डियों में जम जाता है'

❖ डॉ. सुरेश पी. पटेल

'अमरिका हड्डियों में जम जाता है' डॉ.अंजना संधीर का हिन्दी प्रवासी साहित्य के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कविता संग्रह है। इसका प्रकाशन वर्ष 2003 है। कविता संग्रह में कुल 48 कविताएँ संगृहीत हैं। भारतीयों के दृष्टिकोण से अमरीकी जीवन का जितना जीवंत चित्रण अंजना संधीर की कविताओं में मिलता है, उतना हिन्दी के किसी भी प्रवासी कवि की कविता में नज़र नहीं आता।

अमेरिका जो तीसरी दुनिया की युवापीढ़ी का स्वप्न है, अधिकांश के लिये दिवास्वप्न और अनेकों के लिये पूरा होकर भी हो जाता है जो एक दुःस्वप्न। अमेरिका एक ऐसा स्वर्ग है जहाँ व्यक्ति सशरीर पहुँच जाने में सक्षम तो हो सकता है, पर जिसमें आत्मसात् होने के लिये मर जाता है उसका मन, संस्कार और आत्मा। अमेरिका जो उपभोक्ता संस्कृति की चरम परिणति है, जिसकी निरन्तर बढ़ती हुई सुविधाओं को जुटाने में व्यक्ति स्वयं होम हो जाता है, खप जाता है।

अमेरिका— विरोधाभासों का पुंज, जहाँ 'सब व्यक्ति समान पैदा हुए हैं' का नारा देनेवाले दास रखते थे, जिन्हें स्वतंत्र होने में लगी सदियाँ और एक गृहयुद्ध। हर नई अप्रवासी जाति को जहाँ समानता के लिए करने पड़े सतत संघर्ष। अश्वेत अप्रवासियों को इस भूमि में बसने का अधिकार पाने में लगी शताब्दियाँ। अफ्रीकी अश्वेतों को भेदभाव समाप्त कर पूर्ण मताधिकार पाने में लगे तीन सौ वर्ष।

अमेरिका जो प्रजातंत्र का गढ़ है, पर अधिनायकवादी राष्ट्रों का पोषक। अमेरिका विश्व का सर्वशक्तिमान राष्ट्र, जिसे हर छोटे से–छोटे राष्ट्र के स्वतंत्र अस्तित्व से भय लगता है। अमेरिका जो युद्धरत रहा है, स्थापना–विस्तार से लेकर आज अपने को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अप्रतिम स्थान बनाने तक। जिसने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम में दी है हमें तनाव की भाषा, पीढ़ियों का अन्तराल, सहोदरों की प्रतिस्पर्धा और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए चुकाया गया एकाकीपन का मूल्य। अपने–अपने कक्षों में, अपने–अपने मनों में हँसने–रोने की परम्परा।

'अमरिका हड्डियों में जम जाता है' इस संग्रह की पहली कविता है। इस कविता के आधार पर संग्रह का शीर्षक दिया गया है। विश्व में आज अमरिका भौतिक उत्कर्ष एवं वैभव–विलास की चरमसीमा पर है। भारतीय संस्कृति के मूलाधार–सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्, वसुधैव कुटुम्बकम्, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव वहाँ देखने नहीं मिलते। कवयित्री के मोहभंग की पीड़ा संग्रह की पहली कविता 'अमरिका हड्डियों में जम जाता है' में देखने मिलती है–

"सैक्स के मुक्त दृश्य
किशोरावस्था से वीकेंड में गायब रहने की स्वतंत्रता
डिस्को की मस्ती, अपनी मनमानी का जीवन
कहीं भी, कभी भी, किसी के साथ
उठने, बैठने की आज़ादी......
धीरे–धीरे हड्डियों में उतरने लगता है अमरिका"।

अंजना संधीर की कविताओं में इसी अमरीकी स्वर्ग की तलाश में आत्मनिर्वासित हुए अप्रवासियों की त्रासदी अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से मुखरित हुई है। मूँगफली

और पिस्ते के, पेट्रोल और पानी के एक भाव वाले देश में सारी सुविधाओं के बावजूद उन्हें जिलाती है माँ की रसोई की यादें और उसके पत्रों में दिखाई देती चिरप्रतीक्षाभरी भीगीं, छलकतीं आँखें । चौबीसों घण्टों जागने, भागने और भोगे जानेवाले न्यूयोर्क के ऐश्वर्य में खोकर, भीड़ों में एक गुमनाम आँकड़ा बनकर उन्हें स्पन्दित करता है। अपने छोटे से गाँव का परिदृश्य, जिसमें मरकर भी मैं जीवित हूँ की अनुभूति है। सभ्यता के जंगल में जब वे अस्मिताहीन हो जाते हैं, तो वही गाँव देता है उन्हें उनकी पहचान। ग्रीन कार्ड पाकर, जिसके लिये लोग अपना नाम, धाम, सम्बन्ध, धर्म, सत्य क्या–क्या नहीं बदलते। व्यक्ति का मन चीख उठता है कि–

"तेरी धरती पर रहने को मुक्त
लेकिन मानसिक रूप से गुलाम हो गया हूँ।"

महसूस करता है अपनी धोबी के कुत्ते जैसी स्थिति, जहाँ स्वदेश में उसे दिखती हैं अपेक्षाओं से भरी आँखें तो प्रवास में मजबूरी भरी रातें। यह पीड़ा सिर्फ अंजना संधीर की नहीं है, अपितु हर भारतवासी की है। अपनी लाचारी की पराकाष्ठा देखिए–

"कभी सोचता हूँ देश वापस चला जाऊँ,
फिर सोचता हूँ एक पर्दा तो है
तूने मेरा सबकुछ छीन लिया
उड़ने को मुक्त किया लेकिन पर काट लिये"।

प्रवासी मन बार–बार जीने के लिये उत्पन्न करता है मन में एक आशा कि एक दिन हम परी कथाओं के राजकुमार की भाँति विजयी होकर ऐश्वर्य, गौरव के साथ लौटेंगे। माँ के बहाने हम स्वयं को ही विश्वास दिलाते हैं–

"मेरे आने की राह देखती
तेरी आँखें मुझे भूलती नहीं हैं
इन्तज़ार करना
मैं आऊँगी"।

किन्तु एक बार वनवास भोगकर समूचे रूप में कोई घर नहीं लौटता। न चाहते हुए भी अमेरिका हमारी हड्डियों में बसने लगता है। कोशिश करते हुए भी हम उसमें रमने से बच नहीं सकते। जिन बच्चों के लिये हम पल–पल तपस्या करते हैं, जीवन का सम्पूर्ण होम करते हैं, वे हाथ से निकल जाते हैं। पंख पाकर नीड़ छोड़ देते हैं, अपना जीवन जीने के लिये। विवश हो हम भारत नहीं, लघुभारत जीने लगते हैं, कहीं शिकागो में गांधी मार्ग बनाकर, दक्षिण कैलीफोर्निया में ऐस्टोरिया में बसाकर अथवा न्यूयार्क में जेक्सन हाइट्स में भारत के हर नगर की रंगत, हर प्रदेश का खानपान, वस्त्राभूषण एक लघुक्षेत्र में एकत्र कर। क्षणभर वहाँ घूम फिरकर अपने को भुलावा देते हैं, अपने को बनाये रखने के लिये। कभी अपने को सौभाग्यशाली मानकर, कभी शापित। भारतीय प्रवासी नारी उद् घोष करती है, मुझे अधिकार है अपना जीवन जीने का। संग्रह की 'मैं एक व्यक्ति हूँ' कविता इस आशय का आईना है। देखिए–

"मैं एक व्यक्ति हूँ, मेरी मर्जी है जिससे चाहूँ
इच्छा से मिलूँ, माँ बनूँ या गर्भपात करवा लूँ।
बच्चों को पिता का नाम दूँ या न दूँ।
मुझे अधिकार है अपना जीवन जीने का"

और हम धीरे–धीरे अभ्यस्त हो जाते हैं अमेरिका नाम के विशाल जुआघर के। अपनी किस्मत आजमाते, जीवन का जुआ खेलते, अप्सराओं, सुरापात्रों, रंगीनियों के स्वर्ग में एकबार जैकपॉट की आशा करते, सब कुछ दाव पर लगाते। आज नहीं तो कल वापस चले जाने के सपने देखते। पर अक्सर वैसा होता नहीं। 'अमेरिका एक विशाल जुआघर है' कविता इसका प्रमाण है–

"सिर्फ एक बार जैकपोट लग जाए
बस फिर चला जाऊँगा
इसी चाह में जमा पूँजी
क्रेडिट कार्ड तक पहुँच जाती है"।

माँ–बाप, भाई–बहिन, बन्धु–बान्धव और मुल्क दाँव पर लगाकर भी अन्त में होती है अनुभूति कि जुए घर का पैसा जीतकर भी जुए घर में ही रह जाता है कोई उसे बाहर नहीं ले जाता। हम अपना भविष्य देखने लगते हैं एकाकी वृद्धों के उस झुण्ड में जो घर के अकेलेपन से ऊबकर आ बैठते हैं पार्कों की बैन्चों पर।

"बैठे देखते हैं आते–जाते लोगों को
क्योंकि इन बूढ़ी आँखों के लिये इतना ही काफ़ी है
घर के अकेलेपन से भीड़ का अकेलापन ज्यादा अच्छा है

मरने से पहले (वह) मरने नहीं देता।"

अमरिका में निवास करनेवाले लोगों पर अपने बंधु, मित्र एवं रिश्तेदार इस बात का दबाव डालते हैं कि उन्हें भी अमरिका बुलवा लें। पर अमरिका में वे लोग वहाँ की जीवन–शैली से परेशान हैं। 'अब मैं डरने लगा हूँ' कविता में कवयित्री को अपने गाँव की यादें सताती हैं–

"यहाँ मैं बरसों रहा पर कोई मुझे
जानता नहीं, पहचानता नहीं
मैं जीता चाहे यहाँ रहूँ
लेकिन मरना तुझमें चाहता हूँ
ओ मेरे छोटे से गाँव।
क्योंकि मैं यहाँ जीकर भी मर चुका हूँ
तुझमें मरके भी मैं जिंदा रहूँगा।"

'अमरिका हड्डियों में जम जाता है' संग्रह की कविताएँ हर किसी प्रवासी को तो झकझोरेंगी ही, दिवास्वप्नों में डूबे स्वदेश में युवावर्ग को भी देंगी वे ज्ञानचक्षु, जिनसे वे देख पायेंगे कि हर चकाचौंध कर देनेवाली चमकीली वस्तु सोना नहीं होती।वतन से दूर, अमरिका के व्यस्त मशीनी जीवन में रम जाने के बावजूद कवयित्री अंजना संधीर के मन में अपने वतन से दूर रहने की जो पीड़ा है, वह किसी भी सहृदय की आँखें बरबस नम कर देने की असीम क्षमता रखती है। सीधी–सादी आम भाषा में लिखी अंजना संधीर की कविताएँ हृदय से निकलकर सीधे हृदय को स्पर्श करती हैं।

जय हिन्द.....जय हिन्दी ।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभागाध्यक्ष, श्रीमती ए.पी.पटेल
आर्ट्स एण्ड स्व.श्री एन.पी. पटेल कॉमर्स
कॉलेज नरोडा, अहमदाबाद।

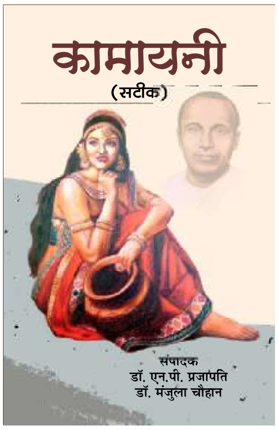

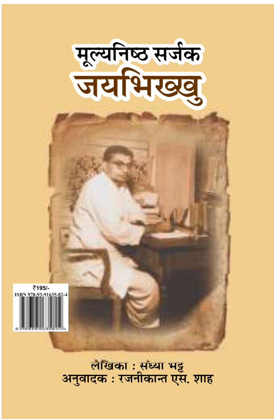

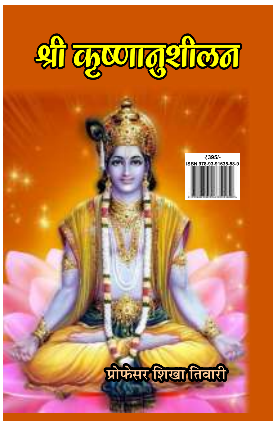

11

रूपनारायण सोनकर और उनका नाटक 'समाजद्रोही'

❖ डॉ. गिरीश रोहित

रूपनारायण सोनकर हिन्दी दलित साहित्य जगत में विद्रोही कथाकार के रूप में ख्यात हैं। उनकी विशिष्ट पहचान रंगमंच और नाटक के क्षेत्र में रही है। उनके चर्चित नाटकों में 'एक दलित डिप्टी कलक्टर', 'विषधर', 'महानायक', 'छायावती' तथा 'समाजद्रोही' आदि समाविष्ट हैं। हिन्दी दलित कथा लेखन के अंतर्गत उन्होंने उपन्यास, आत्मकथा व कहानी लेखन में भी अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज़ करायी है। उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास 'सूअरदान' (2010), 'डंक' (2009), 'गटर का आदमी' (2015) न केवल दलित उपन्यास लेखन में, बल्कि समस्त हिन्दी उपन्यास जगत में अपनी विशिष्ट छाप अंकित किये हुए हैं। उनके द्वारा लिखा गया कहानी–संग्रह 'जहरीली जडें' (2005) अंग्रेजी में 'प्वाइज़नस रूट्स' शीर्षक अंतर्गत दस्तक दे चुका है। यह कहानी–संग्रह भारत और भारत के बाहर भी कई विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अपनी जगह बना चुका है। रूपनारायण सोनकर ने 'नागफनी' (2007) नामक आत्मकथा लिखकर दलित आत्मकथा जगत में एक विद्रोही लेखक के रूप में अपनी विशिष्ट व पृथक छवि बनायी है। उनकी इस कृति की हिन्दी आलोचना जगत के शीर्षस्थ आलोचकों ने भी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। साथ ही इसे दलित आत्मकथा–लेखन की अगली सशक्त कड़ी के रूप में देखा गया है।

जहाँ तक नाटक और रंगमंच का सवाल है, सोनकरजी ने नाट्य–लेखन के साथ–साथ अभिनय के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया है। उनके इस विशेष योगदान के चलते उन्हें उत्तराखंड के महामहीम राज्यपाल श्री सुदर्शन अग्रवाल के हाथों 'नाट्य रत्न' सम्मान से भी नवाज़ा गया है। इतना ही नहीं विश्व प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक रस्किन बांड द्वारा उनके नाटक 'महानायक' का विमोचन भी हुआ है। नाटक के साथ–साथ सोनकरजी ने फिल्मों में भी कई किरदार निभाये हैं। उनके नाट्य लेखन का मूल उद्देश्य दलित समाज में बदलाव व परिवर्तन रहा है। उनके सामाजिक व हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक सम–सामयिक यथार्थ की उपज रहे हैं। ये नाटक वर्तमान समस्याओं के समाधान को भी इगित करते हैं।

'समाजद्रोही' (2007) रूपनारायण सोनकर रचित एक चर्चित नाटक संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह में कुल पाँच नाटक संकलित हैं– समाजद्रोही, खल–छल नीति, कलक्टर साहब की भैंस, बहरे नेताजी की शादी, इन्टरनेट बूढ़ों को जवान बनाता है– इत्यादि। 'समाजद्रोही' मूलतः रूपनारायण सोनकर रचित कहानी है, जो उनके कहानी–संग्रह 'जहरीली जडें' में संग्रहित है। हिन्दी के शीर्ष आलोचक नामवर सिंह के साथ–साथ प्रमुख हिन्दी दलित लेखक–समीक्षक मोहनदास नैमिषराय, अजय नावरिया, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, सुदेश तनवर, विमल थोराट इत्यादि ने सोनकरजी की कहानियों को दलितों के अंधकार भरे जीवन को उजाले की ओर ले जाने वाली बतायी हैं। इसके चलते ही सोनकरजी ने 'समाजद्रोही' कहानी का न केवल नाट्य रूपांतरण किया, बल्कि इसका रंगमंच पर सफल मंचन भी किया। इस नाटक का प्रथम मंचन टाउनहॉल, देहरादून–उत्तरांचल में 26 अगस्त 2006 को किया गया। जिसमें दून घाटी रंगमंच के दक्ष कलाकारों के साथ स्वयं लेखक ने भी बड़ी कुशलतापूर्वक किरदार निभाया। प्रस्तुत नाटक की सारगर्भित भूमिका लिखते हुए प्रो.कालीचरण 'सनेही' बताते हैं–

"आज वास्तव में ऐसे ही नाटकों की जरूरत है, जो समाज को जाग्रत कर सकें। आज की राजनीति बहुत

दूषित हो गयी है। कुछ स्वार्थी नेता जो हिन्दू–मुस्लिम दंगा कराते हैं, बलात्कार, मर्डर और अपहरण कराते हैं। देश का अमनचैन बिगाड़ते है। ऐसे नेता देश के दुश्मन हैं, समाजद्रोही हैं। इस नाटक से समाज को, ऐसे छल–कपटी नेताओं से सजग किया गया है।"[1]

'समाजद्रोही' नाटक मूलतः वर्तमान दूषित राजनीति और उसके क्रूर–अमानवीय चरित्र को बेनकाब कर देता है। साम्प्रदायिक वैमनष्य भारत की एकता, अखंडितता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ–साथ सामाजिक सद्भाव और सौहार्द के लिए भी अत्यंत घातक सिद्ध हुआ है। विभाजन से लेकर अब तक भारत के कई शहरों व गाँवों में असंख्य दंगे–फसाद फैले हैं, फैलते रहे हैं जो आज भी रूकने का नाम नही ले रहे हैं। सत्तालोलुप नेता कभी नहीं चाहते कि यह आग बुझ जाय। सोनकरजी ने प्रस्तुत नाटक के जरिये इस देश की ज्वलंत व भयावह समस्या को बड़ी शिद्दत के साथ उठाकर उसके सुखद समाधान को भी चिन्हित किया है। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावनास्वरूप 'लेखक की कलम से' में सोनकरजी ने स्पष्ट बयान किया है कि–

" 'समाजद्रोही' नाटक एक कनिंग व क्रूर नेताओं की सही तसवीर प्रस्तुत करता है। इन्हीं नेताओं की वजह से देश का अमनचैन बिगड़ता जा रहा है। साम्प्रदायिकता नंगा नाच करने लगती है।

लेखक की विनती इस पूरे समाज से, इस देश से है और आने वाली संतानों से है कि कनिंग व क्रूर, साम्प्रदायिकता फैलाने वाले, बलात्कार व अपहरण करने वाले व लोंगो का कत्ल करने वाले नेता पार्लियामेंट व विधानसभाओं में न पहुँच पाये।"[2]

तात्पर्य यह कि 'समाजद्रोही' वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक यथार्थ की कलई खोलने वाला एक सशक्त नाटक है। प्रस्तुत नाटक कुल मिलाकर ग्यारह दृश्यों में विभाजित है। लेखक ने इसमें निरंजनलाल शर्मा, नीला खटीक, शकीला, शाफिया बानो, राही, डी.एम, डी.एस. पी,के साथ–साथ कट्टरपंथी हिन्दू–मुसलमान दंगाईयों जैसे विविध पात्रों के जरिये साम्प्रदायिक वैमनष्य की बखूबी उधेड़बुन की है।

नाटक का प्रथम दृश्य शहर में फैले दंगों ओर उसमें नेता व दोनों सम्प्रदायों के दंगाईयों का पर्दाफाश कर देता है। साथ ही दोनों समुदाय से पढ़े–लिखे प्रोफेसर कोटी के पात्रों का भी अवतरण होता है अपनी बौद्धिक वैचारिकता के बल पर दंगाईयों की आपसी भीड़ंत को रोकने का प्रयास करते हैं। देखिये दलित प्रोफेसर सेवकलाल के विचार–

"अरे भाई! मारकाट में क्या रखा है। इस मातृभूमि को खून से क्यों रंग रहे हो ? अपने ही भाईयों को क्यों मार रहे हो? यदि खून बहाना ही है तो सीमा पर दुश्मनों से लड़कर खून बहाओ। आतंकवादियों और सीमाओं की रक्षा करते तुम्हारे शरीर से बहने वाली एक–एक खून की बूँद मातृभूमि को पवित्र कर देगी। यदि तुम वहाँ मर गये तो तुम लोग शहीद कहलाओगे। तहाँ मरोगे तो दंगाई कहलाओगे।"[3]

तो उधर मुस्लिम दंगाईयों को समझाते हुए मुस्लिम प्रोफेसर नकवी के विचार भी चिन्तनीय हैं। देखिये–

"ठहरो! रुको, मजहब के नाम पर अपने ही भाईयों को मार रहे हो। धर्म कभी आपस में लड़ने को नहीं कहता है। धर्म प्यार, मोहब्बत, भाईचारा की बात करता है। कौमी एकता के फलने–फूलने की बात करता है। दो कौमों के बीच झगड़ा एक पागलपन की बीमारी है।"[4]

दूसरे दृश्य में नाटक का एक अहम् पात्र 'नीला खटीक' हमारे सामने आता है। नेता निरंजनलाल शर्मा की छत्रछाया में मुर्गे–बकरे का गोश्त बेचने वाला नीला खटीक प्रोफेशनल कीलर बन जाता है। गोश्त लेने वाले ग्राहकों की बजाय उसके पास सुपारी देने वाले ग्राहक ज्यादा आने लगते हैं। नानक गुप्ता जो कि अपने छोटे भाई की सुपारी देने आता है। वह चाहता है कि उसका छोटा भाई उसकी पैतृक सम्पत्ति हड़प न जाय। तो कामता पंडित अपने राजनीतिक प्रतिस्पर्धी कुर्मी शिवलाल सचान को अपने रास्ते से हटा देना चाहता है। क्योंकि जब तक वो जिन्दा है कामता पंडित का ग्राम प्रधान बन पाना असम्भव है। देखिये उसके ही शब्दों में–

"मेरे गाँव में एक कुर्मी है शिवलाल सचान। कई बार मुझे ग्राम प्रधानी में हरा चुका है। छह माह बाद ग्राम प्रधानी का चुनाव है। मैं उसकी आपको सुपारी दे रहा हूँ।[5]

तो इधर नीला खटीक का चरित्र देखिये–

"क्या और कोई रास्ता नहीं है? अच्छे काम करो। गाँव का विकास करो। गाँव वाले स्वयं तुम्हें ग्राम प्रधान बना देंगे।"[6]

तीसरा एक नारी पात्र है शकीला। जो एक पढ़ी–लिखी नौकरीपेशा औरत है। वह अपने दकियानूसी पति से मुक्ति चाहती है, जो उसे नौकरी छुड़वाकर जबरन देहव्यापार के व्यवसाय में धकेलना चाहता है। नीला खटीक उसकी सहाय करते हुए जो बात कहता है, नीला खटीक के चरित्र के मानवीय व उदात्त पहलू को उजागर करती है।

"मैं तुम्हें फ्री में गोश्त दूँगा। मैं उस नीच आदमी को मारने की सुपारी फ्री में लेता हूँ।''[7]

कुल मिलाकर नाटक का दूसरा दृश्य एक ओर नीला खटीक के चरित्र की अच्छाईयों को बखूबी खोलकर हमारे सामने रख देता है, तो दूसरी ओर नानक गुप्ता व कामता पंडित जैसे उच्चवर्णीय अमानवीय पात्रों की ऊधेड़बुन भी करता है। जबकि शकीला के जरिये लेखक ने पितृसत्तात्मक समाज में नारी के हो रहे शोषण के खिलाफ़ विद्रोही तेवर दिखाये हैं।

नाटक के तीसरे से लेकर नौवा दृश्य राजसत्ता व धर्मसत्ता के गठजोड़ के साथ–साथ निरंजनलाल के माध्यम से सत्तालोलुप नेताओं के चरित्र की कलई खोलकर रख देते हैं। नीला खटीक शहर में फैले दंगों में चौबीस अल्पसंख्यकों को अपने घर पनाह देता है। दंगाईयों को इस बात की भनक लग जाती है। अंत में नेता निरंजनलाल साजिश रचकर नीला खटीक को अपने घर बुला लेता है। इधर निरंजनलाल के इशारे पर दंगाई सारे अल्पसंख्यकों को मौत के घाट उतार देते हैं। लेखक ने यहाँ नेता निरंजनलाल के मुख से ही राजनीति के मुखौटे को हटा के रख दिया है–

"ये सब राजनीतिक हथकंडें हैं। राजनीति की शतरंजी चालें हैं। राजनीति में न्याय अन्याय कुछ नहीं होता। नैतिकता राजनीति की डिक्शनरी में नहीं होती है। राजनीति का केन्द्रबिन्दु होता है केवल सत्ता : बाई हूक या बाई क्रूक। मानवता की बात करना राजनीति में बेवकूफी हैं।[8]

बाद में यही नेता निरंजनलाल अल्पसंख्यकों की मौत का इल्जाम नीला खटीक के सिर मढ़ देता है। साथ ही जिला प्रशासन से अनुमति लेकर अल्पसंख्यकों को सात्वना देने पहुँच जाता है। नेता की चाल न समझ पाये अल्पसंख्यक लोग निरंजनलाल शर्मा जिंदाबाद, जिन्दाबाद के नारे लगाने लग जाते हैं। नेता की भड़काऊ बाते सुनकर मुस्लिम दंगाई तैश में आ जाते हैं। मैजिस्ट्रेट का आदेश था कि देखते ही गोली मार दी जाय। दंगाई इसकी परवाह किये बगैर पुलिसवालों से लेकर नीला खटीक व अनेक दलितों को मौत के घाट उतार देते हैं।

नाटक के अंतिम दो दृश्य–दसवाँ–ग्यारहवाँ निर्णायक सिद्ध होते हैं। अंत में इन्क्वायरी कमेटी की रिपोर्ट आ जाती है। जिसमें नेता निरंजनलाल दंगा फैलाने से लेकर अल्पसंख्यक लोगों के आटे की बोरियों में हथियार रखवाने में दोषी पाया जाता है। निरंजनलाल खुद को कानून के हवाले कर दे उससे पहले ही सच्चाई से अवगत हो चुकी भीड़ मुर्दाबाद के नारे लगाते हुए उस पर टूट पड़ती है।

कुल मिलाकर लेखक ने यहाँ सामाजिक न्याय की प्रस्थापना, सामाजिक सौहार्द तथा राष्ट्रीय एकता आदि को बरकरार बनाये रखने के कट्टरपंथी सोच का खात्मा अनिवार्य बताया है। साथ ही निरंजनलाल जैसे नेता का बुरा हस्र दिखाकर सत्ता के मोह में समाज से द्रोह कर रहे नेताओं को भी आगाह किया है। प्रस्तुत नाटक रंगमंचीयता की दृष्टि से भी सफल सिद्ध हुआ है।

संदर्भ

1. समाजद्रोही, रूपनारायण सोनकर, भूमिका से
2. वही, लेखक की कलम से
3. वही, पृ. 3
4. वही, पृ. 3
5.. वही, पृ. 6
6. वही, पृ. 6
7. वही, पृ. 7
8. वही, पृ. 16

अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग
आर्ट्स–कामर्स–सायन्स कॉलेज, खंभात
Email : girishrohit1101@gmail.com

12

डॉ. दिलीप मेहरा का 'मकान पुराण' जिंदगी का जलता दस्तावेज

❖ डॉ. मोहनलाल जाट

इधर के कुछ वर्षों में मनुष्य के जीवन जीने और जीवन में प्रयुक्त सामग्री के प्रति नजरिए में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिल रहा है। धीरे–धीरे अति बौद्धिकता ,उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावादी मनोवृतियों ने हमारे समाज को ग्रस्त करके उसमें मानसिक बदलाव किए हैं। फलां व्यक्ति की सोच पूर्णतया अवसरवादी और परीक्षा के रूप में आर्थिक फायदे के इर्द–गिर्द घूमने लगी है। क्योंकि साहित्य समाज की संचित मनोवृतियों का प्रतिबिंब होता है तो उसमें तद्युगीन समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय सोच प्रतिबिम्बित होती है। आज के साहित्य में यह सब सामान्य होता जा रहा है । सपाटबयानी में लिखे जा रहे आज के साहित्य में डॉ. दिलीप मेहरा का जीवन दर्शन समाज, शिक्षा, संस्कृति और राष्ट्रीय जीवन के प्रति कटु यथार्थवादी और सुधारात्मक कहा जा सकता है। गुजरात विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक के साथ एम. ए. और एम. फिल् की उपाधि लेने के बाद महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री हासिल करने के बाद महाविद्यालय में पढ़ाना शुरू किया और आज सरदार पटेल विश्वविद्यालय, आनंद के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग में आचार्य के पद पर गरिमामय सेवाएँ दे रहे हैं। पिछले 25 वर्षों से गुजरात में शिक्षा का प्रचार प्रसार कर रहे एक ईमानदार शिक्षाविद ,आज्ञाकारी शिष्य और भविष्य दृष्टा गुरु तथा शोध– निदेशक के रूप में सराहनीय कार्य कर रहे डॉ. दिलीप मेहरा ने अपनी सूझबूझ, जीवन के कड़वे अनुभव और इर्द–गिर्द की जिंदगी के कड़वे सच में जो अनुभव समेटे हैं ,वे 'मकान पुराण' कहानी संग्रह में प्रकाशित हुए हैं । इस संग्रह में लेखक ने आठ कहानियां जीवन के विविध धरातलों से लेते हुए उनकी सच्चाई को व्यंग्यात्मक कटु यथार्थ में हमारे समक्ष रखा है। उनके द्वारा व्यंग्य विधा से व्यंग्य निकालकर कहानी में लाना साहसी कदम है डॉ. दिलीप मेहरा बेबाकी से बोलने वाले सहज व्यक्ति हैं और यह मनोवृति उनकी कहानियों में अलग–अलग विषयों के अनुरूप साफ झलकती देखी जा सकती है। उनकी विचारधारा, उनकी जीवन दृष्टि और उनके जीवन–मूल्यों को हम विभिन्न कहानियों के संदर्भ में विभिन्न शीर्षक देकर समझ सकते हैं–

शिक्षा में आर्थिक और व्यक्तिगत हित-साधना का पर्दाफाश

स्वतंत्रता के बाद भारत की शिक्षा–दीक्षा में धीरे– धीरे दबे पांव अंग्रेजियत की आड़ में निजी संस्थानों का बोलबाला बढ़ने लगा और आज आलम यह है कि तमाम सरकारी, अर्ध सरकारी और वित्तीय सहायता प्राप्त संस्थाएं भी निजीकरण की भेंट चढ़ती जा रही है। इसके पीछे केवल सरकारें ही उत्तरदायी नहीं है,जनता की हित– साधना एवं विलासी जीवन शैली की दिखावटी ललक भी जिम्मेदार है। "शिक्षा का सच" में लेखक ने प्रारंभ में ही कहानी का मंतव्य स्पष्ट कर दिया है : "आजकल प्राइवेट संस्थाएं ज्यादा अस्तित्व में आ रही हैं। धीरे–धीरे सरकार भी सरकारी संस्थाओं को खत्म करके प्राइवेट संस्थाएं स्थापित करना चाहती है। इससे सरकार को सीधे–सीधे दो फायदे होते हैं,एक तो सरकार को कर्मचारियों को तनख्वाह देनी न पड़े और दूसरा,आम जनता में यह मैसेज जाता है कि सरकार ने गांव–गांव संस्थाएं खोलकर अपने क्षेत्र का अच्छा विकास किया। इतना ही नहीं, नयी प्राइवेट संस्थाएं खोलते वक्त सरकार को भारी डिपोजिट भी ट्रस्टी मंडल से मिल जाती है,

और मुनाफा भी अलग से। जिन–जिन वाशिंदों ने सरकार बनाने में पार्टी के लिए कड़ी मेहनत की हो, ऐसे कुछ सन्निष्ठ, कर्मशील वाशिंदों को नई संस्थाएं मुआवजा के रूप में मिलती हैं। फलतः शिक्षा का कारोबार करके अपना जीवन संसार ठीक तरह से चला सके। कुल मिलाकर सेल्फ फाइनेंस संस्थाएं शिक्षा का व्यावसायीकरण करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। मेरी दृष्टि से सेल्फ फाइनेंस का मतलब होता हैं 'खुद के लिए फाइनेंस करना। जब आदमी खुद के लिए फाइनेंस करता है, फिर आप कैसे उम्मीद रखें कि वे दूसरों का भला सोचें? सेल्स फाइनेंस संस्था चाहे कॉलेज या स्कूल हो– उसके मंडल को दूसरा महत्वपूर्ण फायदा यह होता है कि वे अधिकतर नौकरी की जगहें चाहे शिक्षक की हों, बाबू की हों या चपरासी की,सभी में वे अपने घरवाले,परिवारवाले या अपनी जातिवालों को आसानी से उचित न्याय दे सकें। इससे उनके फाइनेंस वाले रुपए उनके ही पास शीघ्र वापस आ जाए। पढ़ाई के कोर्स की फीस भी अधिक से अधिक रखी जाती है जिससे अपने करीबी लोगों को नौकरी देने की वजह से फीस उनके ही घर या परिवार में व्हाइट मनी बनकर वापस आ जाये।"[1]

शिक्षा के काले कारनामों, निजी संस्थानों में चहेतों को फायदा पहुंचाना और कर्मचारी के साथ ट्रस्टी द्वारा अभद्र आचरण तथा व्यवहार करना, आधिकाधिक काम लेकर कम वेतन देना, चमचागिरी करवाना और बिना किसी कारण के नौकरी से निकाल देना– आदि को लेखक ने "मारफाड़ ट्रस्टी" में बखूबी उकेरा है। इंदुलाल की नेक सलाह पर मेवालाल द्वारा समाज–हित हेतु खोले गए स्कूल–कॉलेज उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र शंकरलाल के हाथ में आते ही कर्मचारियों के अपमान और शोषण के केंद्र बन जाते हैं। शंकरलाल मनमानी करने लगता है और बेवजह किसी भी शिक्षक या प्राचार्य का अपमान करने लगता है। वह कर्मचारियों को अपनी जागीर और नौकर समझता है। एक दिन कक्षा में शिक्षक मोहन द्वारा जुबान लड़ाने पर उसे कक्षा में ही दो झापड़ मार दिए ट्रस्टी शंकरलाल ने। एक दिन गेट पर तीन छात्रों को जबरन पकड़कर उन्हें गंजा करवा दिया और चोरी का आरोप लगाकर सोने की चैन भी ले ली। जब यह बात घर जाकर बच्चों ने अपनी–अपनी माताओं को बताई तो माताओं ने रणचंडी का रूप धारण कर लिया और स्कूल पहुंचकर शंकरलाल की जूते–चप्पलों से जमकर धुनाई कर दी। इसके बाद महिलाएं पुलिस थाने पहुंची और शंकरलाल को गिरफ्तार करवाकर ही दम लिया। लेखक का निष्कर्ष रूप में कथन दृष्टव्य है– "सभी महिलाएं वहां भी अपने पराक्रम से शंकरलाल के खिलाफ केस दर्ज करवाने में कामयाब होती हैं। उस दिन शंकरलाल ने अपने आपको जेल में ही रहना सुरक्षित समझा। इन्हें जेल में रहने में अपनी भलाई दिख रही थी, इसलिए कुछ भी बोले नहीं। दूसरे दिन हर अखबार में खबर छपी कि,"निर्दोष बच्चों को गंजा करने वाले सुप्रसिद्ध स्कूल के तानाशाह ट्रस्टी शंकरलाल की महिलाओं के द्वारा की गई चप्पलों से अच्छी धुनाई।" आज भी इस ट्रस्टी के सर पर पचास से भी ज्यादा मुकदमें चल रहे हैं। धन्य हो भारत के मारफाड़ ट्रस्टी श्री शंकरलाल।"[2]

शिक्षा में अपराधियों की सेंध इस कहानी के माध्यम से हमारे चक्षु खोलने के लिए पर्याप्त संकेत है।

बिदाई को भारत में अत्यंत करुणोत्पादक माना गया है। लेखक ने "बिदाई समारोह और शंकर की उलझन" में लोक–जीवन के इसी सत्य को उजागर करते हुए लिखा है" बिदाई समारोह चाहे नौकरीपेशा आदमी का हो या दुनिया से अलविदा होने वाले आदमी का। विदा लेने के समय दोनों के बारे में चारों ओर से तारीफों के फूल बरसते हैं। चाहे बिदाई लेनेवाला आदमी अच्छा हों या बुरा, उसने जीवन में अच्छे कर्म किए हो या बुरे,लेकिन बिदाई के समय समाज उसकी तारीफ जरूर करेगा। जीते जी सौ गालियां देते रहे हों, लेकिन बिदाई के समय उसके बारे में अच्छी ही बातें होगी और आनेवाले भविष्य में भी अच्छी होगी, यह एक सनातन सत्य है।"[3] कॉलेज में लंबी सेवाएं देने के बाद संजय और नटवरलाल दोनों रिटायर्ड हो रहे हैं। संजय सज्जन और ईमानदार व्यक्ति रहा तो उसकी प्रशंसा आवश्यक है किंतु शंकरलाल की दृष्टि में नटवरलाल जैसे चापलूस, धूर्त,छात्र तथा प्रोफेसर–विरोधी कार्यों के लिए जाना जाता है तो बिदाई के समय उसकी झूठी प्रशंसा करना गलत परम्परा को आगे बढ़ाते रहना होगा, जो कि शिक्षा–जगत में रूढ़ है। हालांकि नटवरलाल की काली करतूतों और अकादमिक शंकर का विरोध करने के कारण शंकर को बहुत कुछ आगे बढ़ने एवं संघर्ष करने की प्रेरणा मिली, लेकिन ऐसे लोगों को ही रिटायर्ड होने

के बाद निजी संस्थानों में कोई न कोई पद मिल जाता है और वे शिक्षा में भ्रष्टता बढ़ाते रहते हैं। और तो और, ईश्वर भी उन्हें ऊपर जल्दी नहीं बुलाता क्योंकि वहां जाकर भी ऐसे लोग गड़बड़ी शुरू कर देंगे। अतः लेखक ने नटवरलाल जैसे लोगों से बचकर रहने और निरंतर अच्छे कर्म करते रहने पर बल दिया है ताकि बिदाई समारोह में झूठी के बजाय सच्ची प्रशंसा के पात्र बन सकें और समाज तथा देश के लिए सार्थक जीवन जी सके।

"मैं पीएच.डी. हो गया!" कहानी के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि आजकल उच्च शिक्षण संस्थानों में पीएच. डी. की उपाधि केवल और केवल प्रमोशन,व्यक्तिगत हित और आर्थिक हित हेतु की तथा करवाई जाती है। थीसिस जमा होने के एक–दो महीने में ही अवार्ड भी हो जाती है कुछ ले–देकर, जो कि सर्वथा अनुचित है। अब सरकार भी फर्जी पीएच.डी. धारकों के इंक्रीमेंट काटने या रोकने लगी है और ईमानदारी ,बिना राजनीति के की गई डिग्री धारकों को फायदे देने लगी है। इससे फर्जी डिग्री लेने और देने वाले दोनों ही डरे हुए हैं। " अंत में फौरन सरकार ने यह सूचना दी कि पीएच.डी. का स्तर सुधारा जाए। साथ– साथ यह भी निश्चित किया गया कि पीएच.डी. का विषय भारत के हर पहलुओं के विकास से संबंधित होना चाहिए। कुछ भी हो मगर पीएच.डी. करने वालों की खैर नहीं। तत्कालीन समय में तो अध्यापक मंडलों की स्थिति भी दो–दो इजाफे जैसी हो गई है। जो अध्यापक मंडल की बात मानकर आंदोलन पर उतरे थे– उन आंदोलनकारी अध्यापकों की बढ़ोतरी के स्केल सरकारी दफ्तरों में अटके हुए हैं और जो नहीं उतरे थे उनको फौरन स्केल दे दिया गया।"[4]

सरकारों के इस कठोर कदम के बाद निजी संस्थानों में भी ऐसे फर्जी डिग्रीधारकों को नौकरी में लेना बंद कर दिया है। शंकरलाल का प्राचार्य हेतु सलेक्शन ना होना इसी ओर संकेत करता है कि– "दुम हिली कुर्सी मिली,जीभ हिली कि जेल।"वास्तव में इस कहानी में लेखक ने व्यंग्य करते हुए उच्च शिक्षा की अच्छी खासी खबर ली है और सरकारी नीतियों का भी आइना दिखाया है ताकि उच्च डिग्री लेने वाले सतर्क रहें। "पीएच.डी. बनाम शोध एवं पद का द्वंद्व" में नीलम वाधवानी ने इस कहानी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है "मैं पीएच.डी. हो गया" कहानी में उच्च शिक्षा पर राजनीतिक प्रभाव, अध्यापकों की पीएच. डी. के प्रति सकारात्मक तथा नकारात्मक मानसिकता की प्रवृत्ति,भारत में होने वाले भ्रष्टाचार की स्थिति तथा अंत में ट्रस्ट द्वारा शिक्षा को बाजार बना देने की स्थिति का चित्रण किया गया है।"[5]

शिक्षा का उद्देश्य उत्तम और व्यावहारिक नागरिक तैयार करना होता है, जो स्वयं नैतिक–सांस्कृतिक मूल्यों के अन्वेषक और साधक हों ताकि वे अपने परिवार,समाज और देश को भी उसी दिशा में ले जा सकें। आज की शिक्षा इन सबको छोड़कर बाकी सब कुछ कर रही है, इसकी साक्षी उपर्युक्त चारों कहानियां हैं।

महानगरीय जीवन में किराए का मकान और विसंगतियां

भारत में बढ़ते शहरीकरण के साथ–साथ सरकारी और निजी कर्मचारियों के शहर में आवास की समस्या भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। "मकान किराए पर लेना और देना आज के यांत्रिक युग की एक बड़ी विकट समस्या है। इस लेन देन में हमें दो देशों के समझौते की याद आ जाती है। कारण, दोनों को पारिवारिक भावना से जीवन बिताना होता है। लेकिन क्या आज के युग में यह संभव है ? इंसान अपने जीवन में एक अच्छा–सा मकान चाहता है और अपने बच्चों को ठीक तरह से पढ़ाकर सेटल करना चाहता है। लेकिन कभी–कभी ख्वाहिशें हमेशा–हमेशा के लिए अधूरी रह जाती हैं। यही तो जीवन है। अगर सब कुछ हमारी इच्छानुसार हो, तो हम यहां थोड़े रहते, भगवान न बन जाते। जो भी हो, हमें जो मिलता है उसी से संतुष्ट होकर इंसान बने रहना चाहिए और ईश्वर ने जो हमें अनुपम जीवन दिया है,उसे आनंद के साथ जीना चाहिए।"[6]

जीवन के इस आदर्श को यथार्थ में धरती पर जीना दुष्कर स्वप्न प्रतीत होता है। बार–बार जीवन के कटु अनुभव से गुजरने वाले "मकान पुराण" के शंकरलाल इसके जीवंत उदाहरण हैं। नडियाद में सरकारी नौकरी करते हुए तीन साल में उनको पांच बार मकान बदलना पड़ा, मकान मालिक की शर्तों का कड़ाई से पालन करते रहने के बाद भी। आरोप लगाए कि आपके घर– परिवार के लोग बहुत आते हैं, बाहर का कोई भी घर में ना आने पाए,उनकी बीवी ने बच्चे को जन्म दिया और उसे घर जाना पड़ा तो नौकरानी ना रखो तथा रखो तो मकान मालिक के यहां भी सफाई करो, मुफ्त में। पड़ोसी से

कोई संबंध नहीं रखोगे, क्योंकि उनके साथ मकान मालिक की नहीं बनती है। फोन पर जोर शोर से बात ना करो, क्योंकि घर की शांति भंग होती है और पंड्या होकर घर लिया लेकिन तुम ब्राह्मण नहीं हो। ये तमाम आरोप आधुनिक शिक्षा–दीक्षा, तकनीकी विकास और समाज की अवधारणा में बदलाव के बावजूद किराएदारों पर लगाकर उन्हें मकान बदलवा दिया जाता है। उन्हें ऐसे किराएदार चाहिए जो दिनभर कार्यालय में काम करे, शाम को घर आए और खाना खाकर चुपचाप सो जाए। अंत में शंकरलाल के माध्यम से लेखक ने अपनी सोच को कटु सत्य के रूप में रखा है–" मित्र, उस मकान को खाली करना है। मैं मकान की झंझट से त्रस्त हो चुका हूँ। हे भगवान,मुझे निम्न जाति में क्यों जन्म दिया ?

भगवान को कोसते हुए वह किरीट को कहने लगा "मित्र, संसार के इस दुखी जीव को कोई अच्छा–सा मकान या प्लाट दिलवा दो। छोटा हो या बड़ा, मगर अब अपना मकान बनवाकर रहूंगा।"[7]

भाग्यवादी अवधारणा और चिकित्सा व्यवस्था

अति आधुनिकतावादी और विलासी जीवन शैली से आज समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न होने लगी है,जिनमें से दंपत्ति के बच्चे होना,ना होना और होना तो ऑपरेशन से ही होना, ये सब अवसाद देती हैं। आजकल के भगवान कलियुगी डाक्टर से सब बचना चाहते हैं लेकिन समय की आवश्यकता उन्हीं की शरण में ले जाती है। "कलियुग के भगवान" कहानी में शंकरलाल की पत्नी को बच्चा होने वाला है और वह चिंतित है कि किस डाक्टर के पास ले जाए ताकि धन के साथ जच्चा– बच्चा भी सुरक्षित रह सकें। अपने मित्र संजय से पूछने पर दोनों मित्रों की बातचीत में आज के भगवान की काली करतूतें झलकती हैं।

"संजय : अवश्य, किसी अच्छे डाक्टर को दिखाना चाहिए।

शंकर बोला : यार, तुम्हें मालूम तो है, आजकल के डॉक्टरों पर से सबका भरोसा उठने लगा है। वैसे, डॉक्टरी का पेशा नोबल माना जाता है, पर अब वह दिन ब दिन प्रोफेशनल होता जा रहा है। इस कारण आज के डॉक्टर जरूरी न हो तो भी चीर फाड़ करके अपनी झोली भरने के फिराक में रहते हैं।"[8]

दो साल पहले अपनी भाभी की जबरन की गई ओपरशन वाली डिलिवरी और पोपटलाल की पत्नी के ऑपरेशन के समय पेट में छूट गए रूमाल के बाद उसका दोबारा ऑपरेशन करवाने से शंकरलाल बहुत अचंभित और डरा हुआ है कि कहीं कलियुग के भगवान अपना घर भरने के चक्कर में उसकी पत्नी की डिलिवरी भी बिगाड़ ना दें। कहानी के अंत में वह अपनी बच्चे की महत्वांकाक्षा पर पश्चाताप करता हुआ निराशा महसूस करता है, तब "सहसा संजय के मुंह से निकल गया : मेरे इस महान देश का क्या होगा? वैसे भी इस देश को भगवान या कोई अलौकिक शक्ति चलाती है। हे भगवान! मेरे देशवासियों का पहले जैसे ख्याल रखते थे वैसे आज भी रखना और इस कलियुग के भगवानों से बचाकर रखना।"[9]

यह आदर्शवादी और भाग्यवादी भावना ही हम भारतीयों को असहनीय कष्ट सहने की क्षमता देती रही है, जो लेखक का आशावादी स्वर है।

विविध विमर्श और हाशिए का जीवन

डॉ. दिलीप मेहरा ने "दापा" और "सौदा" जैसी कहानियों में क्रमशः हमारे समाज के रूपाजीवा यानी थर्ड जेंडर और नारी के प्रति सामाजिक नजरिए को यथार्थ रूप में सार्थकता दी है। "दापा" कहानी समाज में थर्ड जेंडर की जलती जिंदगी के बीच उनके उस रूपाजीवा बनाने या बन जाने में भाग्यवादी अवधारणा को जोड़कर उनके द्वारा गरीबों को बेवजह परेशान करने,दापा न देने पर श्राप या धमकी देने से समाज में उनके प्रति पनपते रोष तथा क्षोभ को प्रकट करती है। तन्नाबाई अपनी साथियों के साथ जीतपुर जाती है और वहां राधा–शनाभाई के बेटे की शादी हो जाने की खुशी में पांच हजार दापा/सौगात मांगती है,जो देना उनकी हैसियत से बाहर है। लेखक ने ग्रामीण जीवन के संघर्ष को भी तन्नाबाई के तानों के बीच उभारने की हिम्मत दिखाई है।

"कितना लेकर आई है राधा?" तन्ना बोली।

"पांच सौ रुपए"

"सुनो, मैं तुझे पांच हजार देती हूं।" तन्ना अपने ब्लाउज में से कुछ रुपए निकालती है और राधा को देने का प्रयास करती है।" रख,तेरे काम आयेंगे। अगर देना

है तो पांच हजार से कम नहीं लूंगी,हां.."

राधा कहती है "मौसी हमारे पास इतना तो नहीं,जितने थे वह सब पैसे शादी में खर्च हो गए हैं। मौसी तुम तो जानती हो भैंस के दूध और खेती पर घर चलता है। दूसरी तो कोई आय है नहीं।"

तन्ना कहती है "सुना है शादी में बहू को तो बहुत गहने दिए हैं और हमारे आशीर्वाद और दापे की बारी आती है, तब सब पैसा खत्म हो जाता है। वाह री राधा, वाह।"[10]

लेखक ने तन्ना के कथन में उनके भाग्य, कर्म और जीवन की दुरुहता को भी रेखांकित किया है कि वे चाहकर भी कोई काम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि ईश्वर ने उनको बनाया ही मांगकर खाने के लिए है। "तन्ना मौसी बोली–'हम तुम्हारे जैसे थोड़ी है,हमें भगवान ने हिजड़ा न बनाया होता तो हमने भी शादी बनाकर घर बसाया होता। हमारे भी बच्चे होते और हम भी आप की ही तरह सामान्य जिंदगी जीते। पर भगवान ने हमें आपको आशीर्वाद देने के लिए ही पैदा किया है। हमें भी जीना होता है और जीने के लिए पैसा तो चाहिए। हम कहां जाए कमाने? इसलिए आशीर्वाद देने आते हैं। वह भी शादी या बच्चे के जन्म के समय। रोज रोज थोड़े ना आते हैं।"[11]

केशव के घर दापा लेने जाना तन्नावाई को महंगा पड़ता है। ग्यारह हजार दापा मांगने और लेने में बड़ी बहस और गाली–गलौज के बाद तन्नाबाई नंगी होने की धमकी देती है तो "केशव गुस्से में कहने लगा 'तुम्हें जो करना है सो करो,नंगी हो जाना हो तो नंगी हो जाओ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता और रही शाप की बात तो ले,में अपना सर तेरे सामने धरता हूं जितना देना हो उतना शाप दे..दे। ऐसा शाप दे कि मैं अभी का अभी मर जाऊं।"[12] लेखक ने यहां केशव के कथन में उसकी मजबूरी तो उभारी ही है, साथ ही गांव के लोगों में बैठे हिजड़ा के प्रति पाप–पुण्य, शाप जैसी भाग्यवाद की ध ारणा को भी तोड़ने की सार्थक कोशिश की है। अगर तन्नाबाई के शाप से केशव नहीं मरा तो तन्नाबाई की दादागिरी का यह धंधा चौपट हो जाएगा। लेखक ने शराबी और शराब के दुष्प्रभाव को भी रेखांकित करने की कोशिश की है कि नशायुक्त व्यक्ति किसी के लिए उचित– अनुचित नहीं सोचता है,उसकी सोच समाज में विनाश लेकर आती है।

स्त्री–मन को समझे बिना आज भी समाज में उसका दैहिक और मानसिक शोषण निरंतर जारी है । हमारे समाज में अनेक सकारात्मक बदलाव आए हैं लेकिन स्त्री के प्रति भोगवादी नजरिया आज भी यथावत कायम है। आज भी घर–परिवारों में पिता या भाई ही उसके विवाह का निश्चय करते हैं। कहीं–कहीं गांवों में तो बचपन से लेकर जवान होने तक लड़की को उसके माता–पिता और भाई गरीबी एवं आजीविका की आड़ में रुपए– पैसे लेकर बेच देते हैं ,चाहे लड़का योग्य है कि नहीं। उसका "सौदा" करने के बाद भी कभी–कभी उसे ससुराल से जबरन वापस ले आते हैं और दूसरी जगह से रुपए लेकर उसे फिर बेंचु दिया जाता है। डा. दिलीप मेहरा ने "सौदा" में यही दिखाया है कि पोपटलाल की पत्नी जसोदा की मृत्यु के बाद वह बेटे नटु की जिंदगी में शांता को सौदा करके लाता है और बेटे की शारीरिक अक्षमता की आड़ में स्वयं उसका भोग करने लगता है। हमारे समाज का कटु सत्य लेखक ने उजागर करते हुए लिखा है– "अब मामला आया शांता के सौदे का। उसको पालने वाले भाई ने सौदेबाजी कर कीमत तय करना प्रारंभ किया। उन्होंने एक लाख रुपए से बात प्रारंभ की। पोपटलाल ने 50000 देने की बात की। माधवी का समधी नसवाड़ी, सूरत आदि जगहों से आदिवासी लड़कियां लाकर बेचता था। उसने तुरंत कमान संभालते हुए पोपटलाल से कहा– 'तुम्हारे लड़के को कौन लड़की पसंद करेगी? और कौन मूर्ख बाप होगा,जो अपनी लड़की का ब्याह तुम्हारे लड़के से करने के लिए तैयार होगा? तुम्हारा नटु कर भी क्या सकता है? जो खुद ठीक से खड़ा नहीं रह पाता उसे कोई क्या लड़की देगा? यह समझ लो कि इस लड़की को जो भी प्यार व्यार देना होगा या शारीरिक सुख देना होगा,वह तो तुम्हें ही देना होगा। समझ लो कि शांता तुम्हारे लड़के की आड़ में तुम्हारे साथ ही रहेगी और साथ में दो जून की रोटी भी तुम्हें समय पर मिल जाएगी। और क्या चाहिए तुम्हें? समझे...।"[13]

आज भी हमारे समाज के अनेक परिवारों में यह गुप्त क्रिया व्यापार चल रहा है और घुटकर मरती नारी–मन की व्यथा अनसुनी ही रह जाती है। सभ्य और शिक्षित कहलाने वाले समाज के लिए यह न्यायोचित है।

इस पर सोचने की आवश्यकता है, क्योंकि अंततोगत्वा 70000 के बदले शांता की शादी नटु से करवा दी जाती है, जो कि यह उसकी तीसरी शादी है सौदेबाजी में। शादी के बाद गांव की औरतें जो वार्तालाप करती हैं, वह स्त्री के प्रति सामाजिक नजरिए की पोल खोलकर रख देता है।

"शादी में गांव की औरतें कानाफूसी करने लगीं। भूरी ने सविता से कहा" पोपटलाल को सत्तावन वर्ष की उम्र में अच्छी लड़की मिल गई। लड़के की आड़ में खूब रंगरेलियां मनाएगा।"

सविता ने कहा "हां, देखो न, मजा लेने के लिए चट मंगनी पट ब्याह कर दिया।"

भूरी बोली "लड़की देखने में ठीक है,पर शरीर तो अच्छा हट्टाकट्टा है। कुछ वर्ष तक तो बेटे की शादी के आड़ में शारीरिक सुख तो भोगेगा ही।"[14]

सामाजिक विकास,शिक्षा,समानता और नारी–विकास आदि की पोल खोलने के लिए सविता और भूरी का यह संवाद कथन पर्याप्त है।

निष्कर्ष : सच में आजादी के पश्चात् तकनीकी क्रांति और शिक्षा का आधुनिकीकरण और उसमें व्यवसाय का तड़का लगाना काफी हद तक हमें विश्व–फलक पर आर्थिक और आधुनिक दृष्टि से आगे ले गया। किंतु शिक्षा के नाम पर धड़ल्ले से चल रहे आर्थिक व्यापार को केंद्र और राज्य सरकार बंद नहीं कर पाई है। इनमें शिक्षा के नाम पर जो तानाशाही, लूटपाट, दबंगई, दादागिरी, गुंडागर्दी और भ्रष्टाचार पनपा, उसे रोक पाना समाज और प्रशासन दोनों के लिए चुनौतीपूर्ण है और इसे रोके बिना समाज तथा देश का सर्वांगीण विकास कोरी कल्पना है। शिक्षा का अधिकार आने के बाद भी सभी को शिक्षा नहीं मिल पाना कहीं ना कहीं राजनीति और प्रशासन के साथ समाज की सोच को कटघरे में खड़ा करती है। हमारी चिकित्सा व्यवस्था भी आज एक व्यापार बनाकर रह गई है,जिसमे अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु डाक्टर किसी भी हद तक गिरने को तैयार हो जाते हैं। जो धरतीवासियों के लिए भगवान है, वही जान के दुश्मन बन जाते हैं। कोरोना महामारी के दौरान चिकित्सकों की स्वार्थी और समाज–देश विरोधी सोच हमने देखी तथा झेली है। समाज में हाशिए के लोग स्त्री– जीवन और रूपाजीवी के प्रति संवेदना और संविधान का दायरा बड़ा एवं बढ़ा है। किंतु नारी का शोषण लगातार जारी है। वह अलग–अलग स्तर पर अलग–अलग तरीके से शोषित है। मानवाधिकार भी कुछ नहीं कर पा रहे हैं। लेखक ने रूपाजीवी समाज के हिजड़ा वर्ग को भी 'दापा' कहानी में शिद्दत से उभारा है। अधिकार को जबरन अधिकार बनाना तन्ना बाई के माध्यम से दिखाया गया है। उनके प्रति समाज की कभी–कभी संवेदनहीनता उनके व्यवहार के कारण देखने को मिलती है, यह सत्य है।

कुल मिलाकर डॉ. दिलीप मेहरा की कहानियां समकालीन जिंदगी के विविध दर्शन अंतरंगी और बहिरंगी रूप में करवाती हैं जिसमें सुधार की जरूरत है। यह जिम्मेदारी हमारे समाज की पहले है और राजनीति, सरकार, प्रशासन की सहयोग के रूप में संविधान के दायरे में बाद में। ये कहानियां हमें हमारी जिंदगी का कटु आईना दिखाती हैं, जिसमें तन उजले हैं और मन मैले हैं।

संदर्भ

1. मकान पुराण, पृष्ठ 42–43
2. वही, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 27
4. वही, पृष्ठ 15
5. वही, पृष्ठ 67
6. वही, पृष्ठ 20
7. वही, पृष्ठ 23
8. वही, पृष्ठ 24
9. वही, पृष्ठ 26
10. वही, पृष्ठ 39
11. वही, पृष्ठ 39–40
12. वही, पृष्ठ 31–32
13. वही, पृष्ठ 32
14. वही, पृष्ठ 34

सहायक आचार्य – विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग
स्नातकोत्तर राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सेक्टर–11, चंडीगढ़
मोबाइल 9016142497
ई मेल : dr.mohanlaljat@gmail.com

13

हिन्दी काव्य : ऐतिहासिकता की दृष्टि से

❖ डॉ. मीनाक्षी एन. जानी

'साहित्य समाज का दर्पण है।' यह उक्ति सर्व–विदित है। क्योंकि साहित्य के बिना समाज का और समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व संभव नहीं है। इसी प्रकार इतिहास को दृष्टि समक्ष रखकर सोचें तो कहा जा सकता है कि इतिहास और साहित्य का संबंध भी अन्योन्याश्रित है। एक के बिना दूसरे का निर्माण नहीं हो सकता।

साहित्य की अधिकांश रचनाओं का मूल आधार इतिहास ही है। क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं को केन्द्र में रखते हुए असंख्य रचनाएँ की गई हैं। हिन्दी साहित्य में तो इतिहास यत्र–तत्र–सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। भारत के गौरवशाली इतिहास का वर्णन वैसे तो हिन्दी साहित्य की कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि कई विधाओं में पाया जाता है, लेकिन काव्य विधा ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर भक्तिकाल और रीतिकाल से गुजरते हुए वर्तमान के आधुनिक काल की रचनाओं का जब हम अवलोकन करते हैं तो भारत का इतिहास अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ हमारी दृष्टि के समक्ष आता है। अंग्रेजों के समय में भारत की दुर्दशा से हिन्दी साहित्यकार बहुत दुःखी थे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से भारत देश का नवनिर्माण तथा देशाभिमान जगाने के लिए अथक प्रयास किया था।

यहाँ पर आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के हिन्दी काव्यों में इतिहास का चित्रण किन संदर्भों में हुआ है उसकी चर्चा की गई है।

हिन्दी के प्रथम महाकवि 'चन्दबरदाई' ने आदिकाल में 'पृथ्वीराज रासो' नामक प्रथम महाकाव्य लिखा। इसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) द्वारा सं. १६६२ में हुआ। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान की यशोगाथा का वर्णन उसमें किया गया है। यह महाकाव्य ६६ अध्यायों में विभक्त है तथा इसके पृष्ठों की संख्या ढाई हजार है। पृथ्वीराज चौहान की शूरवीरता, विवाह, आखेट कला आदि का विस्तृत वर्णन इसमें पाया जाता है।

इसी समय विद्यापति ने कीर्ति सिंह नामक राजा के आश्रय में रहने के दौरान 'कीर्तिलता' नामक ग्रंथ लिखा, जो इतिहास की दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान आज भी बनाए हुए हैं। 'मैथिल कोकिल' के उपनाम से विद्यापति आज भी साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस काल में ईश्वर की भक्ति विषयक रचनाएँ अधिकतर लिखी गईं। इस काल के प्रमुख कवियों में गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। संत कवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' ग्रंथ का महत्व आज भी उतना ही है, जितना उस समय था जब इसकी रचना हुई थी। आत्मा का परमात्मा से मिलन संबंधी ग्रंथ 'पद्मावत' के रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी हैं, इसमें कवि ने राजा रत्नसेन, रानी नागमती और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती की कथा को स्थान दिया है। साथ ही उन्हीं के द्वारा रचित 'आखिरी कलाम' रचना में बाबर की प्रशंसा के साथ कयामत का वर्णन भी है।

रीतिकाल के प्रमुख कवियों में बिहारी और भूषण अतिप्रसिद्ध हैं। जयपुर के तत्कालीन नरेश राजा जयसिंह के दरबारी कवि बिहारी ने उनकी प्रशंसा में ७०० दोहे लिखे। उनके दोहे के विषय में यह विश्व प्रसिद्ध पंक्ति देखने योग्य है–

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करें गंभीर।।"[1]

रीतिकाल के मुगल साम्राज्य पर औरंगजेब के राज्य के समय हिंदुओं के प्रति कठोर नीति के विरोध में मुगलों और शिवाजी महाराज में हमेशा युद्ध हुआ करता

था। शिवाजी महाराज सभी जाति, धर्म के लोगों के प्रति एक समान दृष्टि रखते थे। वीर रस के कवि भूषण ने शिवाजी महाराज की और राजा छत्रसाल की प्रशंसा अपने काव्यों के द्वारा की है। 'शिवा बावनी' और 'शिवराज भूषण' दो ग्रंथों में भूषण ने श्री छत्रपति शिवाजी महाराज की शूरवीरता, समर्पण भाव एवं त्याग भावना का निरूपण किया है। 'शिवा बावनी' का यह उदाहरण दृष्टव्य है –

"देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे सब रोग सबी गए लब की।
पीरा पथ गंवारा, दिगंबर दिखाई देत,
सिंध की सिधाई गई रही बात तब की।
कासिह में कला जाती मथुरा मसीद होती,
शिवाजी न होते तो सुन्नति होती सबकी।"[२]

आधुनिक काल के कवियों में अधिकतर राष्ट्रीयता की भावना और देशप्रेम परिलक्षित होता है। साथ ही राम, कृष्ण, रामायण, महाभारत की कथा को केन्द्र में रखकर असंख्य रचनाएँ कवियों ने की हैं। ऐसा ही रामकथा पर आधारित महाकाव्य 'साकेत' आधुनिककाल के श्रेष्ठ महाकाव्यों में शीर्ष स्थान पर है। उसकी महत्ता को प्रदर्शित करते हुए लिखा गया है कि– " 'साकेत' महाकाव्य राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त रचित है, जो रामभक्त कवि माने जाते हैं। उन्होंने तुलसीदास के रामचारितमानस में जो राम का रूप था सर्वशक्तिमान, भगवान, मर्यादा–पुरुषोत्तम एवं सर्वेसर्वा उन्हें बताया है। उसके सामने गुप्त जी ने अपनी श्रेष्ठ रचना 'साकेत' में राम को कलयुग के महामानव बताते हुए कुछ नवीन पहलुओं को सामने रखा है। 'रामचरितमानस' में जिन पात्रों की चर्चा नहीं की गयी थी, जिन्हें नहीं दिखाया गया था, उन्हें गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से सामने रखा है।"[३]

वहीं दूसरी ओर 'रामचरितमानस' ग्रंथ की बात करें तो यह ग्रंथ समाज में एक आदर्श प्रस्तुत करता है। आज धार्मिक भावना लोगों को जीवन की उल्टी दिशा में खींच रही है। धर्म के नाम पर कई बखेड़े खड़े किये जा रहे हैं, तब धर्म का आदर्श क्या होना चाहिए यह सीख हमें 'रामचरितमानस' द्वारा गोस्वामी तुलसीदास देते हैं। आज जब चारों ओर छल–कपट, ईर्ष्या–द्रेष, स्वार्थी प्रवृति, गलाकाट प्रतिस्पर्धा, काम–वासना, मोह–माया धन के प्रति आसक्ति जैसा माहौल बढ़ रहा है तब तुलनीदास के रामचरितमानस की जो उपादेयता है, उसे इन शब्दों में देखा जा सकता है– ''गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यन्त्र दुर्लभ है। उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिन्दू भक्त अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होता है, महत्व पर श्रद्धा करता है, शील की ओर प्रवृत्त होता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है, कठिन कर्म में उत्साहित होता है। दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलंबन करता है और मानवजीवन के महत्व का अनुभव करता है।"[४]

भारत देश को अंग्रेजी सत्ता से मुक्त करवाने में हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है। उदन्त मार्तंड, बंगदूत, प्रजामित्र, समाचार सुधावर्षण, कविवचन सुधा, हिन्दी प्रदीप, आनंद कादंबिनी, ब्राह्मण, केसरी, भारत मित्र आदि पत्र पत्रिकाएँ उसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पत्र–पत्रिकाओं के जरिए कई प्रसिद्ध कवियों ने भारत देश को गुलामी से मुक्त करवा के स्वतंत्रता का आह्वान किया था। इसी श्रेणी में सन् १९०० में इलाहाबाद से मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का आविर्भाव हिन्दी भाषा और साहित्य में एक आविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। सन् १९०३ में काशी के संपादन में निकलनेवाली इस पत्रिका के संपादक के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी सामने आए; जिनके संपादन में इस पत्रिका ने सफलता के कई शिखर सर किये।

स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पत्रिका के जरिये भारतभूमि का मातृभूमि के रूप में दैवीकरण किया है। वे सारे देश को एक घर और सारी प्रजा को एक परिवार मानते थे। जनता में आजादी की प्रेरणा जगानेवाली कई कविताओं को इस पत्रिका में लगातार स्थान मिलता रहा है। जून १९०३ के अंक में छपी एक कविता उदाहरण के रूप में दृष्टव्य है –

''वंदौ भारत भूमि महतारी
शेष अस्थि पंजर बस केवल भय युत चकित बेचारी
रोग अकाल दुकाल सताई, जरिन देह दुखारी
धूलि धूसरित जाकी झलके अलके स्वेत उघारी
अंचल फट, लटे तन गढ़ी, सुधि, बुद्धि सकल बिसारी।"[५]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का नाम सदैव अमर रहेगा, क्योंकि उनका संपूर्ण काव्य राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया का संवाहक है। उनकी कविताओं में स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत

की सज़ीव स्थिति का शब्दशः वर्णन मिलता है। भारत के इतिहास, भूगोल, समुद्र, नदी–पर्वत, वृक्ष–जीवों आदि सभी से दिनकर को असीम प्रेम है वही प्रेम उनकी कविताओं का वर्ण्य विषय बनकर प्रस्तुत हुआ है। हिमालय पर्वत की प्रशंसा से युक्त ये काव्य की पंक्तियाँ उलेखनीय हैं–

"मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
मेरी जननी के हिम–किरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!"[६]

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में कविता विधा अपने अलग–अलग रूपों और वर्ण्य विषयों के साथ सामने आयी है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल १६०० से लेकर आज तक का माना गया हैं, जिसमें अधिकतर भारत की गुलामी और स्वतंत्रता को लेकर काव्य लिखा गया है। उपर्युक्त संपूर्ण विवरण को दृष्टि समक्ष रखते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल की काव्य रचनाओं का अपना अलग ही महत्व है। आदिकालीन काव्य वीररस से ओतप्रोत है। भक्तिकाल में भक्ति संबंधी रचनाओं की अधिकता मिलती है। रीतिकाल में आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा तथा उनकी शूरवीरता की गाथा कवियों द्वारा प्रस्तुत हुई है। जबकि आधुनिक काल की कविताओं में भारत भूमि की प्रत्येक विशेषताओं को कवियों द्वारा पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन चारों कालों की कविताओं और कवियों का जो स्थान है वो अमिट है और प्रत्येक काल के पाठकों के लिए वह प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

संदर्भ

१. हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृतियाँ, डॉ. नामदेव उतकर, पृ.१२३
२. शिवा बावनी– समीक्षा ग्रंथ, प्रो. सतीश कुमार, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सं.२००२
३. हिन्दी साहित्य : चिन्तन की दृष्टि से, संपादक – डॉ. संगीता चौहान, पृ.१६४
४. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.०३
५. सरस्वती (मासिक पत्रिका) संपादक – महावीर प्रसाद द्विवेदी, जून – १६०३
६. हिमालय कविता, 'रेणुका' काव्यसंग्रह, रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ.०४

संपर्क सूत्र : आसिस्टन्ट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
एन.एस. पटेल आर्ट्स कॉलेज (ओटोनोमस),
आणंद, गुजरात

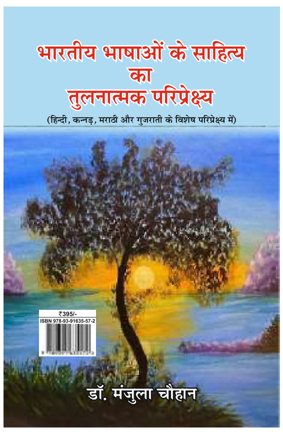

14

मनोहर श्याम जोशी के कथा साहित्य में भाषागत वैशिष्ट्य

❖ सतीश ए. भोये

भाषा संप्रेक्षण का सशक्त माध्यम है। प्रत्येक रचना की सफलता का आधार उसकी भाषा होती है। हिंदी उपन्यासों की भाषा हर समय विकसित होती रही है। हर युग के रचनाकारों ने भाषा से सर्जनात्मक काम लिया है। इसीलिए प्रेमचंद की भाषा से अज्ञेय की भाषा अलग है और अज्ञेय की भाषा से रेणु की। वर्तमान युग में तो उपन्यासकार के लिये भाषा मात्र साधन नहीं रही बल्कि साध्य बनी है। उपन्यासकार की भाषा सजगता ने उपन्यास को भाषा के स्तर पर वैविध्य प्रदान किया है। हिंदी उपन्यास के परिदृश्य में नया कथा मुहावरा, किस्सागोई का विशिष्ट शिल्प–विधान और भाषागत कौशल का चरम उत्कर्ष लेकर सन् 1980 में उपस्थित होने वाले मनोहर श्याम जोशी का भाषा वैशिष्ट्य विशेष अध्ययन की मांग करता है। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यासों में भाषा का सर्जनात्मक विनियोग किया है। भाषा के विविध रूपों के सार्थक प्रयोग से वे इसी तरह चौंकाते हैं। वागीश शुक्ल ने लिखा है– "भाषा पर मनोहर श्याम जोशी का अद्भुत अधिकार है। एक बात तो यही है कि मेरी जानकारी में रेणु के अलावा हिंदी का कोई और लेखक नहीं हैं जिसने हिंदी के वाचिक स्वरूप का इतना सार्थक उपयोग किया हो जितना जोशी ने किया है।"[1] विशिष्टता यह है कि उनके उपन्यासों में कुमाऊँ जीवन का व्यापक चित्रण होने के बावजूद भाषा उस अर्थ में आँचलिक नहीं है जैसे रेणु के उपन्यासों में देखने को मिलती है। मनोहर श्याम जोशी हिंदी उपन्यास में एक नितान्त नया भाषा कौशल लेकर उपस्थित हुए हैं।

भाषा का स्वरूप

मनोहर श्याम जोशी की भाषा बहुआयामी है। उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में अलग–अलग तंत्र का उपयोग किया और रचना की है। उनके उपन्यासों में उत्तर भारत की लगभग सभी बोलियों के शब्दों का प्रयोग मिलता है। लेखक ने गुजराती, हिंदी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं के साथ–साथ भोजपुरी, अवधी, कुमाऊँनी, हरियाणवी आदि बोलियों के स्थानीय रूपों का भी प्रयोग किया है।

मनोहर श्याम जोशी के कथा–साहित्य में भाषा प्रांतीय भाषा के बाहर निकलकर अधिकांश भारतीय भाषा को स्पर्श करती है। भाषा में गतिशीलता और सजीवता पैदा करने के लिए अंग्रेजी के साथ–साथ उर्दू, बांग्ला, गुजराती, भोजपुरी शब्दप्रयोग किया गया है। हिंदी की आंचलिक बोलियाँ कुमाऊँनी और काशिका के ध्वन्यात्मक प्रवृत्तियों का सटीक प्रयोग किया गया है। हिंदी आंचलिक बोलियों के खड़ी बोली मिश्रित रूप मिलते हैं। मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार का प्रयोग भी जोशीजी की भाषा की विशेषता है।

कथा–साहित्य में भाषा का वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का। साहित्यकार समयानुसार भाषा का चयन करता है। साहित्यिक भाषा के ऐतिहासिक विकासक्रम में विभिन्न प्रकार के प्रतिमान बनते बिगड़ते रहे हैं। युग चेतना के अनुरूप इनमें परिवर्तन होता रहा है। इस संदर्भ में रामकुमार वर्मा के विचार दृष्टव्य हैं– "भाषा को बनाने में, बदलने में और विकसित करने में युग की विचारधारा, भावचेतना और संवेदना की सक्रिय भूमिका होती है।"[2]

हम देखते हैं इतिहास में तो आधुनिक साहित्य भाषा में विगत सौ वर्षों में पाँच बड़े परिवर्तन हुए हैं। प्रथम जब काव्यभाषा ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग। द्वितीय छायावाद के युग में संस्कृत गर्भित बनी। तृतीय प्रयोगवाद के समय में जब कथ्य और शिल्प दोनों में नए नए प्रयोग किए गए। चतुर्थ साठोत्तरी कवियों और साहित्यकारों ने सपाटबयानी को प्रमुखता दी।

पाँचवा सन् 80 के बाद आधुनिक युग में मोहभंग से साहित्य में आया बदलाव। हिंदी साहित्य में अज्ञेय और नागर के बाद जोशीजी ही एकमात्र साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्यिक भाषा का बोलियों भाषा का प्रचलित प्राहीद शब्दों से संबंध किया है। जोशीजी की भाषा में व्यंग्य प्रयोग और आक्रमण है। उन्होंने अपने साहित्य में भाषा का प्रयोग उसी प्रकार किया है, जिस प्रकार युद्ध में अस्त्र और शस्त्रों का होता है। जोशी जी ने उत्तर आधुनिकता के साहित्य को एक नई भाषा प्रदान की है। उन्होंने पूर्व प्रचलित भाषा को अस्वीकार करते हुए साहित्य के लिए नयी भाषा निर्मित की। जोशी जी की साहित्यिक भाषा जन साधारण की भाषा के निकट है। उन्होंने साहित्य को परंपरागत भाषा से मुक्त कर दिया।

जोशीजी ने साहित्यिक भाषा में नवीन शब्द प्रयोग करके। परवर्ती साहित्यकारों के लिये एक नई दिशा दी है। उनके साहित्य का आकर्षण उनकी भाषा तथा शब्द प्रयोग ही है। वाक्य रचना, शब्द प्रयोग और संदर्भानुकूल अभिव्यक्ति जोशी जी की विशेषता है। उनके साहित्य में समकालीन बोध है। यही कारण है कि वे भाषा व शब्दों के माध्यम से व्यक्ति, समाज और राजनीति की सही पहचान कर देने में व्यक्त करने में समर्थ हुए। अपने कथ्य को कभी वक्तव्यों, कभी उक्तियों और कभी सपाट लहज़े में व्यक्त करने में वे अन्य साहित्यकारों से आगे हैं। अपने कथ्य व विचारों के प्रति जागरूक रहे।

जोशी जी ने साहित्य को सार्थक बनाने के लिए अपनी भाषा में व्यंग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, वाक्य और शब्दों के साहसिक प्रयोग किया, अभिव्यंजना की दृष्टि से सक्षम हैं। जोशी जी के साहित्य में संवेदना और परिवेश का जो गहरा गठबंधन दिखाई देता है वह भाषा के स्तर पर भी देखा जा सकता है। उन्होंने शब्द वाक्यों के नए संदर्भ में प्रयोग करके विसंगति बोध को संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। कथ्य और शिल्प के कारण ही अलग पहचान बनी है। भाषा तथा शब्दों की दृष्टि से ये संपन्न हैं। हिंदी के साथ–साथ उत्तर भारत की कई भाषाएं और बोलियों से वे परिचित हैं। उन भाषाओं और बोलियों का प्रयोग उन्होंने अपने साहित्य में किया है।

जोशी जी ने अपने साहित्य में प्रेम समस्या, विवाह समस्या, गरीबी, बेरोजगारी, अभावग्रस्त जीवन, नारी जीवन, भ्रष्टाचार आदि को सजीव रूप से प्रस्तुत किया है। गरीबी का वास्तविक चित्रण उनकी साहित्यिक भाषा से दिखाई देता है। गरीबी की दाहकता को दिखाते हुए वे 'कसप' उपन्यास में कहते हैं– "तीन दिन लगातार भूखे रहकर मेरा बुरा हाल हो गया। मैं पैदल चार मील चलकर– बिन्देश्वरप्रसाद जी के कोठी में पहुंचा। सुबह सुबह मेरी किस्मत उन लोगों का उपवास थीं। मैं खेतों में चला गया। लोभिया लगी हुई थी। मैं खेत के बीच में छिपकर खाने लगा फलियाँ। पास में एक मरियल–सी गाय भी यही काम कर रही थी।"[3]

गरीबी के साथ साथ जोशी जी ने अभावग्रस्त जीवन पर मर्मस्पर्शी साहित्य लिखकर भाषाई जादूगरी की है। 'क्याप' उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है–"राजनीति में महात्मा गाँधी के चरण पकड़कर बैठे रहे लेकिन अर्थनीति में हम लोगों की खातिर उन्होंने अपने मन मंदिर में मार्क्स की मूर्ति भी प्रतिष्ठित रहने दी।"[4]

जोशी के साहित्य में गाँव और शहरी जीवन का चित्रण, वहाँ की भाषा, आंचलिकता, प्रांतीय शब्द, मुहावरें और प्रयोगात्मक शैली परिलक्षित होती है। उदाहरण देखिए–"काला आदमी आज भी गोया के जमीन पर हग रहा है। करोड़ों की तादाद में और आप जैसे इसी को रो रहे हैं कि टाइल्ड बाथरूम नसीब नहीं हुआ कुछ तो कहिए कॉमरेड। सुलभतम शौचालयों के इस देश में सुलभ शौचालय बनाने की क्रांति।"[5]

साथ में जोशी के साहित्य में गाँव और शहरी जीवन का चित्रण, वहाँ की भाषा आँचलिकता, प्रांतीय शब्द, मुहावरे और प्रयोगात्मक शैली परिलक्षित होती है। ग्रामीण और शहरी भाषा और साहित्य में सूक्ष्मता है। इन्हीं सूक्ष्मता और बदलाव की तुलना करते हुए अंग्रेजी का भूत किस प्रकार भारतीयों के सिर पर चढ़कर बैठा है इस स्थिति को दिखाते हुए लेखक 'क्याप' उपन्यास में कहते हैं– "अपनी कॉन्वेंटिया बिरादरी के अन्य लेखकों की तरह वह लिखता भले ही हिंदी में हो पर सोचता अंग्रेजी में है। निश्चय ही उनके मन में कहानी के लिए शीर्षक उभरा होगा। 'अ डैडली डुण्ट'। अगर कचिमना कुमाँचली को वह अंग्रेजी शीर्षक लुभा रहा था तो मुझसे सलाह करता,में उसी टक्कर का हिंदी शीर्षक सुझा देता–'समपर दम'।"[6]

जोशी जी के उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है, तो ग्रामीण भाषा में बोलियों के अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग मिलता है। 'हरिया हरक्युलीज

की हैरानी में ग्रामीण पात्रों की भाषा इस प्रकार है–"सुशीला से बड़े दिनों से भेंट नहीं हो रही थी उनकी। सुशीला के ससुर को कैंसर बता दिया है बल।"[7] ग्रामीण और देहाती बोली के शब्दों का प्रयोग जोशी जी की और एक विशेषता रही है। गीरवाण दत्त हरिया को कहते हैं– "इत्ता दर्द रहता है इस आँख में सिर में कि अब मैं बताऊँ लला।"[8]

हम देखते हैं कि जोशी जी के उपन्यासों एवं कहानियों में बंबईया हिंदी का प्रयोग भी मिलता है। वेश्या व्यवसाय करने वाली लड़कियाँ, वहाँ का माहौल, दलालों की भाषा का सूक्ष्म चित्रण 'कुरु–कुरु स्वाहा' उपन्यास में मिलता है। "प्रार्थना समाज में बिल्कुल नवा छोकरी। सेठ! अब्बी किसका साथ बैठा नहीं। उसकु रुपया की जरूरत। दिन का टैम ही आयेंगा। पचास रुपया लेंगा। बोलों होने का?"[9]

जोशी जी के साहित्य में भारत की अन्य भाषाओं का भी प्रयोग मिलता है। जैसे बांग्ला भाषा का प्रयोग भी हुआ है। उदाहरण देखिए 'कौन हूँ मैं' उपन्यास का– "धायरे नाम छिला आलोक।"[10] एक और उदाहरण देखिए–"ता तो अखोनी बोलते पारबे ना।"[11]

अतः जोशी जी के कथा साहित्य में मराठी, बांग्ला, गुजराती, बम्बईया, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू, हरियाणवी, भोजपुरी, कुमाऊंनी, खड़ी बोली, संस्कृत के कई शब्द मिलते हैं। अरबी, फारसी का हिंदी रूप विशेष सूक्ष्मता से दिया गया है। जोशीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका भारतीय भाषाओं के साथ विदेशी भाषा पर भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने अंग्रेजी के शब्द ही नहीं वाक्यों को भी हिंदी रूप में प्रस्तुत किया है जैसे–"ए गुड लाइफ इन गुड फॉर हेल्थ।"[12]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनोहर श्याम जोशी ने हिंदी कहानी एवं उपन्यास की भाषा को बहुआयामी बनाया है। अपने उपन्यासों में उन्होंने विविध भाषा प्रयोगों के जरिए एक नया भाषायी चमत्कार खड़ा किया है। उत्तर भारत की लगभग सभी भाषाओं के प्रयोग के साथ अंग्रेजी जैसी पाश्चात्य भाषा का भी प्रयोग हुआ है। साहित्य को सार्थक बनाने के लिए व्यंग्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, बिम्बों का प्रयोग, शब्द और वाक्यों के नए संदर्भ को संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। भाषा को एक सशक्त औजार की तरह इस्तेमाल करते हुए अलग–अलग भाषा रूपों के जितने तेवर उन्होंने दिखाये हैं, वे हिंदी कथा–साहित्य की भाषा के अध्ययन को नयी दिशा देने वाले हैं।

संदर्भ

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास , डॉ. नामवर सिंह (संपादक) पृ.91
2. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.460
3. कसप, मनोहर श्याम जोशी,पृ.41
4. क्याप, मनोहर श्याम जोशी, पृ.49
5. कुरु–कुरु स्वाहा, मनोहर श्याम जोशी ,पृ.114–115
6. क्याप, मनोहर श्याम जोशी, पृ.10
7. हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, मनोहर श्याम जोशी. पृ.19
8. वही.पृ.20
9. कुरु–कुरु स्वाहा, मनोहर श्याम जोशी.पृ.5–6
10. कौन हूँ मैं ,मनोहर श्याम जोशी.पृ.205
11. वही.पृ.242
12. कसप,मनोहर श्यम जोशी .पृ.293

पीएच.डी. शोधछात्र
आनंद आट्र्स कॉलेज आनंद
पी.जी.डिपार्टमेन्ट ऑफ़ हिन्दी वल्लभ विद्यानगर

15

मनुस्मुति में वर्णित संस्कार

❖ चौधरी निधिबेन भिखाबाई

संस्कारों का उद्देश्य

संस्कार शब्द प्राची न वैदिक साहित्य में नहीं मिलता किन्तु सम' के साथ कृ' धातु 'संस्कृत' शब्द बहुध ाा मिल जाते है। ऋग्वेद में 'संस्कृत तथा 'रणाय संस्कृ तः' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। शतपथ ब्राह्मणमण में आया है कि ''स इद देवेम्यो हवि संस्कुर साधु संस्कृत संस्कृर्विये वैतदाह ।

तन्त्रशर्तिक के अनुसार

''योग्यता चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युचान्ते''

अर्थात संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती है। मनु के अनुसार–द्विजातियों में माता–पिता के वीर्य एवं गर्भाशय के दोषों को चोल से तथा मूँज की मेखला पहनने से दूर किया जाता है। वेदाध्ययन, व्रत होम, त्रैविध–पूजा सन्तानोत्पत्ति पंचमहायज्ञों तथा वैदिक यज्ञों से मानव शरीर ब्रह्माप्राप्ति के योग्य बनाया जाता है। संस्कारी युक्त सन्तान योग्य होती है जिसमें शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः संस्कारों को करना प्रत्येक मानव के लिए उचित है। संस्कारों को पूर्ण करने से बालक शुभ–गुण वाले बनते हैं। संस्कारित 'बालक' शुभ–श्रेष्ठ बलवान और कल्याणकारी होता है।

कुछ संस्कारों का उद्देश्य माता–पिता के गर्भाशय एवं वीर्य विषयक दोषों को दूर करना है कुछ का लौकिक व्यवहार चलाना एवं कुछ का उद्देश्य आत्मनियंत्रण की ओर अग्रसर होना है मनु ने गर्भाधान से लेकर श्मशान तक के संस्कारों का वर्णन किया है। सामान्य जनजीवन में जो आचार–विचार हैं उनमें संस्कारों का बहुत अधिक महत्व है संस्कारों की परम्परा बहुत प्राचीन है संस्कारों का एक मूल उद्देश्य है किसी मामूली वस्तु पर कुछ क्रियाओं का ऐसा प्रभाव डालना कि जिससे वह वस्तु और भी उत्तम बने इसी को संस्कार कहते हैं। मनुष्य जीवन को सुन्दर और उच्च बनाने के लिए हमारे पूर्वज ऋषियों ने जो रीतियाँ बनाई है, उन्हीं को संस्कार कहते हैं ये धार्मिक क्रियाएँ मनुष्य के गर्भ में आने से लेकर मृत्युपर्यन्त तक सोलह मानी गई हैं, इन्हीं को सोलह संस्कार कहते हैं। इन सोलह संस्कारों को करने से मनुष्य का शरीर मन और आत्मा उच्च तथा पवित्र होती है ये सोलह संस्कार एक संस्थान की तरह की है।

संस्कारों का संस्था विषयक वर्णन

1. गर्भाधान संस्कार

इसी को निषेक और पुत्रेष्टि भी कहते हैं इनमें माता–पिता दोनों गर्भधारण के पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत रखते हैं कुछ ऐसी औषधियों का सेवन करते हैं जिससे सन्तान पुष्ट और वीर हो सन्तान प्राप्ति के लिए वीर्यनिषेचन द्वारा गर्भस्थापन की क्रिया को गर्भधान संस्कार कहते हैं।

2. पुंसवन संस्कार

यह संस्कार गर्भधारण करने के तीसरे महीने में होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिससे गर्भ की स्थिति ठीक–ठाक रहे। इसी संस्कार के द्वारा माता–पिता यह भी दर्शाते हैं कि जब से गर्भधारण हुआ है तब से हम दोनों ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये हुये हैं। इस संस्कार के योग्य भी स्त्री को पुष्टिकारक और पवित्र औषधियाँ दी जाती हैं।

3. सीमन्तोनयन संस्कार

यह संस्कार गर्भ की वृद्धि के अर्थ से छठे महीने में किया जाता है। इसमें ऐसे उपाय किये जाते हैं जिससे गर्भिणी का मन सुप्रसन्न रहे, उसके विचार उत्तम रहे क्योंकि उन्हीं का असर बालक के मस्तिष्क और शरीर पर पड़ता है।

इस संस्कार के लिए शौनक गृहय सूत्र में लिखा है कि गर्भमास से चौथे महीने में शुक्ल पक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो, उसी दिन सीमान्तोन्नयन संस्कार करें।

4. जातकर्म संस्कार

यह संस्कार बालक के उत्पन्न होने पर नालछेदन के पहले किया जाता है इसमें होम–हवन इत्यादि धर्म कार्य किये जाते हैं बालक की जिह्वा पर सोने की शलाका से 'वेद' लिखा जाता है इसका तात्पर्य होता है कि तू विद्वान बन, तेरी बुद्धि बढ़ें मनुस्मृति में इसके लिए कहा गया है –

''प्राडनाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म निधियते।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्।। '[1]

5. नामकरण संस्कार

यह संस्कार बालक के उत्पन्न होने पर ग्यारहवें दिन किया जाता है इस संस्कार के अवसर पर बालक का नाम रखा जाता है।

6. निष्क्रमण संस्कार

यह संस्कार चौथे महीने में किया जाता है इसमें बालक को धर्मकृत्यों के साथ घर से बाहर निकालना प्रारम्भ किया जाता है इसके लिए मनु ने कहा है कि चतुर्थ मास में बालक को सूर्य के दर्शन के लिए बाहर निकालना चाहिए अथवा कुलाचार के अनुसार समय में परिवर्तन किया जा सकता है।

'निष्क्रमण' उसे कहते हैं कि जब बालक को घर से जहाँ की वायु व स्थान शुद्ध हो वहाँ भ्रमण कराना होता है, उसका समय जब अच्छा देखें, तभी बालक को बाहर घुमावें इस सन्दर्भ में आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है – **चतुर्थमासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति** अर्थात् निक्रमण संस्कार काल के दो भेद हैं– एक बालक के चौथे महाने में जिस तिथि को बालक का जन्म हुआ, उस तिथि में यह संस्कार करें।

7. अन्नप्राशन संस्कार

यह बालक के छठें मास में किया जाता है, इस संस्कार में बालक को मधु और क्षीर इत्यादि दिया जाता है इसके बाद वह अन्न ग्रहण का अधिकारी होता है। मनु का कहना है कि इसमें कुल परम्परा के अनुसार समय में परिवर्तन किया जा सकता है।

अन्नप्राशन तभी करें, जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होंवे इस सन्दर्भ में आश्वलायन गृहयसूत्र में कहा है –

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।।1।।
धृतैदिनं तेजस्काम ।।2।।
दधिमधधृत मिश्रितमन्न प्राशयेत् ।।3।।'2

अर्थात् छठे महीने में बालक को अन्नप्राशन करावें जिसको तेजस्वी बालक बनाना हो, वह धृतयुक्त भात अथवा दही सहित और धृत तीनों भात के साथ मिला के विधिपूर्वक अन्नप्राशन करावें।

8. चूड़ाकर्म संस्कार

चूड़ाकर्म संस्कार वैदिक नियमानुसार प्रथम या तृतीय वर्ष में किया जाना चाहिये। चूड़ाकर्म संस्कार को मुण्डन संस्कार भी कहते है, यह प्रायः बालके के तीसरे वर्ष में होता है इसमें बालक के गर्भावस्था के बाल मूड़ दिये जाते हैं।

9. यज्ञोपवीत

इसी संस्कार को उपनयन या व्रत बन्ध भी कहते हैं इसी संस्कार के द्वारा बालक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके वेदाभ्यास का अधिकारी होता है। यज्ञोपवीत विषयक नियमों का विधान ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को अलग–अलग किया गया है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बालक का बारहवें वर्ष में किया जाना चाहिये। ज्ञानाधिक्य प्राप्ति के लिए ब्राह्मण का पाँचवे वर्ष में बल की प्राप्ति के लिए क्षत्रिय का छठे वर्ष में और धनाधिक्य प्राप्त के लिए वैश्य आठवें वर्ष में भी यज्ञोपवीत संस्कार किया जा सकता है। इस विषय में आश्वलायन सूत्र का मत है– '[3] जिस दिन जन्म हुआ हो, अथवा जिस दिन से गर्भ हो रहा हो उस दिन आठवें वर्ष में ब्राह्मण के जन्म व गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म के बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें ब्राह्मण के 16 सोलह क्षत्रिय के 22 बाईस और वैश्य के बालक का 24 चौबीस से पूर्व–पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में उनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावे ।

मनुस्मृति में कहा गया है कि–

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य विप्रस्य पन्चमें।

राज्ञोबालार्थिनः षष्ठे वैश्यस्ये हार्थिनोऽष्टमें ।।'[4]

अथात् जिसको शीघ्र विद्या, बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म का गर्भ से पाँचवे, क्षत्रिय के लड़के का जन्म का गर्भ छठें और वैश्य के लड़के का जन्म के गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें।

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि –

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य अभिक्षाव्रतों वैश्यः ।। '[5]

अर्थात् जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो, उससे तीन दिन अथवा एकदिन पूर्व तीन व एक व्रत बालक को करना चाहिये।[3]

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि -

वसनते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्में राजन्यम्।
शरदि वैश्कम् । सर्वकालमे के ।।

अर्थात् ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब, ऋतुओं में हो सकता है और इसका प्रातः काल का समय ही है।

10. वेदारम्भ

वेद का अध्ययन प्रारम्भ करने के लिए धार्मिक विधि की जाती है, उसको वेदारम्भ संस्कार कहते हैं इनमें मंत्रोच्चर और यज्ञ आदि के द्वारा वेदों को पढ़ाने की क्रिया आरम्भ की जाती थी।

11. समावर्तन संस्कार

अध्ययन समाप्त करने पर जब ब्रह्मचारी को स्नातक की पदवी दी जाती है, उस समय जो धार्मिक क्रिया होती है, उसी को समावर्तन कहते हैं कुछ लोग इसे स्नान संस्कार भी कहते हैं मनु ने समावर्तन व स्नान दोनों ही नामों का प्रयोग किया है।

'समावर्तन संस्कार' उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य व्रत, सागोंपांग वेदविद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त हो के विवाह विधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिए विद्यालय को छोड़ के घर की ओर आना।

अथर्ववेद में कहा गया है कि -

तानि कल्पद ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् समुद्रे।
सस्नातो बभ्रुः पिगऽलः पृथिव्यां बहुरोचते ।।

अर्थात् जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन वीर्यनिग्रह आचार्य प्रियाचरणादि कर्मो को पूरा करने के पश्चात् स्नान विधि करके पूर्ण करके पूर्ण विधाओं को धारण करता है, सुन्दर वर्णयुक्त होके पृथ्वी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है, वही धन्यवाद के योग्य है।

12. विवाह संस्कार

मनुस्मृति के अनुसार आयु के चार भागों में से दूसरे भाग में विवाह या दारकर्म संस्कार का विधान किया गया है।

'द्वितीयमायुषो भाग कृतदारो गृहेवसेत'।। '[6]

ऋग्वेद के अनुसार विवाह संस्कार संतानोत्पति के उद्देश्य से किया जाता है, जब मनुष्य अपने ही समान कुल शीलवती स्त्री का पाणिग्रहण करता है उस समय की धार्मिक विधि को विवाह संस्कार कहते हैं।

13. गाहर्पत्य

जब मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके अपने घर में धर्म विषयों के साथ अग्नि की स्थापना करता है। उस समय यह संस्कार किया जाता है तभी से गृहस्थ धर्म के पाँच महायज्ञ इत्यादि कर्म वह अपनी पत्नी के साथ करने लगता है।

14. वानप्रस्थ

गृहस्थ–धर्म का पालन करके जब मनुष्य आयु के तीसरे भाग में और मोक्ष की साधना के लिए वन को जाता है उस समय यह संस्कार किया जाता है। वानप्रस्थ में व्यक्ति अपने परिवार व सम्पत्ति सब को छोड़कर वन में भगवान की साधना करने हेतु जाता है।

15. संन्यास

आयु के चौथे भाग में जब मनुष्य ईश्वर चिन्तन करते हुए केवल मोक्ष की साधना में लगना चाहता है, और सब प्राणियों पर समदृष्टि रखकर जनहित को अपना एकमात्र उद्देश्य रखना चाहता है तब जो विधि की जाती है उसे संन्यास कहते हैं।

16. अन्त्येष्टि संस्कार

यह अन्तिम संस्कार मनुष्य की मृत्यु पर किया

जाता है इसमें उसका शव एक कुण्ड में वैदिक विधि से हवन के साथ जलाया जाता है, मनुस्मृति में अवस्था के अनुरूप अलग–अलग अन्त्येष्टि संस्कार का विधान किया गया है, दो वर्ष से कम आयु वाले का दाह संस्कार नहीं होता है इसी तरह अधिक आयु वाले का दाह संस्कार का विधान है।

यह अन्तिम यज्ञ है इसीलिए इसका नाम अन्त्येष्टि संस्कार है। ये सभी संस्कार कन्या और पुत्र दोनों के लिए अनिवार्य हैं इन संस्कारों के अतिरिक्त कर्णभेद और केशांन्त संस्कार भी किया जाता है किन्तु उसे सामान्य संस्कार माना जाता है।

विवाह संस्कार

विवाह शब्द से अभिप्राय है, 'वि' उपसर्ग 'वह प्रापणे' धातु के 'धन' प्रत्यय के योग से विवाह और 'उद' उपसर्ग से इसका पर्यायवाची 'उदवाह' शब्द बनता है जिनका अर्थ है – विशेष विधिपूर्वक एक – दूसरे को प्राप्त करके पारस्परिक जिम्मेदारी को वहन करना।

''उदगयन आपूर्यमा पक्षे पुण्य नक्षत्रे, चौलक मापिनयन गोदान विवाहाः । ।1।। सर्वकाल मे के विवाहम् । ।2।।

आश्वालयन् अर्थात् उत्तरायण शुक्लपक्ष के अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो, उस दिन विवाह करना चाहिये और कितने ही आचार्यों का मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिए।'[7]

इसी प्रकार गोभिलीय सूत्र में कहा है –

''पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत् लक्ष्ण प्रशस्तान् कुशलेन ।'[8]

अर्थात् प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण जो स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो, करना चाहिये।

मनुस्मृति में कहा गया है कि – वेदानर्धात्य वेदौ वा वेदं वापि यथा क्रमम् । आविप्लुत ब्रह्मचयों गृहस्थाश्रमम विशेत । ।1।। अर्थात् ब्रह्मचय से चार, तीन, दो अथवा एक वेद को यथावत् पढ़ अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थाश्रम का धारण करें।

यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर, गुरू की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करें।

ऋग्वेद के मतानुसार विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोंपत्ति करना पश्चात्कालीन साहित्य में भी यही बात पायी जाती है स्त्री को इसलिए 'जाया' कहा गया है। '[9] शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि पत्नी–पति की आधी (अर्धगिनी) है, अतः जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता तब तक सन्तानोत्पति नहीं करता तब तक वह पूर्ण नही है। '[10]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्रथम बार पत्नी के गर्भवती होने के कारण दूसरी पत्नी ग्रहण करने तथा धार्मिक कृत्य करने को मना करता है, इसका तात्पर्य यह है कि विवाह के दो प्रमुख उद्देश्य हैं।

1. पत्नी, पति को धार्मिक कृत्यों के योग्य बनाती है।
2. वह पुत्र या पुत्रों की माता होती है और पुत्र ही नरक से रक्षा करते हैं।'' '[11]

मनु के अनुसार पत्नी पर पुत्रोत्पत्ति, धार्मिक कृत्य, सेवा, सर्वोत्तम आनन्द अपने तथा अपने पूर्वजों के लिए स्वर्ग की प्राप्ति निर्भर रहती है। '[12]

विवाह के प्रकार

गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के काल से विवाह आठ प्रकार के कहे गये हैं यथा ब्राह्म, प्रजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, असुर, राक्षस एवं पैशाच।

''आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने विवाह के छः प्रकार बतलाये हैं और पैशाच और प्रजापात्य को छोड़ दिया है। '[13]

वसिष्ठ धर्मसूत्र ने बाह्य दैव, आर्ष, गान्धर्व, क्षात्र एवं मानुष नाम दिये हैं स्मृति–चन्द्रिका तथा अन्यों ने देवल एवं गृह्य परिशिष्ट को उद्धृत करके यह लिखा है कि –

गान्धर्व, आसुर, राक्षस एवं पैशाच में होम एवं सप्तपदी आवश्यक है महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि स्वयंवर के पश्चात् भी धार्मिक कृत्य किया जाना चाहिए। '[14]

कालीदास ने वर्णन किया है कि इन्दुमति के स्वयंवर के उपरान्त मधुपर्क, होम, अग्नि, प्रदक्षिणा पाणिग्रहण आदि धार्मिक कृत्य किये गये। '[15]

मनुस्मृति में विवाह के आठ प्रकार बताये गये हैं और कुछ विवाहों को निषिद्ध बताया गया है।

''ब्राह्मो, दैवस्तर्थवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चौव पैशचश्चाष्टमोऽद्यमः ।।

ब्राह्म, दैव, आर्ष प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं।

ब्राह्म विवाह :– कन्या के योग्य, सुशील, विद्वान पुरुष का सत्कार करे कन्या को वस्त्रादि से अलकृत

करके उत्तम पुरुष को बुलाकर अर्थात् जिसको कन्या ने प्रसन्न भी किया हो, उसको देना, वह 'ब्राह्य' विवाह कहलाता है।

दैव विवाह :— विस्तृत यज्ञ में बड़े—बड़े विद्वानों को वरण कर उसमें कर्म करने वाले विद्वान को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना, वह 'दैव' विवाह है।

अर्थ विवाह :— एक गाया बैल का जोड़ा अथवा दो जोड़े वर पक्ष से लेकर धर्मपूर्वक कन्यादान करना 'आर्ष' विवाह है।

प्राजापत्या विवाह :— कन्या और वर को यज्ञशाला में विधिपूर्वक सब के सामने 'तुम दोनों मिलकर गृहाश्रम के कर्मों को यथावत करो, ऐसा कहकर दोनों का प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण होना वह 'प्राजापत्य' विवाह कहलाता है।

आसुर विवाह :— वर की जातिवालों और कन्या को यथाशक्ति धन देकर होम आदि विधिकर कन्या देना 'आसुर' विवाह कहलाता है।

गान्धर्व विवाह :— वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों पति – पत्नी हैं, यह काम से हुआ गान्धर्व विवाह है।

राक्षस विवाह :— हनन, छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालो का विदारण कर क्रोशती, रोती, कांपती और भयभीत हुई कन्या को बलात् हरण करके विवाह करना 'राक्षस' विवाह है।

पेशाच विवाह :— सोती हुई, पागल हुई व उन्मत हुई कन्या को एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच महानीच दुष्ट, अतिदुष्ट 'पैशाच' विवाह है।

इन विवाहों में प्रथम चार विवाह ब्राह्य, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन विवाहों से पाणिग्रहण किये हुए स्त्री—पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होती हैं वे वेदादि विद्या से तेजस्वी, आप्त पुरुषों की संगति से अत्युक्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त चार विवाह आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्म कर्ता, मिथ्यावादी वेदधर्म के द्वेषी बड़े नीच स्वभाव वाले होते है।

श्रेष्ठ विवाहों से सन्तान भी श्रेष्ठगुण वाली होती हैं निन्दित विवाहों से मनुष्यों की सन्तानें भी निन्दनीय कर्म करने वाली होती हैं इसलिए निन्दित विवाहों को आचरण में न लायें।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति 2/29
2. मनुस्मृति 2/35
3. आश्वालायन गृह्य सूत्र
4. मनुस्मृति
5. शतपथ ब्राह्मण
6. मनुस्मृति 4/1
7. आश्वलायन गृह्य सूत्र
8. गोभिलीय गृह्य सूत्र
9. ऋग्वेद 10/85/36
10. शतपथ ब्राह्मण 5/2/1/10
11. आपस्तम्ब धर्म सूत्र 2/5/11/12
12. मनुस्मृति 1/28
13. आपस्तम्ब धर्म सूत्र 2/5/11
14. महाभारत आदि पर्व 165/7
15. रघुवंश 7

पीएच. डी. शोधार्थी
संस्कृत विभाग
श्री गोविंद गुरु यूनिवर्सिटी, गोधरा

16

दलित समाज को सुकून के स्वप्न दिखाता कवि 'ओमप्रकाश वाल्मीकि'

❖ डॉ. शहाबुद्दीन

भारतीय संसद परिसर में जब सांसद मनोज झा ने ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता ''ठाकुर का कुआँ'' का पाठ किया और उस पर चौतरफा वाद–विवाद हुआ तो इच्छा हुई कि क्यों न कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता की पड़ताल की जाए? इंटरनेट पर इस कविता का पाठ प्रसिद्ध अभिनेता इरफान खान का मिला। बेहद सधे हुए अंदाज में। अंदाज–ए–बयां से सृजन के मर्म की प्रभावशाली अभिव्यक्ति! कविता का हरेक पद्यांश जैसे शोषण के तिलिस्म को बेपर्दा कर रहा था! जज्बात इतने प्रबल हुए कि सदियों का संताप बस्स! बहुत हो चुकाय। अब और नहीं... काव्य–संग्रहों को एक साथ पढ़ गया। तब जाना कि सृजक कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

उनकी कविता का वैचारिक स्रोत बौद्ध–दर्शन, अंबेडकरवाद, ज्योतिबा फुले हैं तो काव्य–संवेदना 'कबीर' सरीखे प्रखर कवि से प्रेरित है। 'हीरा डोम' उनके पुरखे कवि हैं। इसलिए एक काव्य–संग्रह उन्हें ही समर्पित दिखा पर। वाल्मीकि का शिकायती लहजा ''अछूत की शिकायत'' से सख्त है। दलितों के दुख–दर्द, आत्मसंघर्ष का यथार्थ चित्रण करती उनकी कविता की पहचान उसके आक्रोश, तेवर, संवेदनशीलता व मानवीयता में है। उन्हें घृणा नहीं, प्रेम में विश्वास है। ''दलित कविता के आंतरिक भावबोध और दलित चेतना के व्यापक स्वरूप को उनकी कविताओं में वैचारिक प्रतिबद्धता और प्रभावोत्पादक अभिव्यंजना के साथ स्थान मिला।'[1] वे लोकतांत्रिक–समाजवाद में आस्था रखते हुए सामंती–मनुवादी व्यवस्था के विरोधी लगे। उनकी "आक्रोशजनित गम्भीर अभिव्यक्ति में जहाँ अतीत के गहरे दंश हैं, वहीं वर्तमान की विषमतापूर्ण, मोहभंग कर देने वाली स्थितियों" के सूक्ष्म चित्रण भी हैं। उनकी कविता व्यंजनाधर्मी, बहुलार्थी, बहुआयामी है। वस्तु–स्तर पर नवीन, शिल्प में प्रयोगशील। कविता के अर्थ, अभिप्राय, अभिव्यंजना–कौशल से परिचित कवि के लिए कविता "बौद्धिक विलास" या "अखबार की सुर्खियाँ" मात्र नहीं। उनकी समझ में कविता कोई बिस्तर नहीं, जिसे "जैसा चाहा ओढ़–पहन लिया। जब चाहा उतारकर फैंक दिया"।

दरअसल वाल्मीकि सामाजिक सरोकारों से जुड़े कवि हैं। वे समाज में प्रचलित रूढ़ि–आडम्बरों, मिथ्या–धारणाओं, प्रपंचों एवं जातिवाद के विरोधी हैं। उनकी 'वंशज' कविता समाज के ठेकेदारों द्वारा 'नियति' के नाम पर प्रपंच रचने का पर्दाफाश करती है तो 'शायद आप जानते हों' कविता यज्ञों में प्रचलित बलि–प्रथा को अप्रासंगिक बताती हुई संस्कृत–संस्कृति की हिन्दुत्ववादी धारणाओं; ब्रह्म–जीवात्मा व पुनर्जन्म की सनातनी अवधारणा पर कुठाराघात करती है। यह कुठाराघात कविता के उत्तरोत्तर विकास के साथ कठोरतम होता गया है। तेलुगु–महाकवि श्रीश्री की 'माया'[2] कविता की तरह उन्होंने कम शब्दों में लाखों पृष्ठों में फैले मायाजाल को ध्वस्त किया है! दिमागी–विभ्रमों के जाले हटाती उनकी कविता ''शायद आप जानते हों'' की टेक में निहित व्यंग्य श्रीश्री की कविता के व्यंग्य–सा मारक है।

यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ाना
किस संस्कृति के प्रतीक हैं
मैं नहीं जानता / शायद आप जानते हों!
– – – – – – – –
चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता / शायद आप जानते हों![3]

प्रश्नानुकूता तर्कशीलता की पहचान है और तर्कशीलता आधुनिकता की। वाल्मीकि की प्रश्नुकूलता उनके तर्कशील और आधुनिक होने की पहचान है। यज्ञों में बलि चढ़ाना रुढ़िवादी समाज की निशानी है। उनके अनुसार "भारतीय समाज व्यवस्था जो वर्ण–व्यवस्था पर आधारित थी– में प्रेम, करुणा, बंधुता, समता के लिए कोई स्थान नहीं।"[4] यह घोर जातिवादी, बुद्ध के सिद्धांतों के विपरीत है। उन्होंने 'आईना' कविता में मनुवादियों के दोहरे चरित्रों को आईना दिखाया, जो शब्द–हिंसा फैलाते हैं। जिन्हें जातिवाद पर चर्चा नापसंद है क्योंकि वे पासी, चमार, भंगी, महार नहीं जबकि "वे हर रोज करते हैं। इस्तेमाल इन जातियों को गाली की तरह"[5] जाति पर बात न करके उसे गाली–सा प्रयुक्त करना लोकतांत्रिक आचरण है? जाति को परिभाषित एवं इसके दुष्प्रभावों को लक्षित करते हुए वाल्मीकि ने 'जाति' कविता में लिखा– "'जाति' आदिम सभ्यता का नुकीला औजार है/जो सड़क चलते आदमी को कर देता है छलनी"!

जो जाति–उत्पीड़ित है वह जाति–समर्थकों को 'मेरे पुरखे' कविता में निर्बल–असहायों को लूटनेवाला ही लिखेगा। उनकी लूट–खसोट की प्रवृत्ति को अपराध नहीं वीरता कहने की संस्कृति पर तंज करेगा ही। अपने पुरखों के अछूत होने से दुखी होगा ही। दुःख की तपिश से आक्रोश पनपेगा ही। 'तब तुम क्या करोगे?' कविता में आक्रोश के अन्य कारण दर्ज हैं। जैसे– गाँव से बाहर धकेलना; कुँओं से पानी न लेने देना; दुत्कारना–फटकारना; चिलचिलाती धूप में पत्थर तुड़वाना, खाने को जूठन देना, मरे जानवरों को खिंचवाना, पूरे परिवार का मल उठवाना, पहनने को उतरन देना, मंदिरों में प्रवेश–निषेध; शिक्षा से वंचित रखना, रहने को फूंस का घर और उसे वक्त–बेवक्त फूँक देना, नयी–नवेली दुल्हन को पहली रात ठाकुर की हवेली में भेजना, बँधुआ बनाना, वोट न डालने देना, बीमारी में भी काम लेना, सरेआम बेइज्जत करना, संपत्तिहीन करना, धर्म के नाम पर स्त्रियों को देवदासी बनाना, स्त्रियों से वेश्यावृत्ति कराना, लूले–लंगड़े, अपाहिज होकर युगों–युगों अपमानित– तिरस्कृत जीवन जीना। यह सूची वाल्मीकि के आक्रोश का वाजिब तर्क है। वस्तुतः "दलित कविता में आक्रोश उस भोगी हुई वेदना, अपमान और यातना के विरोध में है जिसे दलित समाज हजारों साल की संघर्ष–यात्रा में वहन करता रहा है। दलित कविता उसी अनुभव–जगत की कविता है।"[6] 'कद' कविता में वर्णव्यवस्था–समर्थकों को प्रजनन की नैसर्गिक प्रक्रिया से अवगत कराते वाल्मीकि सामाजिक असमानता पर चकित दिखे–

जिस रास्ते चलकर तुम पहुँचे हो
इस धरती पर/उसी रास्ते चलकर आया मैं भी
फिर तुम्हारा कद इतना ऊँचा
कि आसमान भी छू लेते हो
और मेरा कद इतना छोटा
कि मैं छू नहीं सकता जमीन भी![7]

जमीन न छू सकने के मलाल में अस्पृश्यता का दंश विद्यमान है। 'वह दिन कब आयेगा' कविता में जाति के जन्माधारित होने पर कवि चकित है– "मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत/तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन।/कितने ताज्जुब की बात है/जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है।" वस्तुतः वाल्मीकि कहना चाहते हैं "जाति" प्राकृतिक, ईश्वर प्रदत्त नहीं, कृत्रिम व्यवस्था है। डॉ. अम्बेडकर इसे "बेसीढ़ियों का बहुमंजिला मकान" कहते थे। पिरामिड शैली के इस मकान के वासियों की सामाजिक हैसियत में बड़ा अंतर है। जिस मंजिल पर जिस वर्ण का व्यक्ति पैदा हुआ वह उसी मंजिल पर मरने हेतु अभिशप्त है! यह स्थिति वाल्मीकि के लिए असह्य थी, उनके आक्रोश का सबब थी। 'स्वीकार नहीं मुझे मृत्यु के बाद तुम्हारे स्वर्ग में जाना क्योंकि वहाँ भी तुम मुझे मेरी जाति ही से पहचानोगे!' जैसी पंक्तियों से उनके क्रोध का अनुमान लगाइए। 'अँगूठे का निशान' कविता में लिखा– "थोड़ा–थोड़ा जानने लगा हूँ/टुच्चे लोगों की असलियत/कानफोडू शास्त्रीयता/और छद्म शब्दों का रहस्य" जो व्यक्ति सच समझने लगे तो उसे सच बोलने से कौन रोक सकता है? उन्होंने लिखा– "सच बोलने से रोक नहीं पायेंगे/अब शातिर देवता भी/फड़फड़ायेंगे इतिहास पृष्ठ/कहेंगे आओ, दर्ज कर दो/किसी भी पन्ने पर/अपने अँगूठे का निशान!"

जातीय शोषण का आधार जातिवाद है, जो उतना ही प्राचीन है जितना मनुवाद। महात्मा फुले, डॉ. अंबेडकर का साहित्य पेशवाओं के राज में दलितों पर हुए अमानुषिक अत्याचारों का प्रमाण है। 'सदियों का संताप' की भूमिका में डॉ. अंबेडकर के प्रश्न को दोहराते हुए वाल्मीकि पूछते हैं 'ब्राह्मणों की इतनी लम्बी परम्परा है फिर भी उसने

एक भी वाल्टेयर क्यों पैदा नहीं किया है।' प्रश्न बहुत गंभीर है पर उत्तर नहीं है! उनकी 'मुट्ठी भर चावल' कविता शोषण के इतिहास, प्रताड़ित पूर्वजों की सजीव स्मृतियाँ व जानलेवा पीड़ाएँ, उनकी पीठ पर चोट के गहरे नीले निशान व रिसते लहू के हाथय उनके संताप व अमानुषिक यातना–प्रताड़ना उनके रिसते हरे जख्म व टूटे घरोंदे; उनके दर्दनाक विस्थापन व गिरवी स्वप्न को समेटे हुए है। कविता उत्पीड़ित दलित–पूर्वजों के साथ हुए अमानवीय व्यवहार की वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति है। ये विवरण मनुवादियों में दलितों के प्रति मानवीय करुणा के अभाव व कवि के इतिहासबोध के परिचायक हैं, उनकी वेदना के आधार हैं। उन्हें "इतिहास का स्याहपन अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ" बेचैन करता है और रोष भरी "असंख्य मूक पीड़ाएँ" मुखर, कसमसाती महसूस होती हैं। देह के नीले निशान व रिसते लहू के हाथ शारीरिक प्रताड़ना के संकेतक हैं। आर्थिक शोषण की क्रूर अमानवीय घटनाएँ भी इतिहास में दर्ज हैं, जिनका आधार जातिवाद था। त्रावणकोर के चेरथला की नांगेली ने "स्तन टेक्स" की एवज में केले के पत्ते पर अपने स्तन काटकर रख दिए थे। जितना अमानुषिक यह टेक्स था, उतना ही साहसपूर्ण नांगेली का प्रतिरोध! यह ऐतिहासिक घटना दलित–स्त्री के मुक्तिसंघर्ष का प्रतीक है। वाल्मीकि लिखते हैं– "शारीरिक यातनाओं से / बड़ी यन्त्रणा होती है– / इच्छाओं के विरुद्ध जीना"। नांगेली ने इच्छाओं के विरुद्ध जीने से बेहतर प्रतिरोधक मृत्यु समझी! वह सामंती दौर था पर लोकतांत्रिक युग में संवैधानिक प्रावधानों के बाद यदि जातीय–उत्पीडन विभिन्न रूपों में जारी दिखें तो इसे क्या कहा जाए? 'बस्स! बहुत हो चुका' कविता में कवि–आक्रोश का अन्य कारण देखिए–

जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गन्दगी से भरी बाल्टी–कनस्तर
किसी हाथ में / मेरी रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'ठाकुर का कुंआ' दलित विमर्श की महत्वपूर्ण कविता है। यह शीर्षक प्रेमचंद की कहानी का भी है परंतु दोनों का ध्येय जुदा है। कहानी जहाँ सच का बयानभर है वहीं कविता सच पर ऊँगली उठाती है, अधिकारबोध पर केंद्रित है। कवि जानता है मिट्टी–पानी प्राकृतिक हैं। इनसे खेत–खलियान, तालाब बने हैं। खेत–खलियान की तैयारी व कृषि–उपकरणों का निर्माण किसान–मजदूर–कारीगर–बैल इत्यादि के श्रम से होता है। फसल भी इन सभी के श्रम का परिणाम होती है। फिर उस पर ठाकुर का कब्जा क्यों और कैसे? ये उपेक्षित समाज के लिए चिंतनीय प्रश्न हैं। "फिर अपना क्या" पूछकर कवि "सत्ता" को कटघरे में लाता है। सहज–सरल–स्वाभाविक प्रश्न बड़ी शक्ल अख्तियार करता हुआ गली–मुहल्ले, गाँव, शहर, देश अर्थात् सभ्यता तक व्याप्त है और कविता सभ्यता की नब्ज टटोलती प्रतीत होती है। लगता है देश गंभीर बीमारी से ग्रस्त है। कविता में बहुतेरों को असहज करने की शक्ति है। इसकी झलक संसद से सड़क और मीडिया से सोशल मीडिया तक दिख ही चुकी है। प्रकृति व श्रम पर शोषकों का वर्चस्व कविता का विचारणीय बिंदु है। श्रम करने के बावजूद श्रमिक लाभांश का समानाधिकारी क्यों नहीं? यह प्रश्न मार्क्सवाद में "अतिरिक्त मूल्य" के रूप में भी है। परंतु वाल्मीकि आर्थिक समता से अधिक सामाजिक समता को महत्व देते हैं। वे मार्क्सवाद से प्रभावित तो हैं पर उनकी चेतना आम्बेडकरवादी है। उनकी पक्षधरता–प्रतिबद्धता, संवेदना, मानवीय दृष्टि स्पष्ट है।

कविता में स्वानुभूति– सहानुभूति की अनुगूँज भी विद्यमान है जिसका तार्किक अंतर 'जूता' कविता में दिखता है, जो निराला की 'जल्द–जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ' कविता का उत्तर प्रतीत होती है। लिखते हैं– "साथ चलना है तो कदम बढ़ाओ / जल्दी–जल्दी / जबकि / मेरे लिए / कदम बढ़ाना / पहाड़ पर चढ़ने जैसा है / मेरे पाँव जख्मी हैं / और जूता काट रहा है" (अब और नहीं..., पृष्ठ–16) 'बस्स! बहुत हो चुका' कविता में सहानुभूति प्रदर्शकों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं– तुम्हारी नर्म त्वचा नहीं सह पाएगी ज्यादा देर मक्खियों का भिनभिनाना, सूअरों की गंध, नालियों की बदबू से भरी हवा में तुम्हारे फेफड़े साँस लेने से इंकार कर देंगे; तंग गलियों का अँधकार तुम्हें पवित्र ऋचाओं के पाठ्य श्लोक–मंत्रों के जाप भुला देगा! वे चुनौती देते हैं "कुछ साल / कुछ महीने / या कुछ दिन ही सही / संग–साथ रहकर देखो / क्या होता है / जिन्दगी का सत्य"[9]। क्रोध में वे शालीन भाषा का अतिक्रमण करते पूछते हैं– "संस्कृति क्या तुम्हारी रखैल है?" और "जिस संस्कृति ने

मनुष्य और मनुष्य के बीच विभेदों की दीवार खड़ी की, एक मनुष्य को दूसरे का मलमूत्र ढोने को बाध्य किया गया, उस संस्कृति के प्रति एक दलित कवि की क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए"?[10] उन्हें लगता है मनुवादियों की उपेक्षा के कारण दलित उनसे दूर हैं।

'तुम्हारी गौरवगाथा' कविता में उन्होंने आत्मसत्य लिखा कि उन्हें सवर्ण–संस्कृति हमेशा परायी लगी, उनकी गौरवगाथा सुनकर उनके बाजू नहीं फड़के और न देवों की पाषाण–मूर्तियों में उनकी आस्था जाग्रत हुई क्योंकि "प्राण प्रतिष्ठा के बाद" भी "देवता जाग्रत नहीं होता"। उनका वाजिब प्रश्न है कि देवता "क्यों रह जाता है जड़ भूख और जुल्म देखकर"? यह तार्किकता भौतिकवादी दृष्टि का परिणाम है। हिन्दी में निराला, केदार के साहित्य में भी ऐसे प्रसंग मिलते हैं। दोनों वर्णों में परायेपन का कारण सवर्णों में प्रचलित रूढ़ियाँ व दलितों में व्याप्त दरिद्रता भी है। वाल्मीकि पूछते हैं "कभी सोचा है/गन्दे नाले के किनारे बसे/वर्ण–व्यवस्था के मारे लोग/इस तरह क्यों जीते हैं?/तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें/कभी सोचा है?" एक तरफ भीषण दरिद्रता दूसरी तरफ धर्म– संस्कृति के नाम पर अपव्यय! जिससे लाखों भूखों का पेट भरे। पर यह समझ "भक्तों" में न देखकर उन्होंने आक्रोशित स्वर में लिखा–

न जाने कितना दूध
बहा दिया तुमने नाली में
भूखे बच्चों से छीनकर
अरे, तुम्हारे इन्हीं कुकर्मों ने हमें
कंगाल बना दिया है।[11]

मनुष्य ही नहीं, प्राणियों के अधिकारों की चिंता भी वाल्मीकि की कविताओं में निहित है। 'अकाल' कविता इसका प्रमाण है, जिसमें किसान और बैल के संघर्ष–श्रम का मार्मिक दृश्य है। "जब भूख से लड़ने के लिए/हम चला रहे थे खेत में हल/दूर दूर तक/आकाश में बादल का कोई भी टुकड़ा नहीं था/सूख रही थी नदी चुपचाप"! ऐसा ही दृश्य प्रगतिशील कवि त्रिलोचन की 'मिलकर वे दोनों प्रानी' कविता में है। उसमें भी प्रकृति श्रम के प्रतिकूल है। श्रमिक युगल अपने बल से कुएँ से पानी खींचते हैं और खेत सींचते हुए अपने साहस का परिचय देते हैं। दोनों कवियों के किसान की स्थिति में फर्क यह है कि वाल्मीकि के किसान के पास बैल तो हैं पर कुआँ नहीं है! विडंबना कहें या जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पर नदी भी सूखी है! अर्थात् परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं! वर्षा पर निर्भर किसान के स्वेदस्नात श्रम से न व्यवस्था पसीजती है, न आकाश!

बैल का सर हिला
गले में बँधी घंटियाँ खनकी
बीज बोते हाथ ठिठके
और आँख के कोर से
एक बूँद ढुलक कर
नम कर गयी जमीन को![12]

विडंबना देखिए किसान और बैल दोनों भूख से त्रस्त भी हैं! कविता हर उस किसान की पीड़ा की गवाही है, जो कम जोतदार या बंटाईदार है व वर्षा पर निर्भर है। बहरहाल।

सदियों के संताप, उत्पीडन, बेगारी, स्वेदस्नात श्रम, करुणाजनक स्थितियों, बेरोजगारी ने दलितों की रागात्मक प्रवृत्तियों को भी प्रभावित किया है। उनकी स्वाभाविक वृत्तियाँ लुप्तप्राय हैं! अमानवीयकरण की प्रक्रिया ने शोषितों–उत्पीड़ितों–वंचितों से कितना कुछ छीन लिया– इसका सही आकलन मुश्किल है। उनके स्थायीभाव हों या संचारीभाव–उनमें सामयिक औचित्य नहीं है। 'मुट्ठीभर सुकून' कविता इस त्रासदी की पुष्टि करती है। कविता की स्त्री तब चिल्लाती है "जब उसे होना चाहिए शांत"! वह "अक्सर रहती है खामोश जब उसे बोलना चाहिए"! "जब वह प्रेम करती है, हो जाती है उदास"! ये पंक्तियाँ स्थिति की गंभीरता की द्योतक हैं। वाल्मीकि ने उच्च–निम्न वर्ण के मानसिक ही नहीं शारीरिक अंतर को भी 'कुदाल' कविता में रेखांकित किया "तुम्हारी मांस पेशियां चमक रही थीं विद्युत तरंग सी" "और, मैं कीचड़ से लथपथ"।[13] इस अंतर का कारण उनकी कार्यशैली व जीवनशैली से भी जुड़ा है। प्रश्न है इन अमानवीय परिस्थितियों के कारक लोग क्या स्वयं आदमी कहलाने योग्य हैं? 'लाश के बाद भी' कविता बताती है शोषक अपनी मानवीय संवेदनाएँ खो चुके हैं क्योंकि उन्हें अमानुषिक कृत्यों का अफसोस नहीं। बल्कि अमानवीय स्थितियों में भी वे सहज रहते हैं–

जलती बस्तियों में/लाशों के ढेर पर/वे दे रहे वक्तव्य
सहिष्णुता और आस्था का/तर्कहीन कुकृत्य
उन्हें भयभीत नहीं करते/नहीं जगती सपनों में

दर्दनाक चीखें/इतने रक्तपात/इतनी आगजनी के बाद भी![14]

वाल्मीकि अपने दैनिक अनुभवों को कविता में प्रयुक्त करते हैं। उनकी कविताओं में सफाईकर्मी, मजदूर, किसान, स्त्री के श्रम–चित्र हैं। इन श्रम–चित्रों के मध्य "भूख से बिलबिलाते बच्चों का रूदन"; श्रमिकों के "क्षत–विक्षत चेहरे"; उनके "संताप से भरे दिन"; "बाढ़ में बह गयी झोंपड़ी का दर्द" और "सूखे में दरकती धरती का बाँझपन" जैसे मार्मिक प्रसंग हैं। इन्हें देखकर भी वे आश्वस्त हैं, श्रमिक कभी निर्दयी नहीं होगाय न ही शोषकों की प्रवृत्ति अपनाएगा! ये विचार मार्क्सवादी विचारों से मेल नहीं खाते क्योंकि मार्क्स ने क्रांतिकारी तरीकों से सत्ता–परिवर्तन या मजदूरों की तानाशाही की बात कही थी। यह स्वाभाविक भी नहीं कि कोई शोषक किसी का शोषण करे, शोषित दया दिखाए। फिर वाल्मीकि ऐसा क्यों लिखे? दरअसल वाल्मीकि बुद्ध, कबीर व अम्बेडकर के विचारों की रोशनी में दया, करुणा, प्रेम, बंधुता व शांतिपूर्ण ढंग से सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर हैं। उन्होंने लिखा 'श्रमिक भूखे हैं, पर आदमी का माँस नहीं खाते; प्यासे हैं पर लहू नहीं पीते; नंगे हैं पर दूसरों को नंगा नहीं करते; उनके पास छत नहीं परंतु दूसरों के लिए छत बनाते हैं'! इनका ध्वन्यार्थ या विपर्यय है। शोषक मजदूरभक्षी है; उनका खून पीता है; उनकी इज्जत तार–तार करता है और श्रम–सृजन भी नहीं करता! सृजन–श्रम करते हैं मजदूर–किसान–कारीगर। पर उनका क्या? 'फिर भी...!' कविता इस विसंगति को शब्द देती है।

श्रमिकों–किसानों ने जंगल काटे, पहाड़ खोदे, खेत बोये परंतु फिर भी भूखे रहे! उन्होंने नहरें बनायीं, कुएँ खोदे, नल लगाये परंतु फिर भी प्यासे रहे! उन्होंने युद्ध लड़े, भूखण्ड जीते, राज बदला परंतु फिर भी दास रहे! उनके हाथों में अथाह शक्ति, सीने में धैर्य, मन में विश्वास, फिर भी दुत्कार सहते रहे! वर्गीय चेतना से प्रारंभ यह यथार्थपरक कविता अंततः दलित चेतना की कविता में रूपांतरित होती है और वर्गीय प्रश्न से ज्यादा जातीय प्रश्न मुखर हो उठा है। "नहीं बोये काँटे/बाँटे सिर्फ/सगुन प्यार के/फिर भी रहे अछूत!" प्रश्न है उत्पादन की प्रक्रियाओं में शामिल, प्रेम–वितरक लोग अछूत क्यों हैं? क्यों वे मजदूर, किसान, सैनिक, कारीगर की वर्गीय पहचान से वंचित रहे हैं? इन प्रश्नों के उत्तर स्वतंत्र भारत के निरीक्षण से मिलेंगे। जहाँ दलित–शोषण के लाखों उत्पीड़न के हजारों; सामूहिक नरसंहार के सैकड़ों मामले दर्ज हैं। इन दुर्घटनाओं–षड्यंत्रों का दलितों के जीवन, समाज, साहित्यकारों पर गहरा असर है। उनके जख्मों से मवाद रिश्ता है। उनकी स्मृतियाँ जीवित है। "मानचित्र" कविता इन्हीं स्मृतियों के आधार पर लिखी गई सामूहिक चेतना की कविता है। उसमें उभरे भौगोलिक प्रदेश (बेलछी, शेरपुर, बिगहा, नारायणपुर) देश के वे क्षेत्र हैं जहाँ दलित–नरसंहारों की घटनाएँ हुईं और जिन्हें कवि अपने जिस्म पर फफोले–सा देखता है।

यह कवि–जिस्म आधुनिक भारत का प्रतीक है। दलित भी भारत के नागरिक हैं। भारत के किसी भी नागरिक का उत्पीड़न हो या नरसंहार भारत को जख्मी करता है। केदार, नागार्जुन, सर्वेश्वर, धूमिल ने भी दलित–नरसंहार की घटनाओं पर संजीदा कविताएँ लिखीं। स्वयं वाल्मीकि ने 'बेलछी कांड' पर नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' की समीक्षाएँ लिखीं। उनकी कविता में अतीत के विषैले दंश और वर्तमान के कटु अनुभव हैं! कवि दोनों के मध्य पसरी विसंगतियों पर पड़े पर्द को फाड़कर सच उजागर करता है। इनमें "बेइंतहा तनहा दुःख भरे अतीत की पीड़ा गहरी वेदना के साथ अंकित है अपनी संपूर्ण तार्किक वर्जनाओं के साथ।" 'हाथों का किसी सेठ–साहूकार की तिजोरी में दो मुट्ठी चावल के बदले गिरवी रखना हो' या 'किसी प्राइमरी स्कूल की बदरंग दीवार पर खुरच दिए गए प्लास्टर–सा जिस्म हो' सभी सामाजिक क्रूरता के प्रसंग हैं। 'स्कूल–मास्टर द्वारा मानचित्र पर जगह–जगह पेंसिल रखकर कलकत्ता–बम्बई–दिल्ली–कानपुर–नागपुर–पूना–बंगलौर समझाना और कवि–मष्तिस्क में नारायणपुर–बेलछी–शेरपुर का धीरे–धीरे उभारना' उसकी मनःस्थिति का संकेत हैं। मानचित्र कविता आधुनिक भारत के सुन्दर टापुओं (महानगरों) की परिधि के बाहर फैली दलदल, कीचड़ से उत्पन्न कुरूपता का साक्षात्कार है। स्वतंत्र भारत में विकास के लाभ किसे मिले, किसका नाश हुआ के स्पष्ट संकेत कविता में हैं! 'ज्वालामुखी' कविता की "प्रगति अवरुद्ध/जाति व्यवस्था के बंधन में" पंक्तियाँ इसी इमेज को पुख्ता करती हैं। कवि का इतिहासबोध उस जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया से अवगत करता है जिससे संघर्षशील चेतना अवरुद्ध हुई। "पूर्वजों के शौर्य/पराक्रम से रंगे

पृष्ठों को/धर्मभीरूता की दीमक/ चाट गई है" जैसी पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं– धर्म से अधिक धर्मभीरूता अफीम है! कवि की व्यथा समझना कठिन नहीं। ऐसे में उसे 'अट्टालिकाओं में हास–परिहास'; 'सफेदपोश नेताओं का भाषण'; 'चौराहों पर गाँधी का पुतला' और 'गलियों में समाजवाद का नारा' मन–बहलाव से लगते हैं क्योंकि इनसे उनके बदरंग जीवन में कोई सौन्दर्य नहीं पनपा। उसे विश्वास है अपने भीतर खौलते ज्वालामुखी पर जो अभी निष्क्रिय है! पथराई संवेदनाओं पर विचारों की कठोर चोटों का कोई असर नहीं! ऐसी मनःस्थिति 'चोट' कविता की जनक होगी–

पथरीली चट्टान पर/हथौड़े की चोट
चिंगारी को जन्म देती है
जो गाहे–बगाहे आग बन जाती है।
आग में तपकर/लोहा नर्म पड़ जाता है
ढल जाता है/मनचाहे आकार में/हथौड़े की चोट से।
एक तुम हो,/जिस पर किसी चोट का/असर नहीं होता।[15]

'लेखा–जोखा' कविता 'फिर भी...!' और'ठाकुर का कुआँ" कविताओं का विस्तार लगी। इसमें वे ठोस कारण दर्ज हैं जो जातियों में दूरी बढ़ाते हैं। कविता की "न फसल ही अपनी हो सकी न पेड़ ही"; "न दरवाजा ही खुला न देवता ही अपना हो सका"; "न गंगा अपनी हो सकी न रजबाहे की रेत ही" और "संसद के गलियारों का अधमरा लोकतंत्र भी न अपना हो सका न जगा सका विश्वास ही!" जैसी पंक्तियाँ श्रम–प्रकृति–धर्म– संस्कृति–खनिज संसाधन–लोकतंत्र के लाभ दलितों– वंचितों को नहीं मिलने के प्रमाण हैं। लाभान्वित वे हुए, जिनके पास सत्ता थी, सत्ता–संरक्षण था। कविता निराश–हताश, आस्थाहीन, अविश्वासी, अनाधिकारी, टूटे–दुखी मन का लेखा–जोखा है। आधुनिकता, लोकतंत्र, संविधान चमत्कृत अवश्य करते हैं पर आम आदमी के लिए अप्रासंगिक हैं! उनके पास बचता है केवल रिक्तता का अहसास! "अस्थि–विसर्जन" कविता अनास्था की गवाह है जहाँ धर्म, धार्मिकता, धार्मिक कर्मकाण्डों पर तीखा प्रहार है। 'पाँवों के तले 'मुर्दा हड्डियों का आना' गंगास्नान के पुनीत अहसास को विचित्र अनुभूति में बदल देता है और कवि अप्रासंगिक कर्मकाण्डों, रूढ़ियों पर चोट करने का संकल्प लेता है–

नहीं नहाऊँगा ऐसी किसी गंगा में
जहाँ पंडे की गिद्ध–नजरें गड़ी हों
अस्थियों के बीच रखे सिक्कों
और दक्षिणा के रुपयों पर/विसर्जन से पहले ही
झपट्टा मारने के लिए बाज की तरह![16]

पवित्र कार्य के समय पैसों पर गिद्ध–दृष्टि व उस पर झपट्टा मारने हेतु बाज–सी फुर्ती पंडे के विषय में क्या प्रदर्शित करती है? कविता केवल सच की बानगी नहीं होती, वह भविष्य के स्वप्न रचती हुई संघर्ष की प्रेरणा देती है। चूँकि वाल्मीकि ने "साँप की केंचुल–सा हीनताबोध उतार फेंका है" इसलिए वे निडर होकर सच लिखते हैं। उन्हें विश्वास है एक दिन भावी पीढ़ियाँ पूर्वजों के शोषण का प्रतिशोध लेंगी और मुक्ति हेतु लामबंद होंगी। तब वे "गोदामों में बंद रोशनी" बाहर लाएँगी और शोषकों की कोठियों–गोदामों को अनाज के ढेरों से नहीं भरेंगी। उनके संताप भरे दिन बीत जाएँगे और "आदिम भेड़ियों के दाँत टूटकर" बिखर जाएँगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि आदिम भेड़िये किनके लिए प्रयुक्त हुआ है? उन्हें पूर्ण विश्वास है उनके भूखे–प्यासे बच्चे काले पृष्ठों पर अदृश्य लहू की गंध पहचान ही लेंगे और "बन्द अँधेरी कोठरियों से" बाहर आएँगे। 'बाहर आएंगे' कविता में ऐसी ही परिवर्तनकामी आकांक्षा, सुंदर फैंटेसी एवं दृढ़ विश्वास का स्वर है। अपनी काव्याभिव्यक्ति पर ऐसा विश्वास उन्हें दूसरों से विलग करता है।

उत्पीड़न–उपेक्षा के भयावह प्रसंगों को वाल्मीकि आत्मानुभूति में ढालकर भावी पीढ़ी की प्रेरणा के ऐतिहासिक दस्तावेज रचते हैं। 'घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होते हैं?' कविता में 'याद करो' की टेक बताती है, उन्हें पूर्वजों के साथ घटित अवमानना की घटनाएँ स्मृत हैं। याद करो/उस सरकारी क्लर्क का चेहरा/जिसे पानी पिलाने से कतराता है/चपरासी[17] जैसी पंक्तियाँ दलितों के सार्वजनिक बहिष्कार, छुआछूत को व्यक्त करती हैं। बाल–स्मृतियाँ से बैचेन कवि को याद है उसे प्यास बुझाने हेतु किसी "जन्मना श्रेष्ठ" की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। प्रतीक्षा में प्रतिभा के घण्टों नष्ट हुए। ऐसे निराशाजनक विवरण उनकी आत्मकथा, कहानियों में भी दर्ज हैं। ऐसे प्रसंगों की क्रमबद्ध आवृत्ति के बावजूद मनुवादियों द्वारा समाज–व्यवस्था की दार्शनिक विवेचना;

न्याय–अन्याय की बातें उन्हें जुगाली लगती हैं। क्योंकि आज भी मनुवादियों के घड़े से पानी पीने पर दलित बच्चे प्रताड़ना के शिकार होते हैं। मूँछ रखने पर हत्या तो घोड़ी चढ़ने पर गोलीबारी हो जाती है! दलित–उत्पीड़ित वर्ग की स्त्रियों से बलात्कार की घटनाएँ अखबारों की सुर्खियाँ बनती रहती हैं। पिटाई, अवमानना की असंख्य दास्तानों के बावजूद भी समाज में चुप्पी छाई रहती है। वाल्मीकि यथास्थिति और इस चुप्पी को तोड़ना चाहते थे। वे चाहते थे बौद्धिक वर्ग सच को सच, झूठ को झूठ कहे। उनके भीतर के "अनहद नाद" से बाहरी सन्नाटा टूटे, "शब्दों का खोखलापन" उजागर हो। "शब्द अपने आदिम रूप में" "जनसमूह के बीच" घटनाओं के साक्ष्य दें, जिससे "लम्पट बौद्धिकता" के सभी तर्क ध्वस्त हो जाएँ। 'वे भयभीत हैं' कविता समाज के "कापुरुष" अर्थात् कायर व्यक्ति से भयमुक्त होने का आह्वान करती है।

मैं चाहता हूँ / शब्द चुप्पी तोड़ें
सच को सच / झूठ को झूठ कहें[18]

वाल्मीकि समझते हैं "शब्द कभी झूठ नहीं बोलते/झूठ बोलते हैं उनके अर्थ"। अर्थ के झूठ बोलने से अभिप्राय? "पण्डित का चेहरा" कविता इस पर सीधे कुछ नहीं कहती। वस्तुतः इन पंक्तियों के मूल में "शिक्षा पर पंडितों के एकाधिकार" का दुःख है। चूँकि शिक्षा पोथियों में रही और पोथियों पर सदियों से पंडितों का नियंत्रण रहा। अतः अर्थघटन का एकाधिकार भी उन्हें ही रहा! उन्होंने उनका जैसा अर्थघटन किया, जरूरी नहीं वह उसका वास्तविक अर्थ व्यक्त करता हो। हो सकता है जमींदारों, सुनारों या बनियों के बही–खातों की तरह उसमें भी खोट हो! कबीर द्वारा पंडितों को "ढ़ाई आखर प्रेम के" पढ़ने के उपदेश देने के मूल में इसी एकाधिकार को सीमित करने और संवेदनात्मक ज्ञान की इच्छा रही होगी। दलितों–उपेक्षितों को न्याय हेतु मध्यकालीन संत–साहित्यधारा के कवि भी बार–बार इस एकाधिकार को चुनौती देते हैं! औपनिवेशिक काल में मुद्रण के कारण जब पुस्तकें आम हुईं और दलित–पिछड़ों के हाथों में आईं तो वे 'उनके' भयभीत व चौकन्ने होने का बाइस हुईं। इसीलिए वाल्मीकि "उनके" मस्तिष्क में "खतरे का सायरन" बजता महसूसते हैं और वे "सीने में करने लगते हैं एलान गोलबन्द होने का"। 'वे भयभीत हैं' कविता इसका प्रमाण है। मनुवादियों के चौकन्ने, गोलबंद होने के बावजूद शहरों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार जारी रहा है। 'अपरिचित' कविता बताती है कि शहरों में साथ रहने–सहने, बोलने–बतियाने, हँसने–खेलने के बावजूद जातीय कारणों से लोगों में हमेशा अपरिचय (अजनबीपन)–सा बना रहता है। लोग न तो आपस में घुलमिल पाते हैं, न ही उनमें आपसी विश्वास पनपता है। 'श्रेष्ठ' कविता में शहर के विचित्र अनुभव को दर्ज करते हुए कवि ने लिखा कि वहाँ एक जन्मना श्रेष्ठ (मनुवादी सवर्ण) हिकारत से उनका नाम व जाति पूछता है। उसके इस अजीब व्यवहार से वे हीनताबोध के कारण जमीन में गड़ा महसूसते हैं। पर शिक्षित व्यक्ति के साथ ऐसा वर्ताव रोज–रोज नहीं चल सकता। एक दिन प्रतिक्रिया में उन्होंने उससे यही प्रश्न पूछ लिया तो प्रतिउत्तर में वह मनुवादी सवर्ण जातीय दंभ में बोला "मैं जन्मा हूँ ब्रह्मा के मुख से" "इसीलिए श्रेष्ठ हूँ"। वाल्मीकि ने आत्मविश्वास से जो कहा वह व्यंग्य का श्रेष्ठ उदहारण है–

ताज्जुब है!
मनुष्य का जन्म तो होता है
सिर्फ माँ के गर्भ से
फिर आप कैसे पैदा हो गये
ब्रह्मा के मुख से?[19]

ऐसे सीधे–सरल व्यंग्य की चोट बहुत मारक होती है! वाल्मीकि अपने लेखन में धार्मिक अनाचार, रूढ़ि–कुरीतियों के प्रबल आलोचक रहे हैं। वे अपने सामयिक जीवन व ऐतिहासिक घटनाक्रमों में दलितों के प्रति ब्राह्मणवादी मानसिकता को लेकर व्यथित–चिंतित रहे हैं। क्योंकि वे जानते थे "इतिहास की परिधियों से बाहर नहीं खड़े हुए अपनी इच्छा से" बल्कि उन्हें किसी ने ऐसा करने को बाध्य किया था। कौन थे वे लोग जिन्होंने उन्हें ऐसा करने पर विवश किया था? इस प्रश्न के उत्तर की तलाश में वाल्मीकि मिथकीय–पौराणिक कथाओं तक जाते हैं! उनके साहित्य में मिथकीय–पौराणिक संदर्भों का कुशल प्रयोग हुआ है। रामायण–महाभारत जैसे महाकाव्य या पौराणिक साहित्य जितने धार्मिक ग्रंथ हैं, उतने ही राजनीतिक ग्रंथ भी हैं। वे मनुवादी राजनीति के ब्लूप्रिंट हैं। सनातन या हिंदुत्व द्वारा दलितों–पिछड़ों–आदिवासियों–स्त्रियों पर सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने के महाआख्यान! अपनी अभिधा में लोकमंगलकारी, लक्षणा में मोक्षद्वारी और व्यंजना में

सांस्कृतिक वर्चस्ववादी! इनमें आर्यों द्वारा अनार्यों की हत्या, शोषण, उत्पीड़न के बीभत्स दृश्यों–प्रसंगों की पाखंडपूर्ण दिलचस्प कथाएँ भरी पड़ी हैं। बली, रावण, बालि, मारीच, खर–दूषण, पूतना, महिषासुर, शम्बूक आदि की हत्याएँ आर्यों की साजिशें हैं। प्रेमाग्रह पर कोई नाक–कान काटता है क्या? किसी की बहन के नाक–कान काटोगे तो भाई चुप बैठेगा क्या? शम्बूक तो न शासक थे, न ही हिंसक व्यक्ति। ऋषि थे वे। फिर उनकी हत्या क्यों? वह भी शांत क्षणों में बिना सोचे–समझे, बिना विचार–विमर्श किये! क्यों? वह हत्याकांड एक प्रश्न की तरह शताब्दियों से जनचेतना में सुरक्षित रहा है। वाल्मीकि इस समाज से थे। इसलिए समाज की स्मृतियों में बसे अन्यायपूर्ण पौराणिक–मिथकीय संदर्भों– प्रसंगों का अपनी कविताओं में सृजनात्मक प्रयोग करते हैं। मिथक सामूहिक चेतना से जुड़े होते हैं। उनके सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ होते हैं। कविता में मिथक–प्रयोग से अधिक उसके संदर्भ, अभिप्राय, व्यंजना, मंतव्य महत्वपूर्ण होते हैं। 'रुँधे हुए शब्द' कविता में वाल्मीकि ने राम द्वारा 'शंबूक ऋषि की हत्या' पर ज्वलंत प्रश्न उठाया–

क्यों नहीं आयी बाढ़ गंगा में?
क्यों नहीं उठकर बैठ गया अधजला मुर्दा
काशी के मणिकर्णिका घाट पर?
क्यों नहीं उमड़ा चक्रवात
महासागर की विस्तृत लहरों पर?
जब पुष्प वर्षा की थी देवताओं ने
तपस्वी की हत्या पर![20]

वे मनुवादियों को ही नहीं प्रकृति व देवताओं को भी कटघरे में खड़ा कर देते हैं ? 'इतिहास' कविता में वे यहाँ तक लिखते हैं कि "मेरी स्मृतियों में/राक्षस नहीं/डरावने देवता हैं"! वस्तुतः अन्याय क्रोध का जनक है, जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति आक्रोश है। उपर्युक्त पंक्तियों में वाल्मीकि के आक्रोश का मूल अन्याय है। "शंबूक का कटा सर" कविता में 'शंबूक' हाशिए के नायक बनकर उभरे हैं तो 'राम' मुख्यधारा के। कवि हाशिए के लोगों के प्रतिनिधि हैं। इसलिए उन्हें शंबूक के प्रति सहानुभूति है। जब कवि शांत क्षणों में होते हैं तो उन्हें लगता है टहनी पर लटकी असंख्य लाशें उनके कानों में भयानक चीत्कारें कर रही हैं। जैसे जमीन पर पड़ा शंबूक का कटा सिर उन्हें जकड़े हुए है। उन्हें लगता है वह कटा सिर उनसे चीख–चीखकर कह रहा है– "युगों–युगों से पेड़ पर लटका हूँ बार–बार राम ने मेरी हत्या की है।" यह बात उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना कवि का "पंख कटे पक्षी की तरह तड़प" उठना और लिखना "तुम अकेले नहीं मारे गये तपस्वी/यहाँ तो हर रोज मारे जाते हैं, असंख्य लोग/जिनकी सिसकियाँ घुटकर रह जाती हैं/अँधेरे की काली पर्तों में"। दरअसल कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ऋषि शंबूक को अपने युग के शोषितों–प्रताड़ितों का प्रतीक बनाते हैं–

यहाँ गली–गली में/राम हैं/शंबूक हैं
द्रोण हैं/एकलव्य हैं/फिर भी सब खामोश हैं[21]

अन्याय केवल शंबूक, एकलव्य के साथ ही नहीं हुआ बल्कि कर्ण के साथ भी हुआ। हालाँकि कर्ण सवर्ण थे। परंतु कवि ने 'तनी मुट्ठियाँ' कविता में उनके प्रति भी सहानुभूति प्रकट की– "अँधेरी रात में/किसी कर्ण की सिसकियाँ/रूँध–रूँध जाती हैं।" स्पष्ट है वाल्मीकि शोषित की जाति नहीं देखते बल्कि किसी के भी साथ हुए अन्याय के खिलाफ थे। संवैधानिक मूल्यों में आस्था रखने वाला व्यक्ति ही ऐसा होता है। शंबूक के साथ एकलव्य भी कविता में हैं। उन्होंने मिथकीय संदर्भों को वर्तमान से जोड़कर नए अर्थ–अभिप्रायों में प्रयुक्त किया। दलित कविता में मिथकों के प्रतीकात्मक प्रयोग की प्रवृत्ति साफ उभरी है। वाल्मीकि 'किष्किंधा' कविता में 'बालि' के आक्रोश को दलित–आक्रोश में रूपान्तरित करके कविता को विशिष्ट, प्रभावशाली बनाते हैं–

'मेरा अँधेरा तब्दील हो रहा है
कविताओं में/याद आ रही है मुझे
बालि की गुफा/और उसका क्रोध।'"[22]

वस्तुतः वे बालि–प्रसंग में प्रचलित धारणा को अर्धसत्य मानते हैं। उनके अनुसार–बालि एक राक्षस को मारने गुफा में गया था। उसने गुफा–द्वार पर सुग्रीव को खड़ा किया और स्वयं गुफा के अन्दर जाकर राक्षस से युद्ध किया। संघर्ष के दौरान गुफा से खून बहकर बाहर आने लगा, जिसे सुग्रीव ने बालि–वध समझा और गुफा–द्वार को भारी पत्थर से बंद करके बालि की राज्य–सत्ता को सपत्नीक हथिया लिया। सुग्रीव ने उससे छल किया। वाल्मीकि मिथकीय कथा की पुनर्रचना करके इस साजिश का पर्दाफाश करते हैं। उन्होंने लिखा उस दिन 'किष्किंधा'

जार–जार रोयी थी। क्योंकि बालि जननायक था। उसकी ताकत का लोहा राम तक को मानना पड़ा था। तभी वे उससे प्रत्यक्ष युद्ध का साहस नहीं जुटा पाए। उसने बलपूर्वक अवरोधक पत्थर हटाया और किष्किंधा पहुँचा। वहाँ उसने सुग्रीव को राज–स्थान पर "अधिकारी की मुद्रा" में पाया। बालि के जागने व किष्किंधा के काँपने का अर्थ स्पष्ट है। वहीं अंगद उसके द्वार पर पालतू कुत्ता बना खड़ा रहता है, जिसका रावण की सभा में कई योद्धा पैर तक नहीं हिला सके थे! कविता के निहितार्थ समझने कठिन नहीं। कविता बालि–प्रसंग को जिस कोण से देखती है वह सांस्कृतिक प्रतिरोध को नई दिशा देता है। वे अपने जननायकों की परंपरा की खोज करते हैं, जो भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्पद होगी। इसीलिए कविता की ये पंक्तियाँ "अंतस की गुफा में/बंद पड़े हैं असंख्य बालि/जो बाहर आएँगे किसी दिन/अवरोधक हटाकर" उम्मीद जगाती हैं।

वाल्मीकि की कविताओं में मिथक रचनात्मक भाषा के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। कई बार ये उनके संघर्षों की कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बने हैं। अर्थात् उन्होंने मिथकों से संदर्भों का काम लिया है। "खामोश आहटें" कविता में मिथक संदर्भ रूप में भी है, भाषाई रूप में भी। महाभारत के संदर्भ का प्रयोग देखें– कभी नहीं माँगी बलिश्त भर जगह और न ही माँगा आधा राज। बल्कि हमेशा न्याय और जीने का अधिकार माँगा। और माँगा थोड़ा–सा आकाश, पानी, सुख, चैन, धूप, हवा, रोशनी, किताबें, बचपन, अपनापन। परंतु उन्हें निराशा, अपमान, और उत्पीडन ही मिला, जिसे उन्होंने मिथकीय शब्दावली–प्रतीकों में ऐसे प्रयुक्त किया–

वे गोलबन्द होकर टूट पड़े/मैं अवाक्!
चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु की तरह/देखता रह गया।
मैं जला हूँ,/असंख्य लाक्षागृहों में
भोगी है नग्न–वेदना/द्रोपदी–चीर–हरण की।
रक्तरंजित खड़ा मैं/सुन रहा हूँ खामोश आहटें
आनेवाले महाभारत की।[23]

वाल्मीकि आने वाले महाभारत की खामोश आहटें इसलिए सुन सके क्योंकि उन्होंने देखा था कि मनुवादियों की गोलबंदी तब अधिक बढ़ती है जब वे "अपने पक्ष में बोलते" हैं! अवसरवादियों का "साथ चलने का दिखावा" तब तक ही रहा जब तक वे उनके पक्ष में बोले। ऐसी रणनीतियों–रणकौशलों से संघर्ष करने के तरीके अनुभव ही सिखाता है। "चुप्प रहना" कविता ऐसे ही अनुभवों से अस्तित्व में आई तभी वे समझे– "मैं जानता हूँ चुप्प रहना कितना मँहगा पड़ा है"!

वाल्मीकि की कविता लोक से भी ऊर्जा लेती है। 'कच्ची मुँडेर पर' हो या 'अखाड़े की मिट्टी' कविता, लोकसंवेदना से भरपूर हैं। इनमें लोक के रागात्मक संबंध और परिवेश जीवंत हुआ है। 'दंगल', 'ढोल', 'ताक धिना धिन', 'अखाड़ा की माटी', 'पाहुने', 'दहलीज, मुँडेर, बैल के खुर, रीत जैसी शब्दावली लोकजीवन से उनके गहरे रिश्ते की गवाही हैं। उर्दू का स्वाभाविक प्रयोग भी उन्हें जनसामान्य से जोड़ता है। "जोर–जबर की दहशत में/नहीं भटके शहर–दर–शहर" जैसी पंक्तियाँ इसकी सुंदर बानगी हैं। उनकी कविता के उत्स प्रगतिशील कविता से भी जुड़े हैं। वे स्वयं लोकवासी थे। लोक में धँसकर वे वहाँ से सशक्त भाषा, सहज अभिव्यक्ति अर्जित करते हैं। उनकी कविता में प्राकृतिक उपदान भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त होकर उसकी अभिव्यंजना में वृद्धि करते हैं। प्रकृति से गहरा आत्मीय रिश्ता उनकी कविता में अनेक स्थानों पर उभरा है। यह आत्मीय संबंध बचपन से ही साये–सा उनके साथ रहा था। "माँ भी अनपढ़, देहातिन/जिनकी उँगलियों में बसी थी गन्ध/मिट्टी और गोबर की"। वे धूप के माध्यम से सहज मानवीय रिश्ता प्रकट करते हैं। उसकी अदम्य शक्ति, मिलनसारिता और उसके सौंदर्यमय स्वरूप का जीवंत चित्रण 'आदिमरूप' कविता में हुआ–

धूप जो सुबह–सवेरे
छत पर आकर जागती है
बिना किसी तर्क के
उतर आती है चुपके–चुपके
सखी–सहेली की तरह
अदम्य शक्ति से भरी हुई।[24]

धूप के साथ हवा, अँधेरा, धुआँ, धरती, आकाश, पेड़, कबूतर, गाय, काले–अपाहिज दिन, बंद रोशनी, गीली जमीन, माटी उनकी कविताओं में प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। प्रकृति संगी–साथी–सी उनके साथ रही है। प्रकृति–चित्र उन्हें प्रगतिशील परम्परा ही नहीं, भारतीय परम्परा से भी जोड़ते हैं। उनकी 'पेड़' कविता विचारणीय है। गहरी अर्थव्यंजनाओं से लबरेज यह

कविता उनके संयम की बानगी है। पत्ते पेड़ का जीवन–व्यक्तित्व होने के साथ दलितों के प्रतीक हैं। उनके बिना पेड़ अर्थात् समाज का अस्तित्व ठूँठ है। ठूँठ का प्रयोग 'निराला', माखनलाल चतुर्वेदी ने कविताओं और भगवतशरण उपाध्याय ने कहानी में गहन संवेदनात्मक व्यंजना के साथ किया है। कहीं ठूँठ में आत्मानुभूति है तो कहीं ठूँठ पर कोयल की पुकार स्वतंत्रता की चाह सी है। कहीं ठूँठा आम पारिवारिक विघटन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी बना है। वाल्मीकि की कविता में 'ठूँठ' शोषक शक्तियों के लिए चेतावनी सरीखा है।

पेड़/तुम उसी वक्त तक पेड़ हो
जब तक ये पत्ते/तुम्हारे साथ हैं
पत्ते झरते ही/पेड़ नहीं ठूँठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे![25]

शिल्प के संयमित प्रयोग से वाल्मीकि की कविता के तट सुरक्षित और प्रभावी हो गए हैं। उनकी कविता के बिम्ब काव्य–वस्तु की तरह अद्‌भुत, करुण व मौलिक हैं। ये बिम्ब समाज से जुड़े हैं। 'कच्ची मुंडेर पर' कविता के बिम्ब लड़की की दशा को बयाँ कर देते हैं। ये बिम्ब अपने आप में प्रश्न हैं कि 'कबूतर–सी लड़की स्वप्न भरी आँखों में दहशत क्यों बुनती है'? क्यों 'गलियारे की गर्द दहलीज से लिपटकर हलाक हो जाती है'? क्यों 'मुंडेर से फिसलकर आँसू कीचड़ में तब्दील हो जाते हैं'? इन प्रश्नों के अर्थ हमारे सामाजिक परिवेश भारतीय कानून व्यवस्था की वास्तविकता में छिपे हैं। पितृसत्तात्मक समाज भी इसके निमित्त हैं। "अँधेरे की नदी" कविता के बिम्ब बिना कहे ही अनकहे को व्यक्त कर देते हैं। कुछ इसी तरह के अनुभव 'रुँधे हुए शब्द' कविता के बिम्बों की संरचना में भी मौजूद हैं–

मुर्दा–संस्कृति की लाश पर
मंडराती चील जश्न मनाएगी
जिसके पंखों के साये में
संस्कृति का तकिया बनाकर
शिकारगाह में अधलेटा आदमखोर
निकाल रहा है/दाँत में फँसे मांस के रेशे
नुकीले खंजर से।[26]

वाल्मीकि समतामूलक समाज के स्वप्न के कवि हैं। वे जातिविहीन समाज के पक्षधर थे। वे ऐसे समाज का स्वप्न देखते हैं जिसमें सभी स्वतंत्र हों और अपनी स्वतंत्रता का निडर–निर्भय होकर उपभोग करें। जहाँ सभी समान हों। जहाँ न्याय समदर्शी ही नहीं, तत्वदर्शी भी हो। 'वह दिन कब आयेगा' कविता में उन्होंने लिखा यदि ऐसा हो गया तो जातीय हीनता के दंश नहीं चुभेंगे "नहीं मारा जायेगा तपस्वी शंबूक"; न ही "कटेगा अंगूठा एकलव्य का"; "कर्ण होगा नायक" और "राम सत्ता लोलुप हत्यारा"! वे निद्वन्द्व–निर्भय होकर पूछते हैं "क्या ऐसे दिन कभी आयेंगे?" जब बामनी नहीं जनेगी बामन/चमारी नहीं जनेगी चमार/भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी[27]

वाल्मीकि यह भी समझते थे कि व्यक्ति की जरुरत केवल रोटी, कपड़ा और मकान ही नहीं है, बल्कि सुकून के साथ जीना भी है। सुकून मिलता है खुले, स्वतंत्र, स्वच्छंद समाज में या ऐसी प्रकृति में जो प्रतिबंधित क्षेत्रों में शामिल न हो। "प्रतिबंध" कविता में उनके इन्हीं मनोभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है–

मेरी जरूरतों में/सिर्फ एक जोड़ी जूता
कुछ कपड़े/दो वक्त की रोटी
सर ढ़कने की छत ही नहीं/एक नदी भी है
जिसकी रेतीली तट पर/पा सकूँ सुकून पल भर[28]

सुकून की तलाश जातिवादी–अंधराष्ट्रवादी–अलोकतांत्रिक–हिंसक–सांप्रदायिक समाज में पूर्ण नहीं हो सकती। स्वयं से पूछें क्या भारतीय समाज में सभी वर्गों–वर्णों–धर्मों के लोगों और स्त्रियों के लिए ऐसी स्थितियाँ सहज उपलब्ध हैं? वस्तुतः 'प्रतिबंध' कविता भारतीय राजनीति के नैरेटिव की सीमा उजागर करते हुए उसे सामाजिक न्याय, बंधुता, समतामूलक समाज के नैरेटिव से जोड़ना चाहती है, जिसकी ओर सत्ताधारियों ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। वाल्मीकि मानवीय समाज का स्वप्न देखते हैं। ऐसा करके उन्होंने "खोजना चाहा है एक रास्ता/अपने लिए/उनके लिए/जो तरसते हैं जीवन भर/किसी पगडंडी के लिए/जहाँ वे बचा सकें/अपने तलवों को जख्मी होने से"[29]

'इन अपाहिज दिनों में' कविता की ये पंक्तियाँ कवि के विजन की अभिव्यक्ति हैं, तो 'शब्द साथ नहीं देते' कविता उनकी संवेदनशीलता की परिचायक। वे लू, सर्दी, बाढ़ में बेबस लोगों का दर्द महसूसते हैं। वे महसूसते हैं फटे कम्बल और सर्द मौसम का रिश्ता। उन्हें धुँधली आँखों से अँधेरे में थकी–हारी उँगलियों से माचिस तलाशती बूढ़ी स्त्री की लाचारी द्रवित करती है। कई बार

भावनाओं की अतिशयता में "शब्द साथ नहीं देते"। वे शब्दों के "गुमसुम तरीकों" के नहीं उनकी "मानुष गंध" के कवि हैं। उनके शब्द भद्रजनों की शालीनता पर सख्त टिपण्णी हैं, जिनसे भद्रजन डरते हैं। दरअसल भद्रजन शब्दों को तितली बनाना चाहते हैं जबकि तितली बन जाने पर क्या होगा उससे बेखबर हैं वाल्मीकि और उनकी कविता के शब्द। इसीलिए वे लिखते हैं "बसन्त को मरे तो युग बीत गये"। उन्हें चिड़ियों का चहचहाना, बच्चों का खिलंदडपन, उनकी शरारतें, नदियाँ, उनका बहता पानी, चप्पू चलाता मल्लाह, उसके जिस्म से टपकता पसीना, पहाड़, बर्फ से ढँकी चोटियाँ, घर लौटते थके–माँदे पहाड़वासी, उनके खच्चर, समंदर, उमड़–घुमड़कर बरसते बादल, पेड़, पेड़ों का हरापन अच्छे लगते हैं। इनसे भी ज्यादा उन्हें अच्छे लगते हैं वे लोग जो खेतों में मौसम से लड़ते हैं। अर्थात् किसान–मजदूर। उन्हें वे लोग भी अधिक अच्छे लगते हैं, जो हँसते–खिलखिलाते हैं और "नफरत नहीं करते आदमी से सपने में भी!" उन्हें मानवीय संवेदनाओं से भरपूर लोग पसंद हैं। इन्हीं लोगों से उन्हें विश्वास मिलता है कि 'शब्द एक न एक दिन धूप बनकर पृथ्वी पर उतरेंगे!' यदि ऐसा हुआ तो उनकी सुकून की तलाश भी पूरी हो जाएगी।

संदर्भ

1. https://rajkamalprakashan.com/ab-aur-nahin.html
2. वसुधा–87, प्रधान संपादक – कमला प्रसाद, वर्ष–7, अंक–3, पृष्ठ–24
3. बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ–13
4. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ–7
5. अब और नहीं...!, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ–13
6. सदियों का संताप, ओम प्रकाश बाल्मीकि पृष्ठ–7
7. बस्स! बहुत हो चुका पृष्ठ–76
8. वही, पृष्ठ–79
9. वही, पृष्ठ–101
10. सदियों का संताप, पृष्ठ–7
11. बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ–52
12. वही, पृष्ठ–43
13. सदियों का संताप, पृष्ठ–41
14. बस्स! बहुत हो चुका, 59
15. सदियों का संताप, पृष्ठ–19
16. वही, पृष्ठ–41
17. अब और नहीं...!, पृष्ठ–12
18. बस्स! बहुत हो चुका, 49
19. वही, पृष्ठ–52
20. वही, पृष्ठ–47
21. सदियों का संताप, पृष्ठ–26–27
22. अब और नहीं..., पृष्ठ–23
23. बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ–61–62
24. वही, पृष्ठ–
25. https://www.hindwi.org/kavita/ped.omprakash.valmiki.kavita
26. ओमप्रकाश बाल्मीकि पृष्ठ–46
27. वही, पृष्ठ–103
28. अब और नहीं..., पृष्ठ–59
29. वही, पृष्ठ–65

**सहायक आचार्य/प्रभारी, हिन्दी विभाग,
डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम शासकीय
महाविद्यालय, संघप्रदेश दादरा एवं नगर
हवेली, सिलवासा–396230,
ईमेल–shah2971983@gmail.com**

17

उत्तर औपनिवेशिक अंधेरे का आख्यान 'शहर से दस किलोमीटर'

❖ डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा

'शहर से दस किलोमीटर' नीलेश रघुवंशी का दूसरा उपन्यास है। यह अपने कलेवर और कथ्य की दृष्टि से उत्तर औपनिवेशिक अंधेरे का आख्यान है। वर्तमान समय में जो सामाजिक अंधेरा हमारे चारों ओर फैला हुआ है, यह उपन्यास उसे प्रकाशित करने की एक व्यापक और अर्थपूर्ण कोशिश है। आज के समाज में देखें तो एक तरफ तो प्रकाश ही प्रकाश है, और दूसरी तरफ अंधेरा ही अंधेरा है। अंधेरे की तरफ अंधेरा बढ़ता ही जा रहा है और प्रकाश की तरफ प्रकाश बढ़ता ही जा रहा है। अर्थात् जिनके जीवन में अंधेरा ठहरा है, उनके जीवन में अंधेरा बढ़ रहा है लगातार बढ़ता ही जा रहा है। यह उपन्यास इसी विसंगति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है और वर्तमान व्यवस्था को प्रश्नांकित करता है।

उत्तर उपनिवेश काल ने भारतीय और वैश्विक परिदृश्य को बदलकर कुछ इस तरह से बना दिया है, जिसमें एकदम नया सामंतवाद उभरकर के सामने आया। यह सामंतवाद उपनिवेशवादी सामंतवाद की तरह दिखाई नहीं देता बल्कि अदृश्य रहता है। इसमें कोई राजा भी नहीं है, फिर भी उत्तर उपनिवेश काल नव सामंतवाद का दौर है। नए राजतंत्र की आहट है।

वर्तमान उत्तर उपनिवेशवादी दौर में सीमांत लोग सबसे अलग–थलग हैं। वे अपने जीवन में इतने अस्त–व्यस्त और दुखी हैं कि उनकी सामान्य से भी सामान्य इच्छा को यह समय पूरा नहीं कर पा रहा है। इनके लिए एक छोटा–सा घर, एक प्रेमपूर्ण समाज में जगह, जिंदगी में सुख, जिंदगी में माता–पिता की नजरों में खरा उतर पाना और खुद की मेहनत से अपना एक छोटा–सा परिवार बना पाना बहुत कठिन है। बल्कि यह कहा जाए कि यह इनके लिए दूसरी दुनिया की बातें हैं तो सही होगा।

आज हमारा देश प्रगति और विकास के दावों के साथ अनेक शिखरों को स्पर्श कर रहा है ऐसे समय में यह प्रश्न बार–बार उठता है कि जब हर तरफ विकास है, तो आदमी दुखी क्यों है ? अपने आपको इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में अलग–थलग क्यों पाता है ?

नीलेश रघुवंशी एक स्थान पर लिखती हैं – यथा ''हम विरोधाभासों से भरे देश में रहते हैं। देश में इतनी असमानताएं हैं कि वे भी घबराती हैं कि आखिर एक ही जगह कब तक रहें। उन्हें अपने होने का अर्थ खुद समझ नहीं आता। वे खत्म होने को होती हैं कि जाने कौन उनके मुँह में अमृत की बूंद डाल देता है।''[1] पृष्ठ–156 और उन्हें अमर कर देता है। असमानताएं अमर हैं।

जब समय की गति बदलती है तो अंधकार की ओर प्रकाश भी आता है। मनुष्य के द्वारा निर्मित समाज में जिस तरफ पहले से ही अंधकार है, उस तरफ लगातार अंधकार बढ़ता ही जा रहा है। अंधकार के तरफ के लोगों के लिए प्रकाश की कल्पना कर पाना बहुत कठिन है। यह एक ऐसा दौर है, जिसमें हम एक ऐसी व्यवस्था के गुलाम हैं जो– 'अर्थ आधारित है।' अर्थ आधारित व्यवस्था में उन्हीं चेहरों को याद किया जाता है, जिनके पास धन अधिक है।

प्रश्न यह उठता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसा क्यों है कि आम आदमी का चेहरा उदास है? क्यों आम आदमी का ही पेट खाली है ? आम आदमी के ही तन पर कपड़े नहीं हैं ? उपन्यासकार नीलेश रघुवंशी का नवीनतम उपन्यास– 'शहर से दस किलोमीटर' ऐसे ही

कुछ लोगों के जीवन की कहानी है। जो स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र होने का व्यापक अर्थ अभी तक समझ नहीं पाए हैं।

यह उपन्यास बदलते समय के साथ–साथ उपन्यास के ढांचे को भी तोड़ता हुआ आगे बढ़ता है। इसमें एक ही सूत्र में आगे बढ़ने वाली कहानी नहीं है बल्कि ऐसी कहानियां हैं जो एक सूत्र से बंधी हुई हैं। यह जीवन के विविध रंगों की कहानियां नहीं हैं बल्कि जीवन में संघर्षरत ऐसे लोगों की कहानियां हैं जो किसी तरह से बस जीवन जी रहे हैं। इसके अलावा या इससे अधिक इनके पास कुछ भी नहीं है।

'बंजड़ हेंगी', 'छतरी वाला टपरा', 'भैया मारेगा', 'मंडी में किसान', 'चक्की', 'बेघर का घर', 'लाइटवाला', 'थाली से एक चीज कम होती जाती है', ये कहानियां भोपाल शहर में रहने वाले सीमांत लोगों के दुख या यह कहें हाहाकार की गाथाएँ हैं। इस उपन्यास में भोपाल मात्र एक सूत्र है, शहर है। इस उपन्यास में वर्णित शहर हमारे देश का कोई भी शहर हो सकता है। जिसमें हमें ठीक इसी तरह का जीवन जीने वाले लोग मिल जाते हैं। जो शहर में तो रहते हैं लेकिन शहर के नहीं होते हैं। चाहकर भी वह शहर इन्हें अपना नहीं पाता है। एक अच्छी जिंदगी की तलाश में ये लोग शहर की ओर आते हैं लेकिन शहर में 'बस जाने का दम' इनके पास बिल्कुल भी नहीं है। इसलिए शहरी जिंदगी के 'उर्वर प्रदेश' में भी इनका जीवन 'बंजर' ही है।

उपन्यास में कथा सूत्र सघन है। साइकिल के दो पहियों के माध्यम से इस तरह से कसा हुआ है कि जिस तरह से जीती जागती साइकल चलती है, ठीक उसी तरह से इस उपन्यास की कथा चलती है। इस उपन्यास में कथा सूत्रधार जो इस पूरे कथानक को अपनी आँखों से देखकर प्रस्तुत करती है, वह किसी के लिए 'बेटी' है तो किसी के लिए 'साइकिल वाली बाई'। वह 'शहर के दस किलोमीटर' के बाद और शहर के अंदर की जिंदगी को अपनी धड़कन से जीती हुई चलती हैं। उसकी आँखों से देखी हुई उसके द्वारा निर्मित यह दुनिया उसके ही जैसे लोगों से निर्मित है।

मैं इस उपन्यास में चलती हुई साइकिल को समय मानता हूँ। समय जो अहर्निश चलता रहता है। लेकिन इस उपन्यास में चाहे वह 'बंजर जमीन वाली अम्मा हो' या 'बंजर जमीन वाले दादा' या फिर शहर में काम करने वाली वह 'बाई' हो जिसे कॉलोनी के सभी मजदूरों के सुख–दुख का पता है, या 'बेघर पवन' जो किस्तों से चलने वाली बुलेरो कार को ही अपना घर बनाए हुए है, इनका जीवन एकदम से ठहरा हुआ है। एक ही केंद्र पर। जहां जीवन की सड़ांध है। जहां जीवन का एक ऐसा क्षेत्र है जिस तरफ मात्र सूखा ही सूखा है, तरलता है ही नहीं। भोपाल शहर जिसे हम इस उपन्यास का नायक मान सकते हैं, इस उपन्यास में उसकी हताशा है, उसका टूटन है, और उसका बिखरापन है।

शहर में अनेक घर हैं। उनमें से किसी में भी रहने के लिए पवन के पास आर्थिक समर्थता नहीं है कि वह कोई घर किराए से ले ले। एक घर बनाने का जो सपना है, वह देखता है। वह कब पूरा होगा ? यथा– ''पवन रात–दिन उनींदे सपनों में खोया रहता है। जब वह शहर में साबुत घरों को टूटते देखता है, तो अवाक् रह जाता है। एक हूक उसके भीतर उठती है– ''आखिर लोग कैसे बने बनाए घर को तोड़ सकते हैं। थोड़ी बहुत मरम्मत तो समझ में आती है लेकिन बने बनाए साबुत घर को फिर से बनाने के लिए कोई कैसे तोड़ सकता है ? आखिर इनके पास इतना पैसा आता कहां से है ? किस मिट्टी के बने हैं कि ढहती हुई मिट्टी को देख इनके बाहर और भीतर कुछ भी ढहता नहीं है ?

घर के ढहते ही पवन के भीतर मलमा जगह बनाने लगता है। उसके भीतर टूटते घर का एक कोना बचता है। टूटते घर के ढहते ईट–गारे से वह अपना घर बनाना चाहता है।''[2] यह परिस्थिति की कैसी विडंबना है कि एक तरफ तो लोगों के पास घर ही नहीं है, और दूसरी तरफ लोग बने बनाए घर को तोड़कर दूसरा घर बना रहे हैं। टूटते हुए घर को देखता हुआ व्यक्ति ठीक उसी तरह से हो जाता है– जैसे भूखे आदमी के सामने कोई कुत्ते को रोटी खिलाए।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में पहला कर्तव्य जनता के सुख का है। आम आदमी की आँख में रोशनी भर देने का है। उसके सपनों को पूरा करने का है। लेकिन विसंगति और विडंबना यह है कि आज आम आदमी की थाली से एक एक चीज लगातार कम होती जा रही है। जीने की मूलभूत आवश्यकताएँ भी उसे बहुत कठिनता से मिल पाती हैं। आम आदमी के साथ ऐसा

खेल खेला जा रहा है कि वह केवल जी सके। उसके पास इतना ही है। जीवन को अच्छे से जी सके इतना उसके पास नहीं है। यथा– ''जीवन का सपना क्या है? 'पेट भर जाए बस और क्या' कहते सब एक साथ खिलखिलाते हुए जोर से हंस पड़े। ऐसी हँसी, जिसे हँसने और सुनने के लिए कलेजा चाहिए।''[3] मुरझाए हुए चेहरे और सूखे होठों की हंसी लिए जीवन जीते हुए लोग आखिर क्यों हमारे समाज में हैं? क्यों उनके साथ ऐसा खेल खेला जा रहा है कि– 'पूंजी रूपी अदृश्य राजा' अपना फरमान सुनाता है और इनके जीवन में दुखों की बाढ़ आ जाती है, सुख के क्षेत्र में सूखा पड़ जाता है।

उत्तर औपनिवेशिक समय में आम आदमी धनिक वर्ग का उपनिवेश हो गया है। वर्तमान समय में जाति आधारित व्यवस्था भले ही कुछ हद तक टूट गई हो लेकिन अब एक ऐसी व्यवस्था का जन्म हो रहा है जिसमें पूंजी का साम्राज्य है। और इस साम्राज्य की प्रजा है, धनहीन समाज के लोग। इनके सपनों को बखूबी रौंदा जा रहा है। इस विषय को व्यापकता और गहराई से रखता है नीलेश रघुवंशी का 'शहर से दस किलोमीटर' उपन्यास।

यह हमारे सामने अनेक प्रश्न खड़े कर देता है। क्या स्वतंत्रता के बाद आम आदमी को उतना मिला है जितना उसे मिलना चाहिए था ? हर बार आम आदमी ही क्यों व्यवस्था की चपेट में आ जाता है ? हर बार उसे ही क्यों खाली पेट सोना पड़ता है ? ऐसे प्रश्नों का जवाब सदियों से ना व्यवस्था के पास है, ना सरकार के पास है। और सीमांत समाज के लोग अपने दुखों के सागर में डूबने और उतराने के लिए अभिशप्त हैं। यह उपन्यास इसका जीता जागता उदाहरण है।

इस उपन्यास के उदाहरण हैं वे किसान जो बंजर जमीन के मालिक हैं। वे दुखी हैं। जिनके पास थोड़ी बहुत खेती भी है, जो मंडी में जाकर अपना सामान बेचना चाहते हैं, लेकिन मंडी में होने वाली किल्लत को सुनकर के ही वह मंडी नहीं जाना चाहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि किसान मंडी में क्यों जाएँ? अपनी फसल लेकर। क्यों सरकार किसान के पास उसकी फसल उचित दाम पर खरीदने के लिए नहीं आती ?

शहर में धनिक वर्ग के घरों में काम करने वाले लोग, द्वार पर खड़े हुए सिक्योरिटी गार्ड, घरों में काम करने वाली बाइयाँ, किस्त पर कार लेकर किसी तरह से जीवन बिताने वाले लोग, सरकारी जमीन पर टपरे वाला घर बनाकर रहने वाले लोग, जिनका घर अतिक्रमण हटाने वाला दस्ता किसी भी समय गिरा सकता है, शहर में स्कूल की बड़ी–बड़ी इमारतों को देखने वाले लोग, जिनके जीवन में शिक्षा का आगमन अभी नहीं हुआ है, जिनके लिए शिक्षा का सपना देखना भी अभी पाप है। साइकिल पंचर सुधारने की दुकान में बैठे हुए लोग। और ऐसे ही, इसी तरह के अन्य लोग, इनके जीवन में कुछ तो है, लेकिन कुछ भी नहीं की तरह। यह उपन्यास इन्हीं के जीवन पर आधारित एक मुरझाया हुआ गुलदस्ता है, इन फूलों में खुशबू कब आएगी ? इसी आशा से यह लिखा गया है।

जिस तरह से असमय किसान के खेत में गाजर घास का जन्म हो जाता है और वह पूरे क्षेत्र में अपना वर्चस्व जमा लेती है। उसके आगे और पीछे कुछ भी दिखाई नहीं देता। नीलेश रघुवंशी के इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि गाजर घास की तरह इनके जीवन में गरीबी उग आई है। और इनके जीवन को बंजर बना दिया। और गाजर घास के गंधहीन सफेद फूलों से इनका जीवन भर गया। जिनमें ना किसी तरह की खुशबू है और ना ही किसी तरह का प्यार, जिसमें यह अपना जीवन जी सकें। सुविधाओं से संपन्न वर्ग कुंडली मारे बैठा हुआ है इसलिए सीमांत जीवन जीने वाले लोगों का जीवन व्यापक रूप से कष्टमय हो गया है। लोकतंत्र तो आ गया है लेकिन आज तक इस बढ़ते हुए लोकतंत्र में सुख का बँटवारा नहीं हो पाया।

आम आदमी के जीवन से चीजें किस तरह से खिसकती चली जा रही हैं, आम आदमी के थाली से हर दिन एक चीज कम होती जा रही है। इसको हम साईकिल के मिथक से समझ सकते हैं। 'साइकिल वाली बाई' स्वयं एक निर्धन परिवार से है। उसे साइकल प्रिय है। बचपन में उसके पास साइकल नहीं थी। तो किसी से उधार मांगकर उसने सीखा था। साइकिल से वह चांद तक की यात्रा कर लेना चाहती है। आज अब उसके पास एक सामान्य साईकिल है लेकिन जिस तरह से संसद आज एलीट वर्गों का व्यायाम केंद्र बन के रह गया है। उसी तरह से साइकल अब एलीट हो गई है। संभ्रांत हो गई है। और आम आदमी की पकड़ से बाहर होती

चली जा रही है।

जहां पहले साइकिल बहुत कम कीमत पर मिलती थी। आज उसकी कीमतें आसमान को छू रही हैं। उच्च वर्ग के लोगों के द्वारा व्यायाम में प्रयोग किए जाने के कारण विविध प्रकार कि सुविधाजनक साइकिल का निर्माण हो रहा है। इसके कारण आम आदमी से साइकिल दूर होती चली जा रही है। सामान्य साइकिल और संभ्रांत साइकल में क्या अंतर है– इस संबंध में लेखिका लिखती हैं– ''अगर बगल से सामान्य साइकिल गुजर जाए, तो एक देश में दो चार देश दिखाई देने लगते हैं। शहर का चेहरा बिगड़ने लगता है। सामान्य साइकिल तो हाशिए पर, कच्ची सड़क पर चल रही है.....।[4] साइकिल के मिथक से लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस देश में असमानता के अनेक स्तर हैं, आम आदमी के जीवन मे असमानता विभिन्न स्तरों पर है। अभिजात या धनवान लोगों का अलग स्तर है, आम आदमी का अलग। अभिजात के बगल से आम आदमी गुजर जाए तो देश का चेहरा बिगड़ जाता है। एक साथ आम आदमी और अभिजात्य लोग जब साइकिल चलाते हुए दिखाई दे जाते हैं तो पता चलता है एक ही देश में दो, चार देश कैसे निवास करते हैं ? जिसमें एक देश धनवान है और शेष अन्य गरीब हैं।

लेखिका ने एक जगह स्वयं लिखा है– 'यह कभी ना खत्म होने वाला आख्यान है।' मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ। यह अनंत समय की गाथा है। इसका कारण यह है कि समाज में ऐसे लोग जिन लोगों की इस उपन्यास में गाथा है, हमारे आसपास हर जगह दिख जाते हैं। सहजता से, जीवन से लड़ते हुए।

ये लोग जीवन से टूटे नहीं हैं, जीवन से संघर्ष कर रहे हैं कि शायद कभी समय का पहिया इनकी ओर घूमे और इनके जीवन में सुख लौटे। इसको इस उदाहरण से समझा जा सकता है। शहर की एक कॉलोनी में काम करने वाली बाई जिसे सब लोग अम्मा कहते हैं। उसने उन सभी घरों में जिनमें वह काम करती है कह दिया है कि जिस तरह से तुम लोगों को प्रत्येक रविवार छुट्टी मिलती है वह छुट्टी हमें भी मिलनी चाहिए। यदि इन छुट्टियों में हम काम करेंगे तो हमारा वेतन अलग से बनेगा। आपकी जबरदस्ती अब हम पर नहीं चलेगी।

यह उपन्यास असंगठित क्षेत्र का आख्यान है। जिस पर सरकार की भी निगाह नहीं जाती है। और कोई भी सुगठित योजना इस क्षेत्र के लिए सरकार द्वारा नहीं बनाई जाती है। इस उपन्यास से यह ध्वनित होता है कि अब समय आ गया है कि ऐसे लोगों का जीवन भी बदलना चाहिए।

उपन्यास की काव्यमय भाषा इसका व्यापक आधार है। इसी कारण से यह उपन्यास व्यापक रूप से ग्राह्य है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से मैं इसे उत्तर आधुनिक विचारधारा का उपन्यास मानता हूँ। जिस तरह से आज विविध अस्मिताओं के उठने का समय है, उसी तरह से यह उपन्यास अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हुए हमें यह विचार करने पर मजबूर कर देता है कि आज जब हम सूचना प्रौद्योगिकी की दुनिया में जी रहे हैं, सुबह का नाश्ता भारत में और शाम का भोजन अमेरिका में करते हैं, ऐसे भागते हुए समय में ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें जीवन के सुख की एक किरण भी प्राप्त नहीं हुई है। अब उनके बारे में भी विचार किया जाना चाहिए। एक बेहतर जनवादी नवीन सौंदर्यशास्त्रीय उपन्यास के लिए मैं नीलेश रघुवंशी को बधाई देता हूँ।

संदर्भ

1. 'शहर से दस किलोमीटर', (उपन्यास) – लेखिका – नीलेश रघुवंशी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110 002, ISBN : 978–9392757907 – संस्करण – जनवरी – 2022 – पृष्ठ – 156
2. वही, पृष्ठ –175
3. वही, पृष्ठ –185
4. पृष्ठ – 241

कवि एवं उपन्यासकार, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय एवं शोध अध्ययन केंद्र, सतना, (मध्य प्रदेश) – 485001

पूर्व सह – अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास, समरहिल, शिमला – 171005

ईमेल – dr-vinod.vishwakarma@gmail.com,

मोबाइल : 09424733246

****

18
स्वाधीनता आंदोलन और पहला गिरमिटिया

❖ पटेल श्रुति एम.

भारतीय राष्ट्रवाद,कुछ सीमा तक उपनिवेशवादी नीतियों तथा कुछ सीमा तक उस नीति की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ही उभरा है। अंग्रेजी औपनिवेशिक शासकों ने भारत में अपनी सत्ता दृढ़ करने तथा भारत के आर्थिक शोषण के लिए राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक तथा भौतिक सभी क्षेत्रों में तकनीकी पद्धतियों का ही प्रयोग किया। जिसे आधुनिकीरण ने कुछ न कुछ प्रभाव उत्पन्न किए और एक प्रभाव राष्ट्रवाद के स्वरूप में उदय हुआ।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रचलन से आधुनिक पाश्चात्य विचारों को अपनाने में सहायता मिली। जिससे भारतीय राजनीतिक सोच को एक नई दिशा मिली। पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए किया गया था। परंतु इससे नवशिक्षित वर्ग के लिए पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा के द्वार खुल गए थे। राष्ट्रवाद की उन तेज लहरें ने जो समकालीन समस्त और यूरोपीय देशों तथा दक्षिणी अफ्रीका को प्रभावित कर रही थी। उसने भारतीय राष्ट्रवाद में भी नई चेतना जगाई। यूरोप में भी यूनान तथा इटली के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में आयरलैंड के स्वतंत्रता संग्राम में विशेषतः भारतीयों के मनोभाव को अत्यधिक प्रभावित किया। सुरेंद्रनाथ बनर्जी तथा लाला लाजपत राय ने मजीली तथा उसके द्वारा आरंभ किए गए तरुण इटली आंदोलन पर तथा गैरीबाल्डी और कार्बोनरी आंदोलन पर व्याख्यान दिए तथा लेख लिखे। इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रवाद ने उभरते हुए भारतीय राष्ट्रवाद को प्रभावित किया।

किसानों ने अपनी दुर्दशा का कारण केवल जमींदारों को मानना छोड़कर, अंग्रेजों की दमन नीतियों को माना। यही कारण है कि विश्व सदी में यह आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े। 19वीं शताब्दी के शिक्षित भारतीयों ने कुछ पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान के प्रकाश में ज्ञान प्राप्त किया। अपने धार्मिक विश्वासों,रीति–रिवाजों तथा सामाजिक प्रथाओं का उन्होंने परीक्षण करने का आरंभ कर दिया। इसके फलस्वरूप ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसॉफिकल सोसायटी तथा रामकृष्ण मिशन आदि अस्तित्व में आए, जिन्होंने हिंदू धर्म में सुधार किए। इन संस्थाओं में अखिल भारतीय भावनाएं प्रथा राष्ट्रवाद उभरता नजर आता है। कई संस्थाओं की स्थापना हुई। उन्होंने भारत की राजनीतिक सामाजिक अधिकारों की मांगों को रखना शुरू किया। कांग्रेस की स्थापना 1885 में महत्वपूर्ण मानी जाती है। परिणामस्वरूप लोगों ने स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा के सिद्धान्तों को समझा और इन्हीं मूल्यों पर भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अपना बलिदान दिया।

नवजागरण मात्र सांस्कृतिक,सामाजिक व धार्मिक आंदोलन नहीं था बल्कि, अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता के शोषण के विरुद्ध विद्रोह था। इसलिए भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन को एक दूसरे से अलग नहीं देखा जा सकता।

स्वाधीनता आंदोलन में महात्मा गांधी जी का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने भारतीय राजनीति में एक नई विचारधारा का सूत्रपात किया। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस आंदोलन एक सार्वजनिक आंदोलन बन गया। प्रथम विश्वयुद्ध के फलस्वरूप आत्म निर्णय की भावना को बहुत शक्ति मिली। युद्ध में कांग्रेस ने राज भक्ति का पर्याप्त परिचय दिया। महात्मा गांधी ने स्थान स्थान पर जाकर लोगों को सेना में भर्ती होने की और युद्ध के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। भारतीय स्वतंत्रता के सैनिक के रूप में उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता था। वह तो सक्रिय राजनीतिक थे। जो राजनीतिक हितों के लिए सत्य और अहिंसा के साधनों का ही प्रयोग करते थे। व पशु बल को आत्मिक बल से

जीत लेते थे। उन्होंने 1920–22 के 'असहयोग आंदोलन', 1930–34 के 'सविनय अवज्ञा आंदोलन', 1940–41 'निजी सविनय अवज्ञा आंदोलन' और 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि भारत की स्वतंत्रता न्याय पूर्ण है। उन्होंने कानूनी और गैरकानूनी दोनों ही ढंग अपनाए परंतु अनैतिक और झूठे ढंगों का प्रयोग नहीं किया।

गांधी एक अद्वितीय राष्ट्रीय मूर्ति थे। वह एक भविष्यवक्ता,एक हिंदू धर्म सुधारक, एक समाजसुधारक और एक राष्ट्रवादी व्यक्ति थे जो भारतीय स्वतंत्रता के लिए लड़ने के लिए अग्रसर थे। वह जातिवाद और अस्पृश्यता रहित बराबरी की भावना वाले समाज निर्माण के पक्षधर थे और राष्ट्रवादी के रूप में प्रजातंत्र, निजी और राष्ट्र की स्वतंत्रता के हिमायती बन गये।

स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव हिंदी साहित्य जगत में भी देखने को मिलता है। उपन्यास, कहानी, नाटक में भी इन परिस्थितियों को चित्रित किया गया है। गिरिराज किशोर का महत्वपूर्ण उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' 19वीं और 20वीं सदी के दक्षिण अफ्रीका की सामाजिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है, क्योंकि गिरिराज किशोर ने गांधीजी के जीवन को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास में गांधीजी के विदेशगमन से लेकर स्वदेश लौटते वक्त तक के जीवन को दर्शाया गया है।

इस उपन्यास का सीधा नाता भारत के लोगों की परिस्थितियों से ताल्लुकात रखता है। भले ही यह उपन्यास आजादी के बाद लिखा गया उपन्यास हैं, लेकिन उपन्यास की प्रत्येक घटनाएँ मार्मिकता से लिखी गई है। 'पहला गिरमिटिया' उपन्यास में भारतीय गिरमिटिया बनकर जो विपत्तियों का सामना कर रहे थे, जिसमें–रंगभेद, भाषा, रहन–सहन, खानपान, असुविधा और अधिकार का चित्रण किया है।

दक्षिण अफ्रीका के दौरे में मोहनदास ने रेलयात्रा के दौरान रंगभेद नीति का सामना किया था। रात को घूमने पर और कोर्ट रूम में अपमानित करने की घटना को चुपचाप सहन कर लेते थे। गोरे अधिकारियों ने मोहनदास को अपमानित करते हुए कहा था कि ''तुम गंदे और भ्रमित लोग हम लोगों की बराबरी करना चाहते हो तुम गंदे कीड़ों की तरह हो, उसको यह हमारी वॉलमन चाहत है कि तुम्हें यहाँ रहने दिया जा रहा है।''[1]

गांधीजी के जीवन में इस तरह की अनेक घटनाएं घटित होती रहती हैं। कोर्ट रूम की घटना भी गांधीजी के जीवन को जब जोड़ देती है उसके परिणामस्वरूप गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न स्थानों पर घूमे और वहां की परिस्थितियों से अवगत हुए। फिर विरोध के लिए नेपाल अधिवेशन कमीशन करके पार्टी की स्थापना की। धीरे–धीरे भारतीय लोग जुड़ते गए। सत्यवान, शांति, उपवास, हड़ताल, पत्रव्यवहार के माध्यम से अपनी लड़ाई को प्रस्फुटित किया। धीरे–धीरे पूरे दक्षिण अफ्रीका में विचारधारा पल्लवित हुई।

गांधीजी के सकारात्मक प्रयासों और लोगों के सुझाव से लड़ाई का नाम 'सत्याग्रह' रखा गया। बाद में मोहनदास और उनके साथियों ने सत्याग्रहियों के लिए कुछ बात अपनी ओर से रखी–पहला सत्य, दूसरा अहिंसा। जिससे किसी भी प्रकार अशांति ना फैले और अपना सत्याग्रह अभी तक चलता रहे। 21 साल के पूरे प्रयास के साथ उनके लिए खुशी के दिन आए उनकी जो भी मांगे थी वह सरकार ने पूरी करने का फैसला लिया। 21 साल में भारतीय के साथ और भी देश के लोग और वहाँ के स्थानिक लोग भी गांधी जी की विचारधारा के साथ जुड़ गए।

मोहनदास भले ही देश की स्वाधीनता के संघर्ष पुरुष हों, लेकिन दक्षिण अफ्रीका में मोहनदास के रूप में व्यतीत उनका सामान्य जीवन की संवेदना और अनुभव के अधिक निकट था। गिरिराज किशोर ने पहला गिरमिटिया उपन्यास में गांधी जी के आदर्श को पूरी मर्मस्पर्शीता के साथ उपन्यास के इस गीत के माध्यम से उद्घाटित किया है–

''उन भारतीयों को और उनकी संतति को
जो उन्नीसवीं शताब्दी में समृद्धि का पर्व बनकर
'गिरमिटिया' और 'यात्री' के रूप में
दूसरे देशों में फैल गए हो
फिर कभी नहीं लौटे।

उन भारतीयों को
जिन्हें समुद्र लील गया
और उनकी संतानों को जिनके लिए
सागर की लहरों में भी वे जीवन भर

जिंदा रहे।

आगे आने वाली अपनी नाती 'तन्मय' और
नाती 'वान्या' और 'ईशा' की पीढ़ी को
जिनके लिए मोहनदास को जानना
शायद ज्यादा जरूरी होगा
मोहनदास के रूप में वह
अपने देश के
लोगों की

आजादी के लिए पराई धरती पर खड़ा
और महात्मा गांधी के रूप में
अपनी धरती पर गोली खाकर
राम राम कहता
चल बसा।''[2]

प्रस्तुत उपन्यास 21वीं सदी का क्रांतिकारी दस्तावेज है। उपन्यास में मोहनदास का संघर्ष 'महात्मा गांधी' जैसे व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक रहा है जो देश की एकता और अखंडता के लिए कर्तव्य की वेदी पर स्वयं को आत्म समर्पित कर देने की कथा को निरूपित करता है।

उपन्यासकार ने उपन्यास में गांधी जी के द्वारा सन् 1893 से 1914 के मध्य 21 सालों में किए गए संघर्ष को मार्मिकता से चित्रित किया है। इसके अंतर्गत अंग्रेजी सत्ता का स्वरूप, सत्ता की रंगभेद नीति,भारतीयों की दुर्दशा एवं साम्राज्यवादी शक्तियों के विरोध का जीवंत चित्र पस्तुत किया है।

सचमुच,महात्मा गांधी 'पहला गिरमिटिया' हैं। जिसने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को प्रभावित ही नही किया बल्कि एक नई दिशा प्रदान करके देश को गुलामी की बेड़ियों से स्वतंत्रता दिलाई। कृतज्ञ भारतीय राष्ट्र ने गांधी जी की स्मृति में एक प्रस्ताव भारतीय संसद के माध्यम से 24 दिसंबर 1969 में पारित किया। उसमें इन शब्दों में श्रद्धांजलि प्रस्तुत की गई– ''यह सदन महात्मा गांधी की शताब्दी के अवसर पर अपनी आदर पूर्ण श्रद्धांजलिय राष्ट्रपिता के प्रति अर्पित करता है जिन्होंने अहिंसात्मक साधनों से देश को स्वतंत्रता दिलाई, जिन्होंने जनता में एक नवीन स्फूर्ति का संचार किया, जिन्होंने करोड़ों पीड़ित और पददलित लोगों को ऊपर उठाया जिन्होंने लोगों में समर्पण और सेवा की भावना जगाई तथा अपनी अनंत कृतज्ञता को उस अहिंसा की मूर्ति के प्रति अभी लिखित रूप में प्रकट करता है जिन्होंने शक्ति न्याय, बराबरी, के लिए धर्मयुद्ध लड़ा और जिन्होंने इस कलापूर्ण संसार को विश्वभ्रातृत्व मानववाद का संदेश दिया और आज हम अपने आप को अहिंसा, सत्य और राष्ट्र सेवा के ऊंचे आदर्शों के लिए जिनके लिए महात्मा जी जीवित रहे और अपने आप को बलिदान कर दिया–उन आदर्शों को हम पुनः स्मरण करते हैं।''[3] आज भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले पहले गिरमिटिया को शहीद के रूप में याद किया जाता है। जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान दिया है।

संदर्भ

1. 'पहला गिरमिटिया' गिरिराज किशोर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण –2013 पृ–101,102
2. वही, पृ.04
3. आधुनिक भारत का इतिहास, बी.एल.ग्रोवर,एस. चन्द एन्ड कम्पनी, लि. संस्करण–2000, पृ–319,320.

मंगल पार्क सोसायटी,
नाना कलोदरा,
खंभात – 388 630
फोन नंबर : 7990132100

19
'रेखना मेरी जान' उपन्यास में चित्रित पर्यावरण संवेदना

❖ नलिनी संदीप देशमुख

व्यक्ति, परिवार, एवं समूह मिलकर समाज का निर्माण होता है। समाज में इन इकाईयों के मध्य निरंतर अंतःक्रियाएँ जारी रहती हैं, जो सामाजिक अंतःक्रियाएँ कहलाती हैं। इन्हीं अंतःक्रियाओं का जीवंत लेखा–जोखा 'साहित्य' कहलाता है। मनुष्य अपने जीवन से, परिवेश से जो कुछ सीखता है, अनुभव करता है उसे शब्दों में बांधकर आनेवाली पीढियों के लिए संचित करता है। यही साहित्य की धरोहर है। साहित्य समाज का दर्पण होने के बावजूद समाज का प्रतिनिधित्व करता है। समाज में जो कुछ घटित होता है उसका प्रतिबिंब हमे साहित्य में दिखाई देता है। समाज में व्याप्त समस्याएँ लेखक, कवि खुद अनुभव करके अपने साहित्य में शब्दबद्ध करता है। आज का साहित्य अनेक नयी मंजिलों को स्पर्श कर रहा है। साहित्य की बहुचर्चित विधा उपन्यास में अनेक मार्मिक संवेदनाओं को उठाकर उनके प्रति न्याय देने की व्यवस्था है। 'संवेदना' का अर्थ हैं जागरूकता के साथ दूसरों की भावनाओं और विचारों को समझना। किसी की वेदना, कष्ट, दुःख, शोक आदि में समान रूप से सहभागी होना। संवेदना एक ऐसी अनुभूति है जो मनोवैज्ञानिक ढंग से मानवीय क्रिया कलापों को प्रस्तुत करती है। हिंदी उपन्यास साहित्य में अनेकविध संवेदनाओं को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें प्रमुखता से उभरकर सामने आने वाली 'पर्यावरण संवेदना'।

पर्यावरण शब्द की व्युत्पति 'परि' और 'आवरण' इन दो शब्दों से मिलकर हुई है। अर्थात् हमारे चारों ओर भौतिक, रासायनिक और जैविक घटकों का समावेश हैं जो किसी जीवधारी को प्रभावित करते हैं। स्थलमंडल, वायुमंडल, जलमंडल, जैवमंडल इन सभी को मिलाकर पर्यावरण की रचना हुई है। जैवमंडल का सबसे प्रमुख अंग मानव है, जो चारों मंडलों से उत्स्फूर्त रूप धारण करता है। साहित्य में पर्यावरण संवेदना को समझने के लिए हमें पर्यावरण की संस्कृति को समझना होगा। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही भारतीय संस्कृति रही है। इसका अर्थ हैं सारी धरती एक परिवार है, जिसमें पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, जीव–जंतु–इनका मिलाप एवं पारस्परिक संबध हैं। वैसे तो हमारे देवी–देवताओं के रूप भी पर्यावरण के विविध अंगों के माध्यम से हमारे सामने प्रकट होते हैं। यही रुप, प्रतीकों के माध्यम से प्रकृति के प्रति हमारे मन के संवेदना को जागृत करते हैं। संवेदना के जागृत होने पर हम पर्यावरण के संरक्षण को कटिबद्ध होते हैं। समाजशास्त्रिय लेखक संस्कृति के संबंध में लिखते हैं कि– "संस्कृति का निर्माता प्रकृति नहीं, समाज है। प्रकृति पर्यावरण प्रदान करती हैं। संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग हैं। उदाहरण प्रकृति मिट्टी प्रदान करती है, परतुं जब मानव मिट्टी के बर्तन बनता हैं तो वह संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। अतः संस्कृति का सृजन मानव मस्तिष्क में ही होता है।"[1]

पर्यावरण संवेदना लेखन की परम्परा आदिकाल से चली आ रही हैं। आज के समय में ये रूप व्यापक हो रहा है क्योंकि पर्यावरण के प्रति संरक्षण, जागरूकता के बारे में सजग रहना महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं। ग्लोबल वार्मिंग, भूमिकंपन, बाढ़, तूफान, सूखा, अतिवृष्टि आदि आज के पर्यावरणीय संकट हैं। समकालीन साहित्यकारों ने मानव को पर्यावरण संतुलन के बारे में सजग किया है कि, आज हम पर्यावरण संरक्षण नहीं कर पाए तो प्राकृतिक आपदाएं मानव सभ्यता को विलुप्त कर देगी। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कुटज में लिखा है कि– "यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं इसलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मैं धरती माता के प्रति नतमस्तक हूं।"[2]

21वीं सदी में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्होंने पर्यावरण संवेदना को बढ़ी प्रौढ़ता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जिसमें बिहार के 'रत्नेश्वर कुमार सिंह' बहुचर्चित लेखक हैं। रत्नेश्वर को बचपन में ही पंचतत्त्वों के साथ पेड़, पानी और जिन्दगी के गहरे रिश्ते की समझ हो गई थी। और इसीलिए प्रकृति से वे योग स्थापित करना सीख गए थे। घंटों जंगलों में, नदियों के किनारे और एकांत में बैठकर उसकी आवाज सुनते–गुनते ध्यान–मग्न रहते।

रत्नेश्वर सिंह का 2017 में ब्लूवर्ड से प्रकाशित उपन्यास 'रेखना मेरी जान' वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित जल प्रलय का भयावह रूप प्रकट करता नजर आता है। यह एक ग्लोबल वार्मिंग जैसे ज्वलंत विषय पर पर्यावरण संवेदना को केंद्र में रखकर लिखा उपन्यास है।

हिंदी में वैश्विक मुद्दों पर बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं। रत्नेश्वर जी ऐसे ही चंद लेखकों मे से हैं। 'रेखना मेरी जान' इनका यह उपन्यास ग्लोबल वार्मिंग के वैश्विक प्रभावों पर लिखा गया है, जो मन को पर्यावरण संवेदना के प्रति उजागर कराता है। यह उपन्यास बांग्लादेश की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण जब नार्थ पोल के ग्लेशियरों का बड़ा हिस्सा पिघल जायेगा और समुद्र का जल स्तर बढ़ जायेगा, ऐसे में दुनिया के कई देश समुद्र में समाहित होने के कगार पर होंगे। बांग्लादेश भी ऐसे देशों में से एक हैं। जिसका अस्तित्व समुद्र का जल स्तर बढ़ने पर खतरे में होगा। इस स्थिति का वर्णन करते हुए रत्नेश्वर जी लिखते है "आज सुबह के अख़बारों में यह चर्चा सुर्खियों में थी कि अब बांग्लादेश के पास बहुत कम समय बचा है. इस बीच अधिकांश देशों ने बांग्लादेशियों को वीजा देना बंद कर दिया है! हवाई जहाज भी बंद हो गया है!...भारत का कहना था कि वह एक करोड़ बांग्लादेशियों को पनाह दे सकता है, पर सारे बांग्लादेशियों को यहां जगह देना संभव नहीं है, क्योंकि भारत स्वयं 'सामुद्रिक डूब' की स्थिति में है।

बांग्लादेश ने इस मुद्दे को विश्व मंच पर उठा रखा था। बांग्लादेशियों को उम्मीद थी कि उन्हें भारत में प्रवेश की इजाजत मिल जाएगी और इसीलिए वहां हिन्दी सीखने और बोलने का प्रचलन भी बढ़ गया था।"[3] अर्थात् पर्यावरण में होने वाले बदलाव के कारण मानव जीवन अनेक समस्याओं से ग्रसित होता है, जो मनुष्य के अंदर एक भयावह स्थिति को उत्पन्न करता हैं यही संवेदना हमारे मन में घर कर जाती हैं, और हम पर्यावरण के प्रति सजगता का अनुभव करते हैं। रत्नेश्वर सिंह ने ग्लोबल वार्मिंग इस भयावह विषय को पाठकों के सामने सुमोना और फरीद की प्रेमकथा के माध्यम से रखा है।

'रेखना मेरी जान' के माध्यम से उपन्यासकार ने अंर्तकथाओं के द्वारा आवश्यकतानुसार विषय की वैज्ञानिकता पर भी प्रकाश डालने की कोशिश की हैं। यहाँ पर उपन्यास का एक अंश उल्लेखनीय होगा। "पृथ्वी पर नौ विशिष्ट सीमा रेखाओं को चिन्हित किया गया है, जिनमें हमें हस्तक्षेप से बचने की सलाह दी गयी थी। पर हमने तीन सीमा–रेखाओं का अतिक्रमण पहले ही शुरू कर दिया है। वे हैं जलवायु परिवर्तन, जैव–विविधता और भूमंडलीय नाइट्रोजन–चक्र।"[4] इस प्रकार अनेक स्थलों पर, विविध प्रसंगों के माध्यम से, विषय के वैज्ञानिक पहलुओं पर तथ्यों के द्वारा प्रकाश डाला गया है। विज्ञान के माध्यम से लेखक पर्यावरण में मानवीय हस्तक्षेप की मार्मिक संवेदना का चित्रण करते हैं।

रत्नेश्वर सिंह द्वारा विरचित उपन्यास 'रेखना मेरी जान' की कहानी दो प्रगतिशील हिन्दू–मुस्लिम परिवारों की है, जिनकी संतानें सुमोना और फरीद के मध्य प्रेम है, परन्तु धार्मिक रेखाओं के कारण संकोच भी है। इसी बीच अंटार्टिका में पिघलती बर्फ और पर्वतीय खिसकाव से भयानक तूफान का तांडव मचता है, जिसकी जड़ में बारिसोल शहर भी आ जाता है। इसके बाद शुरू होता है जीने के लिए संघर्ष और इसी संघर्ष के बीचोबीच कहानी भी बढ़ती जाती है। तूफान की त्रासदी के शब्द–चित्र उकेरने में रत्नेश्वर काफी हद तक सफल रहे हैं। इस जलप्रलय के बीच लेखक ने बड़ी खूबसूरती से मानव–रचित विज्ञान और प्रकृति के द्वंद्व को भी बड़े रोचक ढंग से उजागर किया है।

कहानी की नायिका सुमोना के पिता जगदीश बाबू तूफान से बचकर भारत पहुँचने के लिए अपनी अत्याधुनिक कार जलथल, जो धरती और जल में चलने के साथ–साथ हवा में छलांग भी लगा सकती है, के भरोसे परिवार को लेकर निकल पड़ते हैं। उन्हें विश्वास है कि इस आपदा की समस्त संभावित चुनौतियों से पार पाने में उनकी ये सवारी सक्षम है। यहाँ जलथल कार मानव की वैज्ञानिक

प्रगति का प्रतीक है, तो तूफान प्रकृति की शक्ति का, इस संघर्ष का परिणाम हम सब जानते हैं। एक जगह यातायात पुल टूटा हुआ मिलता है तो अपनी कार के जल में भी चलने की सामर्थ्य का भरोसा कर जगदीश बाबू उसे नदी में कुदा देते हैं। लेकिन फिर जो होता है वह इस प्रकार चित्रित हैं कि" पानी की तेज धार को वाटर कटर काटने की कोशिश कर रहा था। पर (गाड़ी के) पानी से ऊपर आने की गति और वाटर कटर के सामंजस्य में थोड़ी गड़बड़ी हुई थी और ऊपर आते ही गाड़ी पानी के ढूह के साथ पलट गयी थी। अंततः जलथल का भरोसा भी जगदीश बाबू का साथ छोड़ चुका था..।"[5] जाहिर है, प्रकृति और विज्ञान के इस संघर्ष में विज्ञान बौना साबित होता है और प्रकृति विजयी होकर अपनी लय में गतिमान रहती है।

बांग्लादेश की पृष्ठभूमि पर लिखा गया प्रस्तुत उपन्यास ग्लोबल वार्मिंग से भविष्य में डूबने वाली धरती का साक्षात्कार मनु पुत्रों को करवाता है। विश्वव्यापी इस समस्या की भयावहता को लेखक तथ्यपरक ढ़ंग से हमारे सामने रखता है। 'ग्लोबल वार्मिंग' शब्द आज हमारे लिए अपरिचित नहीं है परन्तु तथ्यपरकता व रोचकता के साथ इस विषय को उठाने व पाठक के विवेक को जाग्रत करने के कारण 'रेखना मेरी जान' का महत्व स्वयंसिद्ध है।

प्रस्तुत उपन्यास में अंटार्टिका की बर्फ के पिघलने व पर्वतों के खिसकने से उत्पन्न भयानक तूफान का वर्णन है। तूफान बारिसोल शहर तक पहुँच चुका है। जहाँ उपन्यास की नायिका व उसका परिवार है। तूफान से बचने के लिए जिस जल थल का उपयोग किया जाता है वह मानव की वैज्ञानिक खोज का प्रतीक है परन्तु प्रकृति के समक्ष मानव का यह दम्भ खण्डित हो जाता है। विज्ञान प्रकृति के समक्ष बौना साबित होता है।

"प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित,
हम सब थे भूले मद में"[6]

भविष्य की कल्पना के बिम्ब द्वारा लेखक हमारी संवेदनाओं को झकझोरने का प्रयास करता है। अर्थात जिसका आधार वर्तमान जीवन संस्कृति पर पाश्चात्य का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार पर्यावरण असंतुलन आज की एक प्रमुख समस्या है। वी. एन. और जनमेजय सिंह लिखते हैं कि– "आधुनिक भौतिकवादी संस्कृति और सभ्यता के विकास ने देश की संपदा में वृद्धि की है। औद्योगिकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण की प्रगति के साथ–साथ विशालकाय मिल, फैक्ट्री–कारखाने भी स्थापित हुए हैं। कृषि में विज्ञान का प्रवेश हुआ है। वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के कार्य में वृद्धि हुई है। इन सब ने मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।"[7] स्पष्ट है कि 'रेखना मेरी जान' यह ग्लोबल वार्मिंग पर लिखा गया हिंदी का प्रथम उपन्यास है। कुल मिलाकर रत्नेश्वर सिंह जी का यह उपन्यास हिंदी में वैज्ञानिकता का मूल स्वरूप प्रस्तुत करते हुए पर्यावरण संवेदना को अनूठे ढंग से समाज के सामने प्रस्थापित करता है।

साहित्य में पर्यावरणीय संवेदना तब उत्पन्न होती जब पर्यावरण के संतुलन को हानि होती हैं। आधुनिक साहित्य में पर्यावरण के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण का विकास पर्यावरण के नकारात्मकता के परिप्रेक्ष में हो रहा हैं। इसी का प्रतीक 'रेखना मेरी जान' यह एक वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में एक प्रेम कहानी के माध्यम से पर्यावरण की समस्याओं की ओर संकेत किया गया है। 21 वीं सदी के साहित्य में पर्यावरण को लेकर कई संवेदनाएँ समाहित हो रही हैं।

सन्दर्भ

1. विद्याभूषण एवं डी. आर. सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धांत, किताब महल पृ. 739
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी,कुटज, पृष्ठ. 32
3. रत्नेश्वर कुमार सिंह, रेखना मेरी जान, ब्लूवर्ड प्रकाशन, पृ. 23
4. वही, पृ. 59
5. वही, पृ. 137–138
6. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, चिंता सर्ग
7. डॉ. सुरेशचंद्र जोरा, समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएं, पृ. 96

शोधार्थी, हिंदी विभाग
प्रो.डॉ. नानासाहेब जावळे, शोध निर्देशक
के.जे.सोमैया महाविद्यालय कोपरगाँव जि. अहमदनगर
संलग्न, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे, महाराष्ट्र
ईमेल – dnalini8787@gmail.com

20

मनुस्मृति में वर्णाश्रम धर्म

❖ चौधरी निधिबेन भिखाबाई

वर्णाश्रम धर्म सम्बन्धी विषयों की आज भी पर्याप्त मात्रा में प्रासङ्गिकता है। उसे संक्षेप में विवेचित किया जा रहा है – "ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत मनु ने वेदज्ञानी ब्राह्मण को ही अतिश्रेष्ठ कहा है।"[1] क्योंकि वेदों में ही समस्त धर्म का उल्लेख किया गया है। वेदज्ञाता ब्राह्मण को आज भी समाज में विशेष सम्मान प्राप्त होता है, वेदज्ञाता ब्राह्मण के द्वारा ही आज भी समस्त धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न कराई जाती हैं। ब्राह्मण पर सम्पूर्ण शिक्षा का दायित्त्व तो नहीं है किन्तु धार्मिक कृत्यों में उनका ही बोलबाला है।

समाज से वर्णव्यवस्था के बन्धन ढीले पड़ने पर भी आज भी प्रायः समस्त तीर्थों, देवालयों के पण्डित, पुरोहित तथा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करवाने वाले अधिकांशतः ब्राह्मण पुरोहित ही होते हैं। स्वयं अब्राह्मण होने पर आस्थावादी लोग ब्राह्मणों से ही अपने घर–परिवार के संस्कारों को करवाना चाहते हैं और करवाते हैं। शिक्षा गुरु किसी भी वर्ण का क्यों न हो, दीक्षा गुरु तो ब्राह्मण ही चाहिए।

"मनु ने दान देने एवं यज्ञ कराने का स्पष्ट उल्लेख किया है किन्तु इससे पहले व्यक्ति पर परिवार के पालन–पोषण का दायित्त्व सौंपा है।"[2] वर्तमान परिवारों में मनु के इस कथन का पूर्णतया से पालन होता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। आज व्यक्ति सबसे पहले अपने परिवार के पालन–पोषण की ही चिन्ता करता है और जिन परिवारों में ऐसा नहीं होता है वहीं पर अशान्ति फैल जाती है।

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के लिए आपत्तिकालीन जीविका का वर्णन किया गया है। आज भी आपत्तिकालीन जीविका को ग्रहण किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी जीविका से अपने परिवार का पालन–पोषण नहीं कर पाता है तो वह अन्य व्यवसाय कर लेता है। यही उसकी आपत्तिकालीन जीविका होती है जो समाज में आज भी विद्यमान है। मनु ने क्षत्रिय के लिए आपत्तिकाल में भी ब्राह्मण की जीविका ग्रहण करने के लिए निषेध किया है"[3] क्योंकि ब्राह्मण बनने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है वेदज्ञानी होना, गुरु बनना और क्षत्रिय अपने बल मात्र से ही ब्राह्मण का अध्यापन कार्य पूर्ण नहीं कर सकता है यही कथन वैश्य के लिए भी कहा गया है अतः वैश्य भी ब्राह्मण की वृत्ति ग्रहण नहीं कर सकता है।

क्षत्रिय का मुख्य धर्म होता है प्रजा रक्षण करना। क्षत्रिय द्वारा न्यायपूर्वक ही प्रजा रक्षण की बात कही गई है। आज भी यदि देखा जाय तो जिन राज्यों में प्रजा पर अत्याचार होता है और प्रजा की रक्षा न्यायपूर्वक नहीं होती है उन्हीं राज्यों की व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जाती है, प्रजा में रोष उत्पन्न हो जाता है एवं राजा का आदर समाप्त हो जाता है। क्षत्रिय पर ब्राह्मणों की रक्षा का पूर्ण दायित्त्व होता है, ब्राह्मण ही बुद्धिजीवी होता है। आज भी क्षत्रियों द्वारा बुद्धिजीवियों को विशेष अवसरों पर धनराशि प्रदान की जाती है। "क्षत्रिय के व्यक्तित्व में विनय, विनम्रता और विषयों में अनासक्ति आदि भावों का समावेश अवश्य ही बताया गया है।"[4] जिस राजा में इन गुणों का समावेश होता है वही राजा राष्ट्ररक्षक हो सकता है और जो राजा इन गुणों से युक्त होता है वह सदैव अपने में ही रत रहता है, परिणामस्वरूप प्रजा कष्ट पाती है और राज्य का सम्पूर्ण ढांचा विकृत हो जाता है।

वर्तमान में भी राजा में इन गुणों के होने पर राजा एवं राज्य सुरक्षित रहा है और जिस समय में इन गुणों का अभाव पाया जाता है वहाँ राजा एवं राज्य दोनों का ही नाश सम्भव है।

वर्णों में वैश्य वर्ण समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है। कृषि एवं व्यापार वैश्य के ही अधीन है और प्रत्येक वैश्य का अपने कर्म में पारंगत होना अति आवश्यक है। "मनु के मत में वैश्य को पशुओं की वृद्धि के उपाय, बीज बोने का ज्ञान, खेतों के गुण–दोष, वस्तुओं के तौल माप, नौकरों का वेतन तथा समस्त भाषाओं का ज्ञान अनिवार्य बताया है।"[5] मनु का यह कथन आज भी प्रासंगिक है। व्यापार जगत् में प्रत्येक व्यापारी को अपने व्यापार का पूर्ण ज्ञान आज भी उसी प्रकार आवश्यक है जिससे उसका व्यापार उन्नतिशील हो सके और जिस व्यापारी को तथा किसान को अपने व्यापार तथा खेती का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है वह अपने व्यापार एवं कृषि कर्म में कभी उन्नति नहीं कर पाता है। इसी प्रकार शूद्र के भी कर्म आज भी प्रासंगिक ही हैं। वर्णों के प्रासंगिक विषयों के उपरान्त आश्रमों के उन नियमों का उल्लेख करना भी आवश्यक है जो आज भी किसी न किसी रूप में समाज में विद्यमान है।

"ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश की आयु जिस प्रकार मनु द्वारा निश्चित है।"[6] उसी प्रकार "आज भी विद्यालयों में बच्चों के प्रवेश की आयु निश्चित होती है। वेदों के अध्ययन की समय सीमा भी निश्चित की गई है"[7] आज भी विभिन्न अध्ययनों के लिए एक अवधि निश्चित की जाती है। अच्छी संस्थाओं में तो शिक्षार्थी निर्धारित अवधि में अपना निर्धारित पाठ्य पूर्ण नहीं कर पाता अथवा असफल रहता है उसे उस पाठ्यक्रम विशेष से निकाल तक दिया जाता है। यह मनु द्वारा बनाये नियमों का ही रूपान्तर है। "मनु ने ब्रह्मचारी के लिए अग्नि में समिधा, पृथ्वी में शयन, स्नान देव–पितृ तपर्ण, हवन आदि प्रतिदिन के धर्म बताएं हैं।"[8] आज भी विद्यालयों में प्रार्थना या अन्तिम दिन आस्था एवं पूजन कार्य होता है।

"मनु द्वारा ब्रह्मचारी की वेशभूषा भी निश्चित बताई गई है।"[9] यह नियम आज भी उसी प्रकार विद्यमान है, विद्यालयों में विद्यार्थी की वेशभूषा आज भी सामान्यजनों से पृथक् ही होती है। विद्यार्थियों के लिए अपनी संस्था द्वारा निर्धारित वेशभूषा धारण करना ऐच्छिक नहीं, अपितु आवश्यक होता है। उस नियम को भंग करने वाला दण्ड का भागी तक होता है। ब्रह्मचारी को भिक्षा से प्राप्त अन्न से भोजन करने का विधान दिया गया है। भिक्षा से प्राप्त भोजन का अर्थ होता है संयमित भोजन जो आज स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

"ब्रह्मचारी के लिए शिक्षा समाप्ति पर सामर्थ्य के अनुसार गुरुदक्षिणा देने का आदेश दिया गया है।"[10] आज समाज में गुरुदक्षिणा के स्थान पर विद्यालयों में शुल्क दिया जाता है। सरकार इस शुल्क को भी सामर्थ्यानुसार बनाने को प्रयत्नशील है।

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि गृहस्थ से ही अन्य तीनों आश्रम अपना पालन–पोषण करते हैं। वर्तमान में भी गृहस्थ अर्थात् परिवार ही सबसे श्रेष्ठ इकाई है। अतः गृहस्थ को आज भी विशेष महत्त्व दिया गया है, क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर ही व्यक्ति अपने दायित्त्व को पूर्ण करता है। "गृहस्थाश्रमियों के लिए पंच महायज्ञ करने का भी विधान दिया गया है।"[11] यह पंच महायज्ञ आज भी किसी न किसी रूप में परिवार में दृष्टिगोचर होते हैं। देवयज्ञ नित्य न होने पर भी देवालय आदि में हवन होता है। बलिवैश्वदेव आज कर्मकाण्ड की दृष्टि से नहीं होता है, किन्तु दिशाओं, वनस्पतियों, तुलसी आदि की पूजा आज भी होती है। इसी प्रकार नृयज्ञ–अतिथि सत्कार की भावना अब भी वही है आज भी परिवारों में अतिथि को विशेष आदर–सत्कार प्राप्त होता है।

वानप्रस्थाश्रम को भी वर्तमान में अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता है। शान्तिकुंज जैसी संस्थाओं में तो गृहस्थाश्रम के पालन के मध्य समय निकालकर कुछ अवधि ा के लिए वानप्रस्थ जीवन–यापन किया जाता है। साथ में आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। वर्तमान में वानप्रस्थ आश्रमों के नियमों का पालन–सांसारिक क्रिया–कलापों से दूर रहने पर स्वाभाविक रूपेण हो जाएगा।

"संन्यास आश्रम में व्यक्ति को पवित्रता का जीवन,

भिक्षा तथा इन्द्रिय–निग्रह आदि गुणों से युक्त होना बताया गया है।"[12] संन्यास आश्रम आज भी समाज में प्रचलित है तभी देश के बड़े–बड़े तीर्थस्थलों में अनेक आश्रम संन्यासियों के लिए चलते हैं। मठों तथा अखाड़ों में रहने वाले संन्यासियों की संख्या भी पर्याप्त अधिक है।

इन सभी दृष्टियों से विवेचना करने पर स्पष्ट होता है कि आज ऊपरी दृष्टि से जीवनधारा में बदलाव आने पर जाति–पांति, वर्ण–आश्रम के बन्धन शिथिल होते दिखने पर भी आज भी समाज का आधार मनु द्वारा निर्धारित वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था है। उनके देश में पूर्णतया अप्रासङ्गिक होने की निकट भविष्य में कोई सम्भावना भी नहीं दिखती है।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 1/97–98, पृष्ठ – 36
2. मनुस्मृति, 11/9–10, 20, पृष्ठ – 681, 682, 685
3. मनुस्मृति, 10/90,95, पृष्ठ – 666, 668
4. मनुस्मृति, 7/39, पृष्ठ – 366
5. मनुस्मृति, 9/330–332, पृष्ठ – 637
6. मनुस्मृति, 2/37, पृष्ठ – 56
7. मनुस्मृति, 3/1–2, पृष्ठ – 121
8. मनुस्मृति, 2/176,108, पृष्ठ – 98
9. मनुस्मृति, 2/41–47, पृष्ठ – 58, 59, 60
10. मनुस्मृति, 2/245, पृष्ठ – 119
11. मनुस्मृति, 3/70, पृष्ठ – 140
12. मनुस्मृति, 6/41, पृष्ठ – 339

पीएच. डी. शोधार्थी
संस्कृत विभाग
श्री गोविंद गुरु यूनिवर्सिटी, गोधरा

प्रकाशक :
उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर
मो. 8707273195
Email : utkarshpublishers@gmail.com

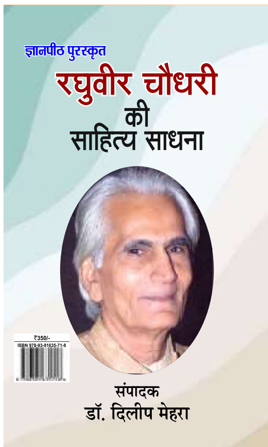

21

शिक्षा और समाज के यथार्थ से रूबरू कराती दिलीप मेहरा की कहानियाँ

❖ कुलदीप 'आशकिरण'

शिक्षा और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है। व्यक्ति के लिए जितना आवश्यक समाज है, उतना ही समाज के लिए शिक्षा। कह सकतें हैं कि शिक्षा और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इन सबके अलावा भी वर्तमान में तमाम सवालात हमारे सामने खड़े हैं। वर्तमान समाज कितना शिक्षित है (किस वर्ग के लोग शिक्षित है) शिक्षा के अलावा समाज का अपना एक अलग रूप है वह कितने लोगों में विभक्त है.. लिंग, जाति, धर्म, वगैरहा.. वगैरहा इत्यादि स्तरों पर लोगों को इस समाज में किन–किन स्तरों से गुजरना पड़ता है आदि आदि। इन सबकी यथार्थ झाँकी पेश करती हैं– दिलीप मेहरा की कहानियाँ।

हाल ही में गुजरात साहित्य अकादमी से पुरस्कृत प्रो० दिलीप मेहरा का कहानी संग्रह 'मकान पुराण' ऐसा कहानी संग्रह है, जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और समाज से हमे रूबरू कराता है। 'मकान पुराण' की एक एक कहानी शैक्षिक जगत और समाज को परत–दर–परत उधेड़ती हुई नजर आती है। इस संग्रह की कहानियों पर बात करने से पहले हम इसके रचनाकार से थोड़ा रुबरु हो लें। कहानी संग्रह के रचनाकार प्रो० दिलीप मेहरा हैं, जो एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हैं। कहानियाँ पढ़कर आपको हैरानी होगी कि वर्तमान चाटुकारिता के दौर में एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय का प्रोफेसर कितनी बेबाकी से बिना डरे, कहानियों के माध्यम से शैक्षिक जगत की पोल खोलता हुआ किस प्रकार से समाज को स्वच्छ आईने के सामने खड़ा कर देता है। प्रोफेसर मेहरा की कहानियाँ मात्र कहानियाँ नही हैं.. उनका स्वयं का जिया हुआ यथार्थ है.. स्वानुभूति है और रचनाकार के स्वयं का संघर्ष है, जो इनकी कहानियों में दृष्टव्य है।

कहानी कला की दृष्टि से देखा जाए तो 'मकान पुराण' की कहानियाँ लघु कहानियों की श्रेणी में आती हैं, पर यह कहानियाँ हुबहु बिहारी के दोहों की तरह हैं 'देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर'। अपनी इन लघु कहानियों के माध्यम से रचनाकार ने बड़ी ही बेबाकी से शिक्षा व्यवस्था या समाज को उकेरने का सफल प्रयास किया है। ''मैं पीएच. डी. हो गया'' संग्रह में संग्रहित प्रथम कहानी है। इस कहानी में वर्तमान उच्च शिक्षा व्यवस्था की परत उधेड़ते हुए पीएच. डी. प्रवेश से लेकर आचार्य बनने तक के सफर का यथार्थता से अंकन करतें हैं। कहानी के आरंभ में ही करारा व्यंग्य है जो सौ फीसदी वास्तविक है श्हर फैकेल्टी में अध्यापक इस तरह पीएच.–डी. हो रहें है जैसे जमीन के बिल से निकलती धड़ा–धड़ चीटियाँ। जिस प्रकार हिंदी के ख्यातिलब्ध निबंधकार परसाई जी लिखतें हैं श्डॉक्टरेट योग्यता से नही गुरुकृपा से मिलती है। उसी का प्रतिरूप हमें इस कहानी में दृष्टव्य है। 'आचार्य पद योग्यता और डिग्री से नही चाटुकारिता और ट्रस्टी के रिश्तेदार होने से मिलता है।' इस कहानी में रचनाकार पीएच. डी जो भारत की सबसे बड़ी उपाधि है, को प्राप्त करने और उसे प्राप्त करने के बाद युवा मन की मनोदशा को तटस्थता से उकेरतें हैं।

'शिक्षा का सच,' 'मारफाड़ ट्रस्टी' और 'विदाई समारोह' कहानियाँ शिक्षा व्यवस्था पर तंज कसती हुई नजर आती हैं। 'शिक्षा का सच' मे रचनाकार वर्तमान युवा बेरोजगारी और शैक्षिक जगत में परिवारवाद की

नियुक्ति के सच को उजागर करते हैं। 'मारफाड़ ट्रस्टी' में शैक्षिक जगत में प्रबंधक की तानाशाही को बखूबी उकेरते हुए 'विदाई समारोह' में शैक्षिक जगत की चमचागीरी का यथार्थता से अंकन करते हैं।

'मकान पुराण', 'दापा' और 'सौदा' सामाजिक विसंगतियों पर आधारित कहानियाँ हैं। इन कहानियों के माध्यम से रचनाकार समाज के भिन्न भिन्न पहलुओं पर दृष्टि डालते हुए बड़े ही मार्मिकता के साथ हमें समाज और उसकी मनोदशा से रूबरू कराता है। 'मकान पुराण' आज के दौर का सच बयाँ करने वाली कहानी है। इस कहानी में दलित वर्ग की व्यथा को बड़े ही मार्मिकता से सहेजते हुए रचनाकार देश की जातीय व्यवस्था और उसकी खामियों को समाज सापेक्ष प्रस्तुत करतें हैं कि आज भी देश जब 21वीं सदी के अवसान पर है तब भी दलित वर्ग के किसी भी व्यक्ति को शहर में भी मकान मिल पाना कितना कठिन है । कह सकतें हैं कि 'मकान पुराण' आज के दौर का सच बयाँ करने वाली कहानी है। आप किसी शहर में जाएँ सरकारी पेशेवर हों या प्राइवेट– किंतु अगर आप दलित हैं तो आपके लिए मकान मिल पाना असंभव ही है। इस कहानी में वर्तमान जातीयवादी सोच को रचनाकार ने बड़ी ही बखूबी से दृष्टित किया है।

अंततः हम कह सकतें हैं कि रचनाकार का यह कहानी संग्रह (मकान पुराण) सफल कहानी संग्रह है जो हमें शैक्षिक और सामाजिक जगत में व्याप्त बुराइयाँ जो आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं से रूबरू कराता हुआ वर्गीय चेतना उत्पन्न करता है।

शोधार्थी एवं युवा रचनाकार
हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय
वल्लभ विद्यागनगर आणंद, गुजरात

UTKARSH PUBLISHERS & DISTRIBUTORS

उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

विश्वविद्यालय स्तरीय समस्त विषयों की पाठ्य एवं संदर्भ पुस्तकों के प्रकाशक एवं लाइब्रेरी सप्लायर्स

ए/685, आवास विकास, हंसपुरम्, नौबस्ता, कानपुर-208021
मो. 8707662869
ईमेल : utkarshpublishersknp@gmail.com

22

कृश्ना रघुवंशी के उपन्यासों में राजनीति संबंधी मिथक का आधुनिक संदर्भ में प्रयोग

❖ डॉ. नरेश ठाकोर

गाँव, प्रदेश, राज्य या देश की बागडोर किसी एक व्यक्ति के हाथों में होना– यह परंपरा सदियों से चली आ रही है। पहले के समय में राजा–महाराजा सत्ता सँभालते थे। वर्तमान समय में नेताओं द्वारा यह भूमिका निभाई जा रही है। लेकिन राजा या नेता की जनता को जबरन अपने आधीन रखने की सोच जनता को शोषण की स्थिति में ला देती है।

डॉ. कृश्ना रघुवंशी ने अपने उपन्यासों में मिथक को आधार बनाकर उपर्युक्त हकीकत को पाठकों के समक्ष रखा है। जिस प्रकार वर्णव्यवस्था ब्राह्मणों के लिए वरदान होती है उसी प्रकार राजनीति क्षत्रियों के लिए वरदान साबित हो रही थी। इसी बात को स्पष्ट करते हुए लेखक ने 'तिरस्कृत देवता' उपन्यास में भगवान परशुराम के माध्यम से इस सत्य को बयां किया है– "प्रथमतः ब्राह्मण के पास ज्ञान रहा, वैश्यों के यहाँ धन–संपदा का अंबार लगा और क्षत्रियों के हाथ में तलवार आई। बहुत दिनों तक समाज का नेतृत्व करनेवाला ब्राह्मण आज अपनी पहचान खो रहा है। एक समय था जब राजा इसके आगे नतमस्तक होता था, पर आज क्षत्रियों ने इसे उपेक्षित कर दिया है। अब वह ब्राह्मण की जरा भी परवाह नहीं करता। शक्तिहीन ब्राह्मण भला क्या करे। बेचारा सदैव डरता रहता है।"[1]

चुनावी माहौल में चुनाव के लिए अपनी उम्मीदवारी दाखिल करनेवाला हर नेता भाँति–भाँति प्रकार के हथकंडों को अपनाकर जनता को विभिन्न प्रकार के लालच देकर उनको भ्रमित करता है ताकि जनता के अधिक से अधिक वॉट वह पा सके। जनता जब उसे जीता देती है तो वह उसी जनता को भुला देता है जिनकी माँगें पूरी करने का उसने वादा किया था। उल्टा वह अपने घर की तिजोरियाँ भरने में लग जाता है। सगावाद को बढ़ावा देते हुए अपने रिश्तेदारों की प्रगति में ज्यादा ध्यान देता है और इसके लिए नेता जनता का शोषण करने से पीछे नहीं हटते। वर्तमान समय की राजनीतिक सत्ता की परिभाषा समझाते हुए इसी उपन्यास में परशुराम कर्ण से कहते हैं– "राज, संसार का उद्धार करने के लिए नहीं, पथभ्रष्टों को सन्मार्ग पर लाने के लिए भी नहीं, राज बस इसलिए कि राजाओं के भोग चलते रहें, वे अधिक से अधिक संसार को लूट सकें, और अधिक मनमानी कर सकें।"[2]

'महानायक' उपन्यास में डॉ. कृश्ना रघुवंशी ने राजनीति की भयानकता को शब्दबद्ध किया है। महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन जब युधिष्ठिर को 'धर्मराज' की उपाधि देकर राजसिंहासन प्रदान करते हैं तब दुर्योधन 'ईर्ष्यावश' क्रोधित होता है। इससे कुन्ती को अपने पुत्र की अधिक चिंता होती है। कुन्ती की चिंता से विदुर और उसकी पत्नी सुलक्षणा विचलित हो जाते हैं और सुलक्षणा कहती है– "मुझे तो लगता है कि धन–संपदा, राज–पाट आदि सब कलह के ही कारण होते हैं। राजनीति मनुष्य का पतन करके ही छोड़ती है। इससे तो साधारण और निर्धन मनुष्य ज्यादा अच्छे। वे सुबह–शाम, रूखा–सूखा खाकर रात के चैन से सो तो जाते हैं। परन्तु तथाकथित बड़े लोग!"[3]

राजनेता बनने के बाद कोई भी व्यक्ति अपनी मानवीय संवेदनाओं से किनारा करके पत्थरदिल बन जाता है। वह केवल अपनी सत्ता को कायम रखने की कोशिश में लगा रहता है। पांडवों के हित की बात करनेवाले विदुर को जब महाराज धृतराष्ट्र राजमहल से चले जाने के लिए कहते हैं तब सुलक्षणा को बहुत बुरा लगता है और वह सोचती है– "ये पाषाणहृदय राजनैतिज्ञ, अपना–पराया, अच्छा–बुरा भी नहीं देखते। बस देखते हैं तो शत्रु और मित्र! उनका जिससे हित हो, वह मित्र और जिससे अहित हो वह शत्रु। कभी–कभी तो जिससे अहित न भी हो, तो भी वह उन्हें शत्रु मान लेते हैं, क्योंकि उनकी स्वार्थी अपेक्षाओं पर बेचारे खरे नहीं उतरते।"[4]

आज भी देखा जाता है नेता अपने स्वार्थ के लिए बड़े से बड़े शत्रु को भी अपने मित्र बना लेते हैं। और कभी कभी निकट के संबंधियों से शत्रुता कर लेते हैं। नेता के किसी भी उचित–अनुचित निर्णय के पीछे उसके मंत्रियों की भूमिका भी अहम् होती है। लेखक ने इसी सत्य को 'सूरज धरती का' उपन्यास में उद्‌घाटित किया है। गंगा महाराज शांतनु से कहती है– "महाराज! किसी व्यक्ति पर तो विश्वास किया जा सकता है, राजा पर तो बिल्कुल नहीं। राजा के हर निर्णय में उसके मंत्रियों की मंत्रणा होती है। पता नहीं वे राजा को कब क्या उलटी–सीधी पट्टी पढ़ा दें। और राजा, अपनी प्रजा की प्रसन्नता के लिए कुछ भी अच्छा–बुरा निर्णय ले सकता है, इसलिए।"[5]

इस उपन्यास में देव अपने पिता शांतनु से समाज की प्रगति एक नेता ही कर सकता है इस हकीकत को बयां करते हुए कहता है– "पिता महाराज! समाज को निर्धनता, अशिक्षा, जातीय और वर्गभेद के दलदल से कौन निकालेगा? इस कार्य के लिए तो भागीरथी प्रयत्न की आवश्यकता है। हाँ, राजा चाहे तो इनसे मुक्ति संभव हो सकती है। यह राजा का ही दायित्व है। तभी तो प्रजा उसे भगवान मानती है।"[6]

डॉ. कृश्ना रघुवंशी ने उपर्युक्त राजनीतिविषयक मिथकों के माध्यम से यह बात स्पष्ट की है कि देश और समाज की प्रगति में राजनेता और राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अगर राजनीति का स्तर सुधर जाए तो खुद–ब–खुद देश, राज्य आदि का विकास संभव हो जाएगा।

संदर्भ

1. तिरस्कृत देवता, डॉ.कृश्ना रघुवंशी, पृ. 294
2. वही, पृ. 294
3. महानायक, डॉ. कृश्ना रघुवंशी, पृ. 141
4. वही, पृ. 334
5. सूरज धरती का, डॉ.कृश्ना रघुवंशी, पृ. 06
6. वही, पृ. 45–46

कृष्णकुंज सोसायटी,बासदा
जिला– नवसारी
ईमेल– thakornaresh791@gmail.com

23

मनुस्मृति और नारी

❖ चौधरी निधिबेन भिखाबाई

समस्त आश्रमों में गृहस्थाश्रम का आधार होता है परिवार। परिवार का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है नारी। परिवार में नारी के कई रूपों का दर्शन होता है– पत्नी, माता, बहन पुत्री।

स्मृति साहित्य में नारी के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का विशद चित्रण किया गया है। नारी को माता, पुत्री, पत्नी के रूप में कुछ अधिकार दिये गये हैं तो उसे कतिपय अधिकारों से वंचित भी किया गया है। परन्तु नारी को समस्त अधिकारों से वंचित करने का आरोप मनु पर लगाना उचित नहीं होगा। मनु को नारी के सामर्थ्य का पूर्ण रूप से ज्ञान था इसी कारण से नारी की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति को देखकर ही मनु ने नारी को कुछ कार्यों में पुरुष के अधीन ही रखा है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

; =SkLr qu i W; Ur sl okZr =kQy k%fØ; k%AA1

मनु ने नारी को लक्ष्मी का ही रूप स्वीकार करते हुए कहा है कि जिस कुल में नारी की पूजा होती है उस कुल में देवता प्रसन्न रहते हैं और जिस कुल में स्त्रियों का आदर सत्कार नहीं किया जाता वहां सब क्रियाएं निष्फल होती हैं। "मनु ने नारी को रत्न मानते हुए कहा है कि स्त्रीरूपी रत्न जहां से भी प्राप्त हो ग्रहण कर लेना चाहिए।"[2] "मनु ने मौसी, मामी, सास और बुआ को भी गुरु स्त्री के समान पूजनीय माना है।"[3] तदनुसार जामियों को भी विशेष आदर देने को कहा है, "मनु ने जामि के अन्तर्गत स्त्री–पुत्रवधू, बहन, भान्जी और कन्या को गिना है। उनका कथन है कि जिस कुल में जामि शोक करती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जिस कुल में इनका आदर होता है वह कुल सर्वदा प्रसन्न रहता है। जिस कुल में जामियां अनादर पाकर शाप दे दती हैं वह गृह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।"[4]

मनु को स्त्री के स्वभाव का भी पूर्ण रूप से ज्ञान था। सामन्यतया स्त्री विशेष अवसरों पर अपने आप को वस्त्र–आभूषण आदि से सुसज्जित करती है। "इसी कारण मनु ने नारी की इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए कहा है कि उन्नति चाहने वाले मनुष्यों को उत्सवों के असवरों पर स्त्रियों का वस्त्र, भूषण और भोजनादि से विशेष आदर–सत्कार करना चाहिए।"[5] यदि स्त्री वस्त्राभूषण आदि से रुचिकर नहीं होती है तो वह पति को आनन्दित नहीं करती।

"यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रभोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।"[6]

वस्त्र–भूषणादि के द्वारा स्त्री के प्रसन्न रहने पर वह सम्पूर्ण कुल सुशोभित होता है और स्त्री के वस्त्र–भूषाणादि से सुशोभित न रहने पर वह सम्पूर्ण कुल मलिन हो जाता है। "मनु ने स्त्री को रक्षा के योग्य माना है। तदनुसार स्त्री की रक्षा बचपन में पिता करता है, युवावस्था में पति करता है और वृद्धावस्था में पुत्र करते हैं।"[7]

"सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रिया रक्ष्या विशेषतः।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकभावहेयुररक्षिताः।।"[8]

असुरक्षित स्त्रियाँ ही पिता तथा पति दोनों के कुल को सन्तप्त करती हैं। "जो स्त्री की रक्षा करता है वह मनुष्य अपनी सन्तान, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म की रक्षा करता है।"[9]

"न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ।"[10]

मनु ने स्त्री के रक्षा के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण उक्ति यह कही है कि स्त्री की रक्षा पिता, पति तथा पुत्र बलपूर्वक नहीं कर सकते हैं। इसलिए स्त्री को धन के संग्रह, व्यय, वस्तु तथा पदार्थों की शुद्धि, पति तथा अग्नि की सेवा तथा घर के काम में नियुक्त करे। "मनु ने स्त्रियों की रक्षा का सबसे उचित मार्ग स्त्रियों का ही धार्मिक बुद्धि होना बताया है, क्योंकि जो स्त्रियाँ धर्मानुकूल बुद्धि होने से अपनी रक्षा स्वयं करती हैं, वे ही सुरक्षित हैं और जो स्त्रियाँ धर्म विरुद्ध बुद्धि की होती हैं वे आप्त एवं आज्ञाकारी पुरुषों के द्वारा घर में रोकी जाती हुई भी सुरक्षित नहीं होती हैं।"[11]

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, 3/56, पृष्ठ – 136
2. मनुस्मृति, 2/240, पृष्ठ – 1173. मनुस्मृति, 2϶131, पृष्ठ – 86
4. मनुस्मृति, 3/57–58, पृष्ठ – 137
5. मनुस्मृति, 3/59, पृष्ठ – 137
6. मनुस्मृति, 3/61–62, पृष्ठ – 138
7. मनुस्मृति, 9/4, पृष्ठ – 542
8. मनुस्मृति, 9/5, पृष्ठ – 5439. मनुस्मृति, 9/7, पृष्ठ – 543
10. मनुस्मृति, 9/10, पृष्ठ – 54411. मनुस्मृति, 9/11–12, पृष्ठ– 545

पीएच.–डी. शोधार्थी
संस्कृत विभाग
श्री गोविंद गुरु यूनिवर्सिटी, गोधरा

कहानी

24
नमक हराम भिखारानंद

❖ डॉ. दिलीप मेहरा

गाँव के मंदिर में आज रुद्राभिषेक नामक विशेष पूजा हो रही थी। आज तो कुछ–न–कुछ लाभ मिलेगा ही– इसी उम्मीद में मंदिर की सीढ़ियों पर भिखारियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। उन्हीं भिखारियों में एक वृद्ध भिखारी भी शामिल था। उसका नाम भिखारीदास था।

भीख मे मिले हुए भोजन से उसके परिवार का एक टाईम के खाने का इंतजाम होता था। भिखारीदास के तीन बेटे थे, जिसमें से एक था– भिखारानंद। भिखारीदास जिस मंदिर में भीख मांगता था उस मंदिर में एक शिक्षक 'सत्यप्रकाश' रोजाना भगवान का दर्शन करने आता था और भिखारियों को कुछ न कुछ दान देता था। सत्यप्रकाश स्वभाव से दयालु था। उसकी इसी दयालुता को देखकर एक दिन भिखारीदास ने उससे कहा– "मेरे तीन बेटे हैं, पर मैं किसी को शिक्षा नहीं दे सका। एक बेटा घर बैठे स्नातक हुआ है। मैं उसे शिक्षक बनाना चाहता हूँ। आप एक अच्छे शिक्षक हो। मेरा इतना काम कर दोगे तो मैं आपका एहसान जिंदगीभर नहीं भूलूंगा।"

सत्यप्रकाश को दया आ गई। उसने भिखारीदास के बेटे भिखारानंद को आगे पढ़ाने को बीड़ा उठाया, जिससे उसे शिक्षक बनने योग्य तैयार किया जा सके। सत्यप्रकाश ने भिखारानंद को गाँव से कोसों दूर पढ़ने के लिए शहर में बुलाया।

भिखारानंद का एक रिश्तेदार बोघाशंकर भी उसी शहर में एक अच्छे महाविद्यालय में प्रतिष्ठित पद पर नौकरी करता था। लेकिन वह भिखारानंद और उसके विकृत मानसिकता वाले परिवार को भलीभांति जानता था। अतः वह भिखारानंद से किनारा ही करता रहा।

दूसरी ओर सत्यप्रकाश ने ठान लिया कि भिखारानंद को अच्छी शिक्षा दिलवाकर उसकी जिंदगी बदल दी जाये। सत्यप्रकाश ने उसे अपने ही घर में सहारा दिया। हालांकि बोघाशंकर का घर कुछ ही दूरी पर था। लेकिन भिखारानंद वहाँ जा न सका। सत्यप्रकाश ने उसे बहुत बढ़िया खाना खिलाया और अपने ही घर में दूसरी मंजिल के एक कमरे में रहने दिया।

दूसरे दिन सत्यप्रकाश ने भिखारानंद की आगे की पढ़ाई करवाने हेतु अच्छे महाविद्यालय में एडमिशन भी करवा दिया और पढ़ाई का खर्च भी दिया। कुछ समय बाद उसे पार्टटाईम काम भी दिलवाया जिससे वह अपना खर्च निकाल सके।

इस शिक्षा यज्ञ में अन्य शिक्षक नरेन्द्र ने भी सत्यप्रकाश का साथ दिया। धीरे–धीरे शिक्षा प्राप्त करते ही भिखारानंद की चाल–ढाल बदलने लगी। कुछ वर्षों बाद बोघाशंकर समाज में अपनी बदमानी की चिंता से भिखारानंद को सहारा देकर उसे अपनी ओर खींचता है। शहर में उसकी आगे की पढ़ाई का जिम्मा वह ले लेता है। बोघाशंकर के ओफिस मे क्लर्क के होने के बावजूद भी टाइप का काम भिखारानंद को दिलवाना प्रारंभ कर दिया। साथ ही गलत बिल अन्य जगहों से ला–लाकर भिखारानंद को लाभ पहुँचाने का कार्य करने लगा।

अब भिखारानंद ने सत्यप्रकाश के दिलाये काम को करना बंद कर दिया और सत्यप्रकाश के पीठ पीछे वार करने लगा। सत्यप्रकाश को बदनाम करने के लिए फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्स एप पर अपनी विकृत मानसिकता से पूर्ण पोस्ट उजागर करने लगा।

सत्यप्रकाश निष्ठावान होने से भिखारानंद की करतूतों पर ध्यान न देकर अपनी नीति पर ही चलता है। समय बीतता चला जाता है। भिखारानंद पढ़ता है, आगे बढ़ता है और एक दिन बोघाशंकर की सिफारिश की बदौलत महाविद्यालय में अध्यापक बन जाता है।

लेकिन भिखारानंद की विकृत मानसिकता उससे पानी में रहे जोंक की तरह चिपकी हुई थी। अध्यापक बनते ही भिखारानंद ने एक पिस्तौल खरीदी। उस पिस्तौल का वह क्या करता है, उसके बारे में हम कहानी के दूसरे भाग में जानेंगे...

****

कहानी

25

वसीयतनामा

❖ डॉ. संगीता चौहान

''यह सेम की सब्जी शाम को बनानी हैय शाम तक इसे साफ करके रखना।'' जाते—जाते बहू सपना ने अपने वृद्ध ससुर चंपकभाई को लगभग आदेश ही दे दिया। सपना की बात सुनकर केवल चंपकभाई ही नहीं, उनका बेटा स्वप्न भी लगभग सकपका गया। क्योंकि दो साल के वैवाहिक जीवन में सपना ने पहली बार अपने ससुर को कोई काम सौंपा था।

चंपकभाई को अध्यापक की नौकरी से रिटायर हुए एक सप्ताह ही हुआ था। दिन का बहुत बड़ा हिस्सा वे घर पर ही बिताते थे क्योंकि घर में शांति से रहकर दिन गुजारना उन्हें बेहद पसंद था। साथ ही किताबें पढ़ने का भी उन्हें शौक था। अध्यापक की नौकरी के दौरान उनका दिन विद्यालय के शैक्षिक माहौल में खुशनुमा बन जाता था।

आज बहू का आदेश सुनकर उन्हें अपनी स्वर्गवासी पत्नी नीरा की याद आ गयी। नीराबेन उनकी हर जरूरत का ख्याल रखती थीं। एक साल पहले ही उनकी मृत्यु दिल का दौरा पड़ने से हो गयी थी। विद्यालय के खुशनुमा माहौल ने चंपकभाई को इस सदमे से बहुत जल्दी ही दूर कर दिया था।

रिटायर होने के बाद जब उन्हें घर पर रहना पड़ा तो नीराबेन की गैरमौजूदगी उन्हें खलने लगी थी। बहू और बेटे के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और सेवावृत्ति ने उनके जीवन को निराशामुक्त कर दिया था। उन्हें लग रहा था कि उनका बुढ़ापा अब चौन से पार हो जायेगा। लेकिन कहते हैं कि ठहरा हुआ पानी बहुत गहरा होता है। आज बहू और बेटे के व्यवहार ने इस कहावत को चरितार्थ कर दिया था।

चंपकभाई ने थोड़ी सिफारिश करके एक प्राइवेट विद्यालय में सपना को शिक्षिका की नौकरी दिलवायी थी। स्वप्न को उन्होंने पढ़ा— लिखाकर इंजीनियर बनाकर उसका भविष्य सँवार दिया था। घर में पैसों की कोई कमी नहीं थी। कमी थी तो स्वप्न के स्वभाव में थी। किसी भी परिस्थिति में या कोई भी बात बिगड़ने पर सपना के गलत होने पर भी वह सपना का ही पक्ष लेता था। आज भी उसने सपना द्वारा पिता को सौंपे गए काम को लेकर कोई आपत्ति नहीं उठायी।

सपना और स्वप्न के जाने के बाद चंपकभाई सब्जी साफ करने में जुट गयेय यह सोचकर कि— श्चलो, इस तरह घर में टाइम—पास भी हो जाएगा। बहू को कम काम थोड़े ही हैं।' उनको घरेलू काम करने की आदत न होने से तथा आँखों में मोतियाबिंद का रोग होने से सेम की सब्जी को साफ करने में कई दिक्कतें आ रही थीं। फिर भी वे खुशी मन से काम कर रहे थे।

थोड़ी देर में चंपकभाई के पड़ोसी और उनके निकटतम दोस्त अमनभाई उन्हें मिलने आते हैं। चंपकभाई को सब्जी साफ करते देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। चंपकभाई को दिलासा देने के लिए वे अपने जीवन का रहस्य उनके सामने प्रकट करते हैं – दोस्त दुःखी मत हों। यह कलियुग है। आज के समय में बुजुर्गों की ऐसी हालत सामान्य बात है। तुम तो केवल सब्जी साफ कर रहे हो। मैं तो झाड़ू—पोंछा – बर्तन करके आ रहा हूँ। मेरे बेटे – बहू ने महँगाई का बहाना करके मुझे ही नौकर के रूप में चुन लिया है। भगवान ने बुढ़ापे में हमारे भाग्य में यही लिखा है, सो हम कर रहे हैं.....।

चंपकभाई और अमनभाई अपना सुख—दुःख साझा करने लगते हैं इसलिए सब्जी साफ नहीं हो पाती है। सपना घर पर आकर देखती है और गुस्से से आगबबूला हो जाती है। वह स्वप्न के आने का इंतजार करने लगती है। स्वप्न के आते ही वह जोर—जोर से चिल्लाने लगती

****

है– केवल एक ही काम इनको सौंपा था। शाम तक उनसे पूरा नहीं हुआ और देखिए यह इन्होंने सब्जी साफ की है? सेम के सड़े हुए दाने भी अच्छे दाने में मिला दिए हैं। मुझे फिर से इसे साफ करना पड़ेगा। ठीक है...कल से आप झाड़ू–पोछा और बर्तन साफ करने का काम देख लेना। सब्जी मैं खुद ही साफ कर लूंगी....। ऐसा कहकर सपना अपने कमरे में चली गई। स्वप्न थोड़ी देर खड़े–खड़े पिता को देखता रहा फिर सपना के पास चला गया।

चंपकभाई बहू–बेटे के बर्ताव से दुरूखी बहुत हुए लेकिन भगवान ने उन्हें गजब कि सहनशक्ति दी थी और अध्यापक होने के नाते किस समस्या का हल किस प्रकार निकालना है यह कुशलता भी उनमें थी। मन में कुछ उधेड़–बुन करते हुए वे उठकर बाहर टहलने चले गए। वापिस आए तो बेटे–बहू टी.वी. देख रहे थे। उन्होंने खुद ही खाना निकालकर खाया और अपने कमरे में जाकर सो गए।

दूसरे दिन सपना रसोई का काम करके विद्यालय चली गई। झाड़ू – पोंछा और बर्तन का काम उनके जिम्मे था। चंपकभाई ने पहले धीरे–धीरे पूरे घर की सफाई की। बाद में बाल्टी में पानी लेकर पूरे घर में पोंछा लगाया। उसके बाद बर्तन साफ करके लेट गये। थके होने की वजह से उन्हें तुरंत ही नींद आ गयी। शाम को वे अमनभाई के साथ टहलने चले गए। सपना घर आ चुकी थी। आज उसे अपने ससुर से कोई शिकायत नहीं थी क्योंकि घर और बर्तन उसे साफ सुथरे मिले थे।

चंपकभाई और अमनभाई रास्ते में गन्ने का रस पीने के लिए रुकते हैं। ठेलेवाला उनके लिए रस बनाने के लिए एक हरा–भरा सुंदर गन्ना उठाकर रस पेरने लगता है। गन्ने से रस पेरकर वह गन्ने के ठूंठ को तिरस्कार से कचरों के ढेर पर फैंक देता है। यह देखकर चंपकभाई सोच में डूब जाते हैं। उन्हें यह ख्याल ही नहीं रहता कि कब ठेलेवाला रस से भरा दो गिलास लेकर उनके पास आ गया है। अमनभाई उन्हें झकझोरकर उन्हें ग्लास हाथ में थमाते हैं। रस पीते–पीते अमनभाई उनसे पूछते हैं– ''किन विचारों में इतने गहरे खो गये, दोस्त?

चंपकभाई ने निराश होते हुए कहा – 'देखो, उस हरे – भरे ताजे रसीले गन्ने को। उसे देखकर मुझे मेरी युवावस्था याद आ गयी। जब मैं अपने पैरों पर खड़ा थाय मुझे किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं थी। कितने खूबसूरत थे वे दिन....।'

उसके बाद उन्होंने ठेलेवाले द्वारा गन्ने के फेंके गए ठूंठ जिसमें से रस पेर लिया गया था उस ढेर की तरफ इशारा करते हुए कहा – ष्दोस्त, अब हमारी दोनों की स्थिति बिलकुल इस तरह की है। जब तक हममें कमाने – धमाने की शक्ति थी तभी तक घरवालों की नजर में हम मान – सम्मान प्राप्त करने लायक थे। अब हम अपने परिवार के सदस्यों के मन से निकाल दिये गए हैं, क्योंकि अब हम वृद्ध हो चले हैं। हम अशक्त होते जा रहे हैं इसलिए घर में पड़े हुए व्यर्थ सामान की तरह हमारी भी कोई कीमत नहीं रह गयी है।

चंपकभाई की बातों से अमनभाई सहमत तो हुए लेकिन यह एहसास भी उन्हें दिलाया कि हम गन्ने जैसी निर्जीव वस्तु तो है नहीं, हम जिंदा इंसान हैं, इसलिए परिवार द्वारा हमारे प्रति किया गया उपेक्षित व्यवहार हमें मानसिक रूप से तोड़ रहा है। केवल हमको ही नहीं हमारे जैसे कई वृद्धों को इस कठिन परिस्थिति से गुजरना पड़ रहा है। इस परिस्थिति से निपटने के लिए मैंने एक तरकीब सोची है। अगर तुम मेरा साथ दो तो हम अपने परिवारवालों को सबक सिखा सकते हैं। और हमारे उठाये गए कदम से समाज के अन्य युवकों को सीख मिलेगी कि अपने बुजुर्ग माता – पिता की उपेक्षा न करें बल्कि उनकी सेवा करें।''

चंपकभाई अमनभाई का साथ देने के लिए तैयार हो जाते हैं। दोनों बैठे–बैठे अपनी तरकीब को अंतिम अंजाम देने का प्लान बना लेते हैं। फिर अपने – अपने घर चले जाते हैं।

दूसरे दिन चंपकभाई सपना और स्वप्न के चले जाने के बाद सबसे पहले सपना को फोन करते हैं और कहते हैं कि – 'सपना, मैं तुम्हारे पिता समान हूँ लेकिन तुम मुझसे नौकरों की तरह घर में काम कराना चाहोगी तो यह मुझसे नहीं होगा...। तुम काम करने के लिए घर में नौकर रख सको इतनी सक्षम हो...।'

सपना ने उनकी बात बीच में ही काटते हुए कहा – 'इतनी महँगाई में नौकर कैसे रखें?.... और आप पूरा दिन खाली ही बैठे रहेंगे तो थोड़ा काम ही कर लीजिए। आप यह बात तो जानते हैं कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है....।'' सपना की इस बात ने चंपकभाई को घर में उनकी हैसियत का एहसास दिला दिया इसलिए

उन्होंने फोन काट दिया।

अब बारी थी स्वप्न को फोन करने की। फोन पर उन्होंने सपना से कही गयी बात दोहरायी लेकिन स्वप्न ने कुछ नहीं कहा तब झल्लाहट में आकर चंपकलाल ने स्वप्न से कह दिया– ''बेटा स्वप्न, तुम्हें पाल–पोषकर इतना बड़ा इसलिए नहीं किया कि तुम उम्र के अंतिम पड़ाव में मुझे घर में नौकर की तरह रखो...। कितना संघर्ष करके एक – एक पैसे बचाकर तुम्हारी सुख – सुविधा के लिए मैंने एक अच्छा – सा मकान तुम्हारे लिए बनवाया है। बुढ़ापे में मेरी सेवा करने के बदले तुम मेरे द्वारा अपनी सेवा की उम्मीद रखते हो।

स्वप्न ने एक रूखा – सा उत्तर दिया – 'पापा, पाल – पोषकर बड़ा करना तो दुनिया के हर माता–पिता का फर्ज होता है। जो आपने भी पूरा किया, उसमें कोई नयी बात नहीं है। रही बात घर में काम करने की तो दिनभर में थोड़ा – सा काम करने से आप मर थोड़ी ही जाएँगे....।' फोन कटते ही चंपकभाई के पैरों तले से जमीन खिसक गई। सपना तो पराये घर से आयी थी लेकिन स्वप्न तो उनका अपना खून था। वह भी पिता को 'मुफ्त का नौकर' मान रहा था – यह सोचकर चंपकभाई ने अपनी बनायी हुई तरकीब को अमनभाई के साथ अंतिम अंजाम देने का फैसला कर लिया। साथ ही उन्हें एहसास हो रहा था कि ऐसी औलाद होने से तो अच्छा है बेऔलाद होना....।

उसके बाद वे जाकर अमनभाई से मिलकर उन्हें तैयार होने के लिए कहते हैं। फिर घर आकर अपने कपड़े और जरूरी कागजात लेकर अमनभाई के साथ सोसायटी के बाहर निकल जाते हैं। सपना और स्वप्न घर आते हैं तो टेबल पर उन्हें एक पर्ची मिलती है जिसमें लिखा था – 'मैं यह घर हमेशा –हमेशा के लिए छोड़कर जा रहा हूँ। मुझसे मिलने की कोशिश भी मत करना....।'

दूसरे दिन इतवार था। सपना और स्वप्न दोपहर के खाने की तैयारी में व्यस्त थे। उनका व्यवहार देखकर लगता नहीं था कि चंपकभाई के घर छोड़कर जाने का उन्हें कोई गम हो। दरवाजे पर दस्तक होती है, दोनों दरवाजा खोलते हैं। सामने दो व्यक्ति खड़े थे। दोनों अपना परिचय देते हैं। उसमें से एक व्यक्ति 'सहारा– वृद्धाश्रम का संचालक था जो बताता है कि – 'कल से ही चंपकलाल 'सहारा' वृद्धाश्रम के सदस्य बन चुके हैं और घर वापिस लौटना नहीं चाहते हैंय न ही बेटे और बहू का मुँह देखना चाहते हैं।

सपना और स्वप्न पर संचालक की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इतना ही नहीं, वे चंपकभाई द्वारा लिखी हुई पर्ची संचालक को बताकर यह साबित करते हैं कि चंपकभाई अपनी मर्जी से गए हैं। उन्हें यहाँ कोई समस्या नहीं थी। दोनों दरवाजा बंद करने ही वाले थे कि वकील आगे आता है और अपने आने का कारण बताते हुए कहता है – 'कल चंपकभाई ने 'सहारा' वृद्धाश्रम में मुझे बुलवाकर अपना नया वसीयतनामा तैयार करवाया है। वसीयतनामा के अनुसार चंपकभाई ने यह मकान और अपनी समस्त जमापूंजी 'सहारा' वृद्धाश्रम के नाम कर दी है। आपको स्वेच्छा से एक हफ्ते के भीतर यह मकान खाली कर देना है। याद रहे कि आपको यहाँ से कुछ भी सामान अपने साथ लेकर नहीं जाना है। अगर आप इस आदेश का पालन नहीं करते हैं तो संचालक को कानून का सहारा लेना पड़ेगा....।' इतना कहकर संचालक और वकील दोनों जाकर अमनभाई के घर का दरवाजा खटखटाते हैं।

३२–ए सोहमनगर सोसायटी,
अंबा माताजी मंदिर के पीछे
लांभवेल–बाकरोल रोड़
बाकरोल – ३८८३१५ जि–आणंद
ईमेल : sangitamnsp15@gmail-com

विनम्र श्रद्धांजलि

हिंदी के प्रख्यात लोकधर्मी आलोचक आदरणीय प्रो. चौथी राम यादव जी का निधन दिनांक 12 मई 2024 की शाम को वाराणसी में हृदय गति रुक जाने के कारण हो गया। वे 83 वर्ष के थे और अंतिम समय तक सक्रिय रहे। उनका हमारे बीच न रहना अपूरणीय क्षति है। वे सदैव हमारी स्मृतियों में बने रहेंगे। उन्हें साहित्य वीथिका परिवार की तरफ से भावपूर्ण श्रद्धांजलि एवं सादर नमन

हिंदी साहित्य के वरिष्ठ कथाकार–समीक्षक व समीचीन जर्नल के संस्थापक डॉ. देवेश ठाकुर के निधन से साहित्य वीथिका परिवार मर्माहत है। ऐसे साहित्य मनीषी को विनम्र श्रद्धांजलि।

मालती जोशी जी का देहावसान, अपूरणीय क्षति

मूलतः मराठी भाषिक होकर हिंदी में लेखन करते हुए भारतीय मध्यवर्ग की नारी के संघर्ष, आत्मनिर्भर बनने का उसका संकल्प, उसकी मानसिकता का चित्रण करने वाली विख्यात लेखिका के रूप में मालती जोशी को देखा जाता है। उनका जन्म महाराष्ट्र के संभाजीनगर अर्थात औरंगाबाद में 4 जून, 1934 को हुआ। लेखिका ने समाज में व्याप्त विसंगतियों को अपनी रचनाओं में पिरोया है। 'पाषाण युग', 'मध्यांतर', 'पराजय', 'एक घर सपनों का', 'विश्वासगाथा', 'आखरी शर्त', 'महकते रिश्ते' आदि इनके महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। इनके उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं– 'पटाक्षेप', 'समर्पण का सुख', 'राग–विराग', 'शोभा यात्रा', 'गोपनीय' आदि। इनके बाल साहित्य ग्रंथ इस प्रकार हैं– 'दादी की घड़ी', 'जीने की राह', 'परीक्षा और पुरस्कार', 'स्नेह के स्वर', 'सच्चा सिंगार' आदि। वर्तमान समाज में रिश्तों में आए रुखापन, स्वार्थ वृत्ति का चित्रण करने वाली मालती जोशी जी का साहित्य विभिन्न भाषाओं में अनूदित है। उन्हें पद्मश्री पुरस्कार, भवभूति सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान आदि पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया है।

श्रीमती मालती जोशी जी का स्वर्गवास 90 वर्ष की आयु में कल दिल्ली में हुआ। उनके अंतिम समय में उनके दोनों पुत्र श्री ऋषिकेश जी और श्री सच्चिदानंद जी तथा पुत्र वधुएँ श्रीमती अर्चना जी और श्रीमती मालविका जी उनके पास थे। वे पिछले कुछ समय से आइसोफेगस के कैंसर से पीड़ित थी। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें। साहित्य वीथिका परिवार की तरफ से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।